NAM MHATIYAM 1952 G.K.V.

नाम-महात्म्य

१२४२

अंक २

विषय सूची

माह संवत २००८

नाम-माहात्म्य के नियमः—

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में पूर्व आचार्य श्री महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्धसन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्च के लगते हैं।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओं से १।≡) एक प्रति का ≡)

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन फरवरी सन् १९५२ | अंक २

श्री रामकृष्ण

रामकृष्ण कहिये उठि भोर।
अवध ईश वे धनुष धरे हैं, यह ब्रज माखन चोर॥
उनके छत्र चँवर सिंहासन, भरत सत्रुहन लछमन जोर।
इनके लकुट मुकुट पीताम्बर, नित गैयन संग नंदकिशोर॥
उन सागर में सिला तराइ, इन राख्यो गिरि नख की कोर।
नन्ददास प्रभु सब तजि भजिये, जैसे चन्द्र चकोर॥

परमभक्त श्री नन्ददासजी

॥ श्री हरिः ॥

चेतावनी

[लेखक—श्री० जयदयालजी गोयन्दका]

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥
[गीता ४।७,८]

'हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूं अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूं। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये, पाप कर्म करनेवालों का विनाश करने के लिये और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूं।'

इस समय चारों ओर धर्म की हानि और पाप की वृद्धि हो रही है। नास्तिकता का बहुत जोरों से प्रचार हो रहा है। इसपर कोई-कोई भाई पूछते हैं कि गीता में भगवान् ने कहा है कि जब-जब धर्म की हानि और पाप की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूं तो बतलाइये, यदि इस समय भगवान् अवतार नहीं लेंगे तो कब लेंगे। हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि क्या अभी भगवान् के अवतार लेने का समय नहीं आया है, इसके उत्तर में मैं यही कहता हूं कि वर्तमान में नास्तिकता और पाप की उत्तरोत्तर वृद्धि एवं धर्म, ईश्वर और गायों का अस्तित्व मेटाने के लिये होनेवाले निन्दनीय आयोजनों को देखते हुए तथा श्रुति-स्मृति, इतिहास-पुराणों के कथन को देखते हुए तो आपका कहना ठीक है। किन्तु ईश्वर अभी अवतार लेंगे या नहीं, यह तो ईश्वर ही जानें। हम अपनी तुच्छबुद्धि से इसका निर्णय नहीं दे सकते। किस समय कितना अधर्म फैलने पर भगवान् अवतार लेते हैं, यह तो अवतार लेनेवाले भगवान् के निर्णय पर ही निर्भर है। कलियुग के प्रारम्भ में जिस प्रकार अधर्म का प्रचार होने की बात शास्त्रों में पढ़ी जाती है, उसकी अपेक्षा तो वर्तमान का अधर्म बहुत अधिक ही देखने में आता है। झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी और धनादि के लिये दगाबाजी करने में लोग बहुत ही कम हिचकिचाते हैं। आज के बीस वर्ष पूर्व धर्म के विषय में ऐसा घोर प्रमाद नहीं था, जैसा कि आज हो रहा है। बहुत से लोग झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, दगाबाजी को पाप ही नहीं मानते, उनका एकमात्र यही लक्ष्य है कि येन केन प्रकारेण धन और अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

धन के लोभ में फँस जाने के कारण हम लोगों का भयानक पतन हो गया है। आज हम धन के लिये दूसरों की तो बात ही क्या, अपने निकटतम सम्बन्धी माता, पिता भाई, बहिन बेटी, दामाद आदि से भी मुकदमेंबाजी करने में भी न तो लजाते ही हैं तथा न ईश्वर और धर्म का ही भय मानते हैं। हमें तो धन प्राप्त होना चाहिये, चाहे ईश्वर नाराज हों और चाहे धर्म-कर्म चूल्हे में जाय। हम धन के लिये सब कुछ छोड़ने को तैयार हैं, केवल धन मिलना और सुरक्षित रहना चाहिये। धन और पद हम

लोगों को प्राणों से भी बढ़कर प्रिय लगते हैं। पर हमें गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि इस धन और अधिकार का अन्त में होगा क्या। यह धन अधिकार न तो किसी के साथ में गया और न जायगा, ऐसा विचार के द्वारा समझते हुए भी इनकी ओर हमारा अत्यन्त आकर्षण हो रहा है। किन्तु धर्म और ईश्वर की शरण ग्रहण किये बिना हमारा इस लोक और परलोक में घोर पतन होगा और हमें भयानक कष्ट सहन करने पड़ेंगे। हमें यह मनुष्यजन्म अर्थ, भोग और काम के लिये नहीं मिला है, यह मिला है आत्मा के कल्याण के लिये। जो मनुष्य ऐसे अवसर को पाकर सचेत नहीं होता, उसके लिये श्री तुलसीदासजी कहते हैं—

> नर तनु पाइ विषय मन देही।
> पलटि सुधा ते सठ विष लेही॥

प्रथम तो यह विचारना चाहिये कि धन और ऐश्वर्य नाशवान और क्षणभङ्गुर हैं, इनका संयोग भी क्षणिक हैं और अपना जीवन भी क्षणिक है। अतः जिस काम के लिये हम आये हैं, उसे शीघ्राति-शीघ्र करना चाहिये।

झूठ, कपट, चोरी, डकैती, व्यभिचार, पशु पक्षी आदि की हिंसा करना, फिजूलखर्ची और कुरीतियाँ आदि दुराचारों का त्याग तथा अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, परोपकार आदि सदाचार का पालन एवं क्षमा, दया समता, संतोष शान्ति, सरलता, निर्भयता, धीरता, वीरता, गम्भीरता आदि उत्तम गुणों का सेवन स्वयं करना और दूसरों से करवाना यह देश के लिये महान् कल्याणकारक है, इसके लिये हरेक भाई को जी-तोड़ प्रयत्न करना चाहिये।

सरकार से प्रार्थना है कि आजकल जो नशीली चीजें बीड़ी, सिगरेट भांग, तम्बाकू, गांजा, और मदिरा आदि का तथा गंदे सिनेमा, नाटक आदि का एवं जुआ, सट्टाफाटका आदि की बुरी प्रवृत्तियां का जोरों से प्रसार हो रहा है, इनपर विशेष रोक लगानी चाहिये क्योंकि ये देश के लिये बहुत ही खतरनाक और हानिकर हैं। अपना हित चाहनेवाले भाइयों से भी हमारी यह प्रार्थना है कि वे इन दुर्व्यसनों का जिस किसी प्रकार से कतई त्याग हो, जी तोड़ प्रयत्न करें, क्योंकि इन से धन और धर्म की हानि प्रत्यक्ष हो रही है। ये देश के लिये बहुत खतरे की चीजें हैं, इनसे हमारे देश के भाइयों का सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिक सभी प्रकार से पतन हो रहा है एवं स्वास्थ्य के लिये तो ये महान हानिकारक हैं ही अतएव इनका सब प्रकार से क्रियात्मक विरोध करना चाहिये।

इस समय हमारे देश में राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र आदि जिन-जिन प्रान्तों में भयानक दुर्भिक्ष पड़ गया है उन-उन स्थानों में गायों और मनुष्यों की रक्षा के लिये सरकार को तन, मन, धन से पूरी सहायता करनी चाहिये। गायों के लिये कोई भाई कहीं से चारा मंगावें तो उसके लिये रेल किराया तो सरकार ने कम कर ही दिया है किन्तु उनके लिये यह सहूलियत और मिलनी चाहिये कि अन्य सब चीजों को रोककर सब से पहले गायों के लिये चारा और ग्वार बिनौले खाद्य पदार्थ लादे जांय।

मनुष्यों की रक्षा के लिये राजपूताना जैसे देशों में कुआं, तालाब आदि बनाना, कच्चे तालाबों की मिट्टी निकलवाना, सड़क आदि बनवाना, तथा गरीबों को रोजगार के कामों में लगाना एवं दुखी, अनाथ, अपङ्ग असहायों को बिना मूल्य अन्न वस्त्र देकर उनके प्राणों की रक्षा करना सरकार का मुख्य कर्त्तव्य है इसका अ[illegible] सरकार को विशेष ध्यान देना चाहिये।

इस समय गायों के लिये तो और भी विशेष खतरा है। सरकारी कानून भी गायों के लिये घातक है। जनता

के प्रार्थना करने पर भी सरकार इस ओर ध्यान नहीं दे रही है। गो वध रोकने के लिये जो तार पत्र दिये जाते हैं, वे प्रायः रद्दी की टोकरी में गिरा दिये जाते हैं। इसके लिये सरकार से प्रार्थना करने का तो हमारा हक है ही और रहेगा ही जब भारतवर्ष को स्वराज्य नहीं मिला था, तब महात्मा गांधीजी जैसे लोकहितैषी पुरुषोंने यह विश्वास दिलाया था कि 'इस समय अंग्रेजों के हाथ में राज्य है, हम लोग गायों के लिये कुछ भी नहीं कर सकते। स्वराज्य मिलने पर इस विषय में विचार किया जायगा और हरेक प्रकार से गायों की रक्षा करना हमारा पहला काम होगा।' ईश्वर कृपा से हमें स्वराज्य मिल गया, गाय को कत्ल करना अपना धर्म बतलानेवाले मुसलमान भाइयों को पाकिस्तान मिल गया और विदेशी अंग्रेजोंने भारत से अपना शासन उठा लिया, किन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक गायों के लिये कुछ भी सुविधा प्राप्त नहीं हुई। पाकिस्तानवाले जो गायों की कुर्बानी को अपना धर्म मानते हैं, वे भी हमारी अपेक्षा स्वार्थ के नाते गायों की रक्षा और वृद्धि की अधिक चेष्टा करते हैं, परन्तु हमारा देश हिन्दुस्थान और हम हिन्दु कहलाकर भी हिन्दुओं के परम धन गायों की रक्षा और वृद्धि की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं, यह हमारे लिये बहुत ही लज्जा और दुःख की बात है।

इस समय हम लोगों के तथा गायों के दुर्भाग्य के कारण जिन राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र आदि प्रान्तों में भयानक दुर्भिक्ष पड़ गया है. उनमें गायों के लिये चारे का तो इतना अभाव है कि उनका जीवन कैसे कायम रहेगा, कुछ समझ में नहीं आता। साथ ही गोवध निवारक कानून के विषय में भी वर्तमान सरकार की नीति हितकारक नहीं है।

यदि कहा जाय कि यह सरकारी कानून तो कई जगह बना हुआ है कि बछड़ा-बछड़ी तथा दुधारू गायों का कोई वध नहीं कर सकता सो ठीक है किन्तु इस कानून से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो रहा है। इस कानून के विद्यमान रहते हुए भी हमारे देश के कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े-बड़े नगरों में बछड़े बछड़ियां और दुधारू गायें प्रतिदिन बहुत बड़ी संख्या में काटी जा रही हैं। क्योंकि मारनेवाले स्वार्थ के वशीभूत हुए न तो देश की हानिपर ध्यान दे रहे हैं और न ईश्वर का भय ही मानते हैं तथा न उक्त सरकारी कानून का भय ही मानते हैं। गाय बूढ़ी है या जवान इसका सार्टिफिकेट देनेवाले अफसर पैसों के लोभ से मनमानी सार्टिफिकेट दे देते हैं और बूढ़ी के नाम पर जवान दुधारु गायें कट जाती हैं। इस अन्याय की भलीभांति जांच भी नहीं होती। कई गौ-हितैषी तो कसाइयों के भय से जांच के लिये जाना ही नहीं चाहते। और कोई स्वयं जांच करना चाहते हैं तो उनको समुचित सहयोग नहीं प्राप्त होता। अतः इस समय गोधन का ह्रास हमारे देश में बड़ी तेजी से हुआ और हो रहा है, जिसके कारण गो दुग्ध और गोघृत का दिन पर-दिन अभाव होता जा रहा है। ऐसा गोधन का ह्रास आप विचार कर देखेंगे तो आपको किसी देश में भी नहीं मिलेगा। अतः सरकार से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि गोरक्षा और गोवृद्धि के लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये और भारतवर्ष में गोवध को कतई रोक देना चाहिये।

जनता से भी हमारी प्रार्थना है कि वर्तमान के अकाल से पीड़ित गायों की रक्षा के लिये यथाशक्ति तन, मन, धन से प्रत्येक भाई को प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा अकाल निकट भूत में नहीं पड़ा, जैसा कि इस समय पड़ा हुआ है। राजस्थान और गुजरात आदि प्रान्तों में कुए और तालाबों का जीर्णोद्धार कराना चाहिये तथा कच्चे तालाबों की मिट्टी निकलवानी चाहिये, जिससे उन में गायों के लिये जल की सुविधा हो सके। इससे अकाल पीड़ित

मनुष्यों को भी मजदूरी मिलने से उनकी बेकारी दूर हो सकती है। जिन गांवों में गायों के पीने के लिये जल नहीं मिलता, वहां गायों के पीने के लिये कुओं से जल निकलवाने की शीघ्र व्यवस्था होनी चाहिये। गायों के चारे के लिये घास, तूड़ी, पूला, पाला आदि और ज्वार आदि खाद्य पदार्थ दूसरे प्रान्तों से मँगवाकर अनाथ और गरीब गायों के लिये बिना मूल्य तथा अन्य गायों के लिये सस्ते मूल्य में देने का प्रबन्ध करना चाहिये।

आजकल वनस्पति तेल (नकली घी) का बड़ी तेजी से प्रचार हो रहा है जिसके खाने से कमजोरी आती है, आयु का क्षय होता है और नपुंसकता बढ़ती है इस विषय में भी महात्मा गांधीजी का सिद्धान्त देखिये। उन्होंने इस विषय में निर्णय करके तै कर दिया था कि यह हमारे देश के लिये बहुत ही घातक (हानिकर) है, किन्तु दुःख की बात है कि आज हमारे देश के शासक अधिकारीगण इसके बन्द करने की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इस नकली घी के कारण भी गायों की रक्षा और वृद्धि में कमी आगई है। जब वनस्पति (नकली घी) से काम चल जाता है, तब गाय-भैंस के दूध घी की क्या जरूरत है— ऐसी भूल धारणा हो चली है, किन्तु हम इसपर ध्यान नहीं दे रहे हैं कि वनस्पति से हमारे स्वास्थ्य का कितना नुकसान हो रहा है। अतः हम इसके लिये भी सरकार से प्रार्थना करते हैं कि यह वनस्पति (नकली घी) भी कतई बंद हो जाना चाहिये।

व्यापारियों का व्यापार तो सरकार के कंट्रोल और टैक्स आदि के कारण प्रायः नष्ट हो गया और होता जा रहा है। इसमें जो बहुत अधिक धनी हैं, उन्हें तो कुछ लाभ भी है, किन्तु गरीब और मध्य श्रेणी के व्यक्ति तो बुरी तरह तबाह हो रहे हैं, क्योंकि जो बड़े-बड़े धनी या मिल-मालिक हैं वे लोग तो अधिकारियों और कर्मचारियों से मिलकर अपना मतलब गांठ लेते हैं शेष सब जनता महान् दुखी है। आप प्रत्यक्ष देखिये, इस समय अन्न और वस्त्र भारत में मौजूद रहते हुए भी जनता अन्न वस्त्र के बिना महान् दुखी हो रही है। लोगों को पहनने के लिये वस्त्र नहीं और खाने को अन्न नहीं। चोर बाजारी से अधिक मूल्य देकर खरीदना अपराध है पर वह देनेपर भी पर्याप्त अन्न-वस्त्र नहीं मिल पाता। जैसे बँगाल के बाँकुड़ा जिले में जो चावल १६) मन है, वही चावल नदिया जिले में ३६) मन बाजार में बिक रहा है, इसी प्रकार यू० पी० और बिहार आदि प्रान्तों में भी गेहूं चावल आदि खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में धांधली चल रही है तथा सरकार ने अभी खांची आदि ग्रामोद्योग की देशी चीनी का मूल्य २६) मन निर्धारित किया है और दूसरी ओर मिलोंको चीनी के लिये खुला आर्डर दे दिया है। खांची वालों को २६ में कभी चीनी पुसा नहीं सकती। इससे तो बेचारे गरीब ही मारे जांयगे और मिलमालिक धन इकठा करेंगे। साथ ही, यू. पी. में अलसी आदि पर जो सेलटैक्स है, वह प्रत्येक खरीद-बिक्री पर है, इस कारण प्रायः दूकानदार को चोरी करनी पड़ती है, वे पूरा सेल टैक्स नहीं देते, क्योंकि ३२) के मालपर एक पैसा रुपये के हिसाब से आठ आना मन टैक्स लग जाता है, दूसरा व्यक्ति टैक्स की चोरी करके चार आना मन के मुनाफे से बेच देता है। कोई भला आदमी चोरी करना नहीं भी चाहे तो भी उसे करनी पड़ती है क्योंकि आठ आना तो उसे पुसाता नहीं, अतएव या तो चोरी करनी पड़ती है या काम बन्द करना पड़ता है। अतः सरकार को प्रत्येक खरीद बिक्री पर सेलटैक्स न लगा कर एक बार ही सेल टैक्स लगाना चाहिये। बंगाल और बिहार आदि प्रान्तों में सेलटैक्स की मात्रा अत्यधिक होने के कारण अर्थात्

अधिकांश मालपर प्रति रुपया तीन पैसा तक सेल टैक्स होने के कारण व्यापारी लोग सरकार को अधिकांश में टैक्स नहीं देते, चोरी करते हैं। इसलिये जो सरकारी टैक्स की चोरी करना नहीं चाहते, उनके लिये व्यापार करना ही कठिन हो जाता है। इन सब बातों को सोच-कर सरकार को सेलटैक्स की मात्रा कम कर देनी चाहिये। सेलटैक्स की मात्रा कम कर देने तथा एक बार ही सेल-टैक्स लगाने पर भी सरकार को पूरा टैक्स मिल जाने से कोई नुकसान नहीं होगा और लोगों को भी चोरी नहीं करनी पड़ेगी। अतः सरकार को इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसी प्रकार इनकम टैक्स की मात्रा अधिक होने के कारण बड़े-बड़े धनी लोग अपनी धनराशि को छिपा लेते हैं और पूरा टैक्स नहीं देते। अपने बही-खाते आदि में झूठे जमा खर्च करके सरकार को धोखा देते हैं। इस इनकमटैक्स की मात्रा कम कर देने पर भी सरकार को पूरा टैक्स मिल जाने से कोई नुकसान नहीं है तथा लोग भी चोरी से बच सकते हैं।

व्यापारी भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि जो लोग इनकमटैक्स और सेल टैक्स की चोरी करते हैं तथा चोर बाजारी के रुपयों से बिना जमा खर्च किये व्यापार करते हैं, उनका घोर नैतिक पतन हो रहा है। उनको झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी करनी पड़ती है। बही में झूठे जमा खर्च करने पड़ते हैं। इस कारण उनको सरकारी अफसरों से सदा भय भी बना रहता है, अफसरों को रिश्वत देनी पड़ती है, धर्म की हानि होने के कारण आध्यात्मिकता, धार्मिकता और नैतिकता का बहुत पतन होता है एवं इस लोक में इज्जत और मानकी हानि तथा मरने पर दुर्गति भी होती है। इन सब बातों को खयाल में लाकर उनको सचाई के साथ व्यापार करना चाहिये। ऐसा करने से उनका इस लोक और परलोक में सब प्रकार से हित है। हमारे देश में अंग्रेजों ने आकर जो व्यापार की उन्नति की, उसमें उनका सत्यता पूर्वक व्यापार ही प्रधान कारण है। आज भी अंग्रेजों का व्यवहार औरों की अपेक्षा अच्छा है, जिसके कारण व्यापारी लोग कपड़े सुत आदि के लेन-देन में अंग्रेजों की मिलों और व्यापारी संस्थाओं का अधिक विश्वास करते हैं और उनसे ही लेन-देन अधिक करते हैं। क्योंकि बाजार की मंदी तेजी पर वे भारतवासी मिल-मालिकों की तरह विशेष बेईमानी नहीं करते। वर्तमान सरकार भी देशवासियों की अपेक्षा अंग्रेजों का तथा उनके बही-खाता-रजिस्टरों का अधिक विश्वास करती है।

व्यापारी लोग जो चोर बाजारी करते हैं, उसमें उन पर कंट्रोल करने वाले अफसर, उनके नीचे रहने वाले कर्मचारी तथा रेल कर्मचारी काफी मदद करते हैं। एवं ये सब लोग ही सरकार को हरेक प्रकार के कंट्रोल रखने में सब तरह की सुविधा दिखला कर कंट्रोल कायम रखने के लिये कहते हैं। पर कंट्रोल से लाभ कम और हानि ही अधिक है। सरकार यदि इसके लिये विशेष रूप से जाँच-पड़ताल कराने के लिये सुचारु रूप से प्रबन्ध करे तो सरकार को भी यह अनुभव हो जायगा। सरकार को यह विश्वास करना चाहिये कि इस चोर बाजारी में केवल व्यापारियों का ही दोष नहीं है, कितने ही सरकारी अधिकारी, कर्मचारी तथा रेल के कर्मचारियों का भी हाथ है। पाँच वर्ष पहले जिसके पास खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र नहीं थे, आज उसके पास अफसर बनने के बाद लाखों रुपये हो गये तो सरकार को ध्यान देना चाहिये कि वे कहाँ से आये।

अन्न का कंट्रोल होने के कारण किसानों को भी झूठ और कपट का आसरा लेना पड़ता है। क्योंकि सरकार के हुक्म के अनुसार यदि वे गेहूं और चावल पूरा-पूरा दे दें तो न तो उसके खाने का निर्वाह ही हो और न उन्हें जो

चोर बाजारी से रुपया मिलता है, वही मिले । आज के बीस वर्ष पूर्व जब अन्न-वस्त्र पर कंट्रोल और राशन नहीं था तब अन्न वस्त्र के लिये किसी को भी कष्ट नहीं था; क्योंकि माल के यातायात की कोई रुकावट नहीं थी, इस लिये व्यापारी लोग प्रतिद्वन्द्विता करके जहाँ तहाँ से माल मँगाते और कम मुनाफे पर बेचते थे। सरकारी अफसरों को व्यापार का बहुत कम ज्ञान है यातायात में खर्च अधिक पड़ता है। और कुछ बीच के आदमी खा जाते हैं, इससे सरकार को व्यापारियों की अपेक्षा चीज बहुत मँहगी पड़ जाती है। इस कारण जनता को अन्न-वस्त्र का मूल्य अधिक देना पड़ता है; फिर भी अन्न-वस्त्र आवश्यकतानुसार नहीं मिलता, इस कारण महान कष्ट होता है। अतः सरकार को यह अन्न-वस्त्र का कंट्रोल और राशन उठा देना चाहिये। जिन प्रान्तों में अकाल पड़ा हुआ है, वहां के मनुष्यों को तो और भी अधिक कष्ट है। उनके कष्टनिवारण के लिये सरकार को हरेक प्रकार की सुविधा देनी चाहिये। जो चोर बाजारी करते हैं, उनको तथा उनको मदद करने वाले सरकारी अधिकारी और कर्मचारियों को भी अच्छी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे भविष्य में वे ऐसा अष्टाचार न करें।

वर्तमान सरकार ने विधवा स्त्री और नाबालिगों के लिये कानून तो अच्छा बना रक्खा है, किन्तु इतने मात्र से विधवाओं और नाबालिगों को विशेष लाभ नहीं हो रहा है। क्योंकि अनाथ विधवाओं की सम्पत्ति जिसके हाथ पड़ती है, वही खा जाता है। अधिकांश में तो उसके घर वाले ही हड़प जाते हैं। वे बेचारी कमजोर होने के कारण कुछ भी कर नहीं पातीं। खासकर विधवा स्त्रियों की निजी धन सम्पत्ति, जायदाद या जेवर अथवा पति की जीवन बीमा के रुपये भी पति के मरने के बाद उसके ससुर-जेठ या उनकी स्त्रियाँ ही हड़प जाती हैं। वे बेचारी विधवाएँ प्रथम तो लज्जावश अदालत में ही नहीं जातीं, यदि जायँ तो उनके पास न तो लड़ने के लिये रुपये हैं और न कोई मनुष्य ही उन्हें मदद करता है। सरकार की इस ओर कुछ दृष्टि ही नहीं कि उनकी कैसी दुर्दशा हो रही है। अतः ऐसी स्त्रियों और नाबालिगों के लिये सरकार को अपनी तरफ से जांच-पड़ताल करनी चाहिये और उनको यह सुविधा मिलनी चाहिये कि यदि उन्हें इसके लिये लड़ना पड़े तो उनसे स्टाम्प आदि खर्च न लिया जाय एवं वकीलों को भी ऐसी अनाथ विधवाओं तथा नाबालिगों से फीस नहीं लेनी चाहिये।

वर्तमान सरकार हिन्दु कोडबिल को पास करने पर तुली हुई है, हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें हिन्दुओं का क्या हित है। इस विषय में तो हिन्दुधर्म के पालनेवाले जो हिन्दु भाई हैं, उन्हीं की सम्मति लेनी चाहिये। जो हिन्दुधर्म को मानते ही नहीं, उनकी सम्मति लेना बेकार है। क्या हम सरकार से यह पूछ सकते हैं कि वह केवल हिन्दुओं का ही हित चाहती है। दूसरे जो ईसाई और मुसलमान भाई हैं, क्या उनका हित और सुधार नहीं चाहती। यदि चाहती है तो सब भारतवासियों के लिये एक ही कानून बनाना चाहिये, केवल हिन्दुओं के लिये ही क्यों? हिन्दु भाई तो इस हिन्दु कोड से अपनी महान् हानि समझते हैं। सरकार इस कोडबिल से हिन्दुओं का उपकार समझती है किंतु ऐसे उपकार को हिन्दु भाई नहीं चाहते।

विधान में यह घोषणा की गयी है कि किसी के भी धर्म में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। किंतु इस प्रतिज्ञा का पालन ईसाई और मुसलमानों के लिये ही किया जाता है, हिन्दुओं के लिये नहीं। ईसाई और मुसलमानों के धर्म के विषय में शासन सभा में कोई जरा भी बात नहीं उठायी

जाती, इसी प्रकार हिन्दुओं पर दया करके हिन्दु धर्म के विषय में भी कोई कानून नहीं बनाना चाहिये। हम सरकार से सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि हिन्दु भाइयों के हृदय पर आघात न पहुंचा कर उन पर अनुग्रह करते हुए हिन्दु कोड बिल के स्वीकृत कराने का विचार त्याग दे।

इस समय भारतवर्ष में प्रान्तीय धारा सभाओं के तथा संसद के लिये चुनाव होने वाला है, चुनाव में कांग्रेस सरकार को उचित है कि सबके साथ समान व्यवहार करे। कहीं भी पक्षपात न करे। कांग्रेस हिन्दु महासभा, जनसङ्घ, रामराज्य परिषद्, सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिष्ट पार्टी आदि किसी भी दलका या स्वतन्त्र कोई भी व्यक्ति चुनाव के लिये खड़ा हो. तो उसके लिये मोटर, गाड़ी, पेट्रोल, कागज आदि आवश्यक चीजें सभी को बिना रोक टोक समान भाव से मिले, ऐसी सुचारु रूप से व्यवस्था करनी चाहिये। इस विषय में किसी से चन्दा लेने के लिये भी दबाव नहीं डालना चाहिये और कोई व्यक्ति किसी दल को स्वेच्छा से चन्दा दे या अन्य किसी प्रकार की मदद करे तो उसमें बाधा भी नहीं डालनी चाहिये।

सभी भारतवासियों से हमारी प्रार्थना है कि इस चुनाव में वोट उन्हीं को देना चाहिये, जो निः स्वार्थभाव से मजदूर, किसान, जमींदार, व्यापारी आदि सब जनता का हित चाहने वाले हैं। दुखी, अनाथ, गाय, विधवा और सभी के धर्म की रक्षा करने वालों को तो वोट देने-दिलाने की विशेष चेष्टा करनी चाहिये। जो ईश्वर और धर्म को नहीं मानते और हिन्दु, मुसलमान, ईसाई आदि किसी के भी धर्म के विरुद्ध कानून बनाने की इच्छा रखते हैं, तथा गोवध के वर्तमान कानून को कायम रखना चाहते हैं एवं वनस्पति (नकली घी) का प्रचार चाहते हैं, जो कि स्वास्थ्य, धर्म और गायों के लिये महान् घातक और हानिकर है। ऐसे धर्म विरोधी नास्तिकों को भयसे, लोभ से, काम से या लज्जा से कभी वोट नहीं देना चाहिये। क्योंकि इनको वोट देने से वोट देने वाले को गाय और धर्म की हानि के पाप का भागी होना पड़ता है।

दानदाताओं को सूचना

सर्व सज्जनों को सूचना दी जाती है कि श्री भगवान-भजनाश्रम को जो दान मनीआर्डर बीमा द्वारा प्राप्त होता है उसकी रसीद उसी दिन डाक द्वारा दाता महानुभाव की सेवा में भेज दी जाती है, अगर किन्हीं दाता महानुभाव को अपने दान की छपी हुई रसीद श्री भगवान भजनाश्रम की प्राप्त नहीं हुई है तो उन्हें तुरन्त सूचना देनी चाहिये एवं भविष्य में कभी किन्हीं दान दाता को अपने दान की रकम की रसीद प्राप्त नहीं हो तो तुरन्त हमें सूचना देनी चाहिये, इसमें बिल्कुल विलम्ब नहीं करना चाहिये।

कृपया पत्र आदि एवं मनीआर्डर बीमा निम्न पते पर भेजने की कृपा करें

मंत्री श्री भगवान-भजनाश्रम मु. पो. बृन्दावन (मथुरा)

अजामिल उपाख्यान

यमराज से निवेदन

[लेखक—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी]

नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान्।
व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते।
तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम्।
नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम्॥

श्री० शुकदेवजी कहते हैं! राजन! यमदूतों ने जाकर धर्मराज से निवेदन किया! महाराज हम लोग आपकी आज्ञा से एक पातकी को नरकों की ओर लिये जा रहे थे कि इतने में ही चार दिव्य पुरुषों ने हमारे पाशों को तोड़ कर उसे मुक्त कर दिया! सो हम जानना चाहते हैं। वे लोग कौन थे यदि आप उचित समझें, तो इस रहस्य को बतावें उस पापी ने "नारायण" इतना कह दिया था! तभी आकर "मत डरो" ऐसा कहते हुये तत्काल वहाँ आकर उपस्थित हो गये!

संयमनी पति निकट गये यमदूत खिस्याने!
बिना भाव के मार पड़ी सब अंग पिराने!!
हाथ जोर कर सब कहें प्रभो! तुम ही जग स्वामी!
या तुम तेऊ ऊपर, ईश बड़ अन्तर्यामी॥
लावत है हम नरक महँ, जा पापी कू पकरि कें।
चारि पुरुष आये जहां, छुड़वाओं अति झिरकि कें॥

जो कूप मंडूक होते हैं वे कूप के सबसे बड़े मेढ़क को ही सबसे बड़ा जन्तु समझते हैं। कूप से कभी समुद्र में जाने का उन्हें सुयोग ही प्राप्त नहीं होता। वहां यदि तेतिमि तिमिंगिल तिमिङ्गिलगिल आदि बड़े २ जीवों को देखे तो उनकी आँखे खुल जाय। किन्तु वे तो वही मच्छर आदि छोटे जीवों को खाते हुये अपने बल पौरुष को दिखाते हुये अपने को अप्रतिहत पौरुष वाला समझते रहते हैं। जब कोई बड़ा जीव आकर उनकी मरम्मत करता है तब उन्हें ज्ञान होता है संसार में हमसे बड़े भी जीव हैं।

श्री शुकदेवजी कहते हैं! राजन् आपने जो यह पूछा कि यमराज तो सर्वज्ञ हैं। क्या वे जानते नहीं थे कि इस अजामिल की ऐसी दशा होनी है। यदि उन्हें पता था कि यह जीव बैकुण्ठ का अधिकारी है, तो उन्होंने पिटवाने के लिये अपने दूतों को क्यों भेजा! यदि उन्हें पता नहीं था तब वे सर्वज्ञ नहीं हुये? सो पहले मैं आपके इसी प्रश्न का उत्तर देता हूं। बात यह है कि ज्ञान की सर्वज्ञता की भी सीमा होती है। मूर्ख से पढ़ा लिखा सर्वज्ञ है, उससे सिद्ध सर्वज्ञ है उससे भी देवता और लोकपाल, इनसे भी ब्रम्हाजी सर्वज्ञ हैं। उन सर्वज्ञ ब्रम्हा ने भी राजकुमार प्रियवृत्त को उपदेश देते हुये स्पष्ट कहा था कि उन सर्वान्तर्यामी प्रभु की चेष्टाओं को मैं, भगवान रुद्र तथा इन्द्रादि देवता कोई भी पूर्ण रूप से समझने में समर्थ नहीं। सभी प्राणियों के पाप पुण्य का सप्रमाण उनके यहां लिखा रहता है। उसी के अनुसार वे प्राणियों को सुख दुख स्वर्ग नरक देते हैं। किन्तु भगवान की कभी किसी कारण से उसी तरह विशेष कृपा हो जाय ऐसे लोक भी नहीं जान सकते।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान की कृपा तो वैसे सभी पर समान रूप से होती ही है। किन्तु विशेष कृपा तो विशिष्ट पुण्यात्माओं पर ही होती होगी! पापी तो अपने पापों के कारण भगवान की कृपा के अधिकारी ही नहीं!

यह सुनकर सूतजी बोले—'महा भाग! यह ठीक है भगवान धर्म मूर्ति हैं। धर्मात्मा उन्हें प्रिय होते हैं। किन्तु उनकी कृपा के अधिकारी धर्मात्मा ही होते हैं सो नियम नहीं! जिन्हें वे अपने करके वरण करते। इस जन्म में जो पापी दीखता है, संभव है वह पूर्व जन्म में परम पुण्यात्मा रहा हो। भगवान गुणों से ही प्रसन्न होते हैं। ऐसा नियम नहीं। यदि शुद्ध आचरण से, पवित्राचार से ही भगवान प्रसन्न होते हैं। तो धर्म व्याध तो नित्य मांस बेचता था। गीध तो अत्यंत अपवित्र अत्यंत निन्दनीय मांस भोजी पक्षी था। धर्म शास्त्रों में यहाँ तक लिखा है। जिस घर की छत पर गृद्ध बैठ जाय, उस घर का पुनः संस्कार कराना चाहिये। यदि भगवान की कृपा के पात्र विद्वान ही होते हों तो भालू बन्दर कौनसी पाठशाला में पढे थे। गजेन्द्र ने कौन परीक्षा दी थी। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि भगवान की कृपा किसी गुण से किसी नियम से बँधी नहीं किस क्षण किस पर कैसे कृपा हो जाय। इसे विचारे यमदूत तो जान ही क्या सकते हैं। उनके स्वामी यमराज भी नहीं जानते। अजामिल का इतिहास तो मुनियों बहुत प्राचीन है, मैं आपको अभी इसी कलियुग का अत्यन्त ही अर्वाचीन एक सत्य इतिहास सुनाता हूँ। उससे आप समझ जायेंगे, कि भगवान कैसे किस पर अकस्मात कृपा करते हैं।

पंचनद देश के अन्तर्गत गुलेर नाम का छोटा सा राज्य है। वहाँ पर एक बड़े धार्मिक परम भागवत राजा थे। उनके समीप में एक नौकर था। उसकी धर्म में तो ऐसी विशेष रुचि नहीं थी किन्तु वह स्वामि भक्त था। उसे राजा की आज्ञा पालन करने में अपराधियों को पकड़ कर लाने में राजा की आज्ञा से दंड देने में बड़ा आनन्द आता था! स्वभाव का भी वह उग्र था। राजा का उसके प्रति सहज अनुराग था। वह राजा के कृपा पात्र सेवकों में माना जाता था। कुछ काल में उसकी मृत्यु हो गई।

एक दिन राजा ने क्या देखा कि वही नौकर एक छाया की मूर्ति की भाँति राजा के सम्मुख खड़ा है। पहले तो राजा को बड़ा सन्देह हुआ! पीछे साहस करके उन्होंने उसका नाम लेकर पुकारा। उसने राजा को प्रणाम करके उत्तर दिया। राजाने पूछा भाई तुम तो मर गये थे। तुम यहाँ कैसे आ गये।"

उसने कहा- महाराज, अवश्य मेरी मृत्यु हो गई थी! मर कर मैं यमराज का दूत बनाया गया हूँ। अब मैं जिनका समय पूरा हो जाता है उन पापियों को पकड़ कर यमराज के समीप ले जाता हूँ। मेरे साथ और भी दो हैं। मैं आपके स्नेह वश दर्शन करने चला आया हूँ।

राजा को बड़ा कुतूहल हुआ और बोले—यहाँ तुम किसे पकड़ने आये हो।

उसने कहा—"महाराज! अमुक जो ठाकुर है, वह बड़ा क्रूर द्वेषी है, उसे ही हम पकड़कर लेजायंगे। वह ठाकुर राजा के समीप ही रहता था। कल राजा ने उसे स्वस्थ ही देखा था। अतः उन्हें उनकी बात पर कुछ विश्वास नहीं हुआ और बोले- "अच्छी बात है, जब तुम उसे लेकर जाने लगो, तब भी मुझसे अवश्य मिलते जाना।"

उसने विनीत भाव से कहा—बहुत अच्छी बात है। जैसी महाराज की आज्ञा। इतना कह कर वह वहीं अन्तर्धान हो गया!

कुछ समय के पश्चात फिर आया। राजा ने पूछा 'तुम लोग क्या,, उसे लिये जा रहे हो।

उस दूत ने कहा—"महाराज! वह हमारे हाथ नहीं लगा!"

राजा ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्यों, क्या बात हुई! उसे तुम क्यों नहीं पकड़ सके?

दूत ने कहा- महाराज! आज ही वह अपनी घोड़ी पर चढ़कर खेत को जा रहा था। जिस क्षण उसकी मृत्यु का काल आया वह दौड़ती हुई घोड़ी

से पृथ्वी पर गिर पड़ा। गिरते ही उसके प्राण निकल गये। संयोग की बात जहाँ वह गिरा उस पृथ्वी के एक बिलस्ति नीचे भगवान शालग्राम की दिव्य मूर्ति थी। जिसकी शालग्राम शिला के ऊपर मृत्यु हुई हो, उसका स्पर्श हम कैसे कर सकते हैं। अतः उसे विष्णु दूत ले गये हम लौटे जा रहे हैं।

यह सुन कर राजा को और भी कुतूहल हुआ। वे उसी क्षण अपने मंत्रियों को साथ लेकर उस स्थान पर गये। बात सच थी। वह घोड़ी पर चढ़ कर गया था और वहाँ मरा पड़ा था। राजा ने उसी क्षण उस भूमि को खुदवाया! उसमें थोड़ी दूर पर ही एक सुन्दर शालग्राम की मनोहर मूर्ति निकली। राजा ने उसे बड़ी श्रद्धा से स्थापित कर दिया। गुलेर राज भवन में आज भी वह मूर्ति विद्यमान है। यह कहानी नहीं प्रत्यक्ष घटना है। सो मुनियों किस समय कैसा किसका संयोग जुट जाय इसे श्री हरि ही जान सकते हैं। अजामिल पर भगवान क्यों रीझ गये, क्यों मृत्यु के समय उसके मुख से भगवान का नाम निकल गया। इसे भगवत कृपा के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं?

शौनकजी ने कहा—"हाँ सूतजी! आप सत्य कह रहे हैं। भगवत कृपा के सम्बन्ध में कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता! इसे भगवान के अतिरिक्त कोई जान नहीं सकता! अब आगे वृतान्त सुनाईयेगा, जिस प्रकार मेरे गुरुदेव भगवान शुक ने राजा परीक्षित से आगे का वृतान्त पूछा था। उसे ही मैं आपसे कहता हूँ।

राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से पूछा—"भगवान् जिन देव श्रेष्ठ धर्मराज के आधीन यह सम्पूर्ण संसार है, जब उनकी आज्ञा का इस प्रकार उल्लंघन हुआ तथा उनके दूतों को विष्णु पार्षदों ने बुरी तरह खदेड़ा तो इस पर उन्हों ने अपने दूतों से क्या कहा! उन्होंने विष्णु दूतों पर भगवान के न्यायालय में मानहानि का या शान्ति भंग का अभियोग तो नहीं चलाया? भगवन्! मुझे इस घटना से बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यमराज की आज्ञा का उल्लंघन हो। ऐसी बात तो पहले कभी सुनने में आई नहीं! आप ही महाराज! मेरी इस शंका का सरलता के साथ समाधान करने में समर्थ हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।"

यह सुन कर हंसते हुये भगवान शुक कहने लगे—राजन सुनिये! जब यमदूत विष्णु पार्षदों द्वारा बुरी भाँति खदेड़े और पीटे गये, तो वे सब होंट लटकाये बुरा मुँह बनाये उदास मन से यमराज से पूछने लगे—प्रभो! हम यह जानना चाहते हैं कि प्राणियों के पुण्य पाप तथा मिश्रित सभी प्रकार के कर्मों का फल देने वाले शासक निश्चित रूप से कितने हैं।

यमराज अपने दूतों के मुँह से अकस्मात् ऐसा प्रश्न सुन कर चक्कर में पड़ गये। ये लोग आज विचित्र प्रश्न पूछ रहे हैं। ऐसा प्रश्न उन्होंने अब से पूर्व कभी पूछा नहीं था!

यमदूतों ने नम्रता के साथ कहा - महाराज! अभिप्राय इतना ही है कि जब एक स्वामी होता है तभी न्याय ठीक होता है। यदि बहुत से स्वामी हुये तो एक ने किसी दंड देने को पकड़ा दूसरे ने दया करके छोड़ दिया। तब तो बहुत से लोग अपराध करके भी दंड से बच जायेंगे। बहुत से बिना अपराध के ही पकड़े जायेंगे। अपराध में फँस जायेंगे! फिर किसको सुख दुख प्राप्त कराने चाहिये किसको न करने चाहिये इसका निर्णय कौन करेगा।

यमराज ने कहा—भाई पाप पुण्य करने वाले प्राणी बहुत हैं। एक से न्याय न हो सके तो बहुत से न्यायाधीश नियुक्त किये ही जाते हैं। इसलिये यह नियम नहीं है कि शासक अनेक न हों एक ही हो! एक से अधिक भी शासक हो सकते हैं।

यमदूतों ने कहा—महाराज शासक अधिक भले ही हों! किन्तु वे सब मनमानी तो नहीं कर

सकते । उन सबकों भी एक प्रधान शासक के आधीन रहना पड़ता है। अतः वे शासन विधान में स्वतंत्र नहीं माने जाते। जैसे माण्डलिक राजा तो बहुत से होते हैं। किन्तु उन सबका सम्राट तो एक ही होता है। हम अब तक यही समझते थे कि संसार में जितने भी छोटे मोटे शासक हैं उन सब शासकों के प्रधान शासक चराचर जीवों के शुभाशुभ का निर्णय करने वाले दंडधर स्वामी आप ही हैं।

हंस कर धर्मराज ने कहा—अब तक तो यह समझते थे। अब क्या समझने हो!

यमदूत बोले – महाराज अब तो हमें कुछ संदेह सा होने लगा। तभी तो आज ऐसा प्रश्न किया! आज से पूर्व तो हमने कभी यह संदेह किया ही नहीं था। आज एक ऐसी ही घटना घटित हो गई।

यमराज ने पूछा—वह क्या? ऐसी कौनसी घटना घटित हुई है।

यमदूत बोले! महाराज! क्या बतावें? आज हम एक पापी को आपकी आज्ञानुसार बाँध कर नरक ला रहे थे, इतने में चार अद्‌भुत दिव्य पुरुषों ने अत्यंत शीघ्र आ करके उसे बल पूर्वक हमसे छुड़ा लिया और ऐसी मारमारी, कि प्रभो! छटी तक का दूध याद आगया! यदि ऐसी मार एक बार और भी पड़ गई तो हमारा तो चूर्ण हो जावेगा! अतः महाराज! यह लें अपनी पास और स्वीकार करें हमारा त्याग-पत्र ऐसी नौकरी हमसे न होगी।

यमराज ने कहा-भाई बात तो बताओ! यों बिना बात के तुम से छुड़ाने का साहस कौन कर सकता है। उसने मरते समय कुछ कहा था क्या?"

यमदूतों ने उपेक्षा के स्वर में कहा—"अजी, महाराज! वह कहता क्या पत्थर! उसे स्वंय चेतना नहीं थी, अपने पापों को स्मरण करके वह स्वयं अत्यन्त भयभीत संज्ञा शून्य बनाहुआ था! केवल नारायण, नारायण ऐसा पुकारा था।" बस, इतने में चारों जैसे चीलें मांस के टुकडों पर टूटती हैं, वैसे वे एक साथ टूट पड़े और उच्चस्वर से बोले-डरोमत २ निर्भय हो जाओ! महाराज! हम तो हक्के बक्के से रह गये! देखिये हमारी हड्डी पसली सब चूर करदी हैं। सो नाथ! हमें बतावें वे अद्‌भुत पुरुष कौन थे किस के दूत थे। 'नारायण' शब्द सुनते ही वे कहाँ से आ गये? और उन्होंने उस पापी को हमसे बल पूर्वक क्यों छुड़ा लिया।"

श्री० शुकदेवजी कहते हैं। "राजन! इतना सुनते ही यमराज की आंखों में प्रेम के अश्रु आ गये! नारायण नाम के श्रवण मात्र से ही उनका अंग पुलकित हो उठा! वे भगवान के चरण कमलों में ही उनका ध्यान करते हुये प्रेम के आंसुओं को पोंछते हुये दूतों के प्रश्न का उत्तर देने के निमित्त प्रस्तुत हुये!

शंख चक्र वनमाल गदा भृत सेवक जिनके।
काके वे दूत कौन स्वामी हैं तिनके॥
सबके शासक आप जीव प्रानन के हर्त्ता।
शासन सबको करें, शुभाशुभ निर्णय कर्त्ता॥
इतने पै ऊ आपकी, आज्ञा उल्लंघन भई।
बिना बात के बीच में, हमरी दुर्गति है गई॥

—: सूचना :—

यज्ञ की आवश्यकता

[लेखक—याज्ञिक पं० श्री वेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य, काव्यतीर्थ]

कर्म-मीमांसा के प्रवृत्त होने पर मानव-देह धारण करते ही द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) ऋषिऋण, देव-ऋण और पितृऋण इन ऋणत्रय से ऋणी बनकर रहता है, उन ऋणों से मुक्ति क्रमशः इस प्रकार होती है— ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषि-ऋणसे, यज्ञ के द्वारा देव-ऋणसे और सन्तति के द्वारा पितृऋण से होती है। श्रुति में भी कहा है—

"जायमानो वै *ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः॥"

[तैत्तिरीय संहिता, ३।१०।५]

'त्रैवर्णिक जन्मकाल से ही ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण इन तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी बन जाता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषिऋण से, यज्ञ के द्वारा देवऋण से और सन्तति के द्वारा पितृऋण से मुक्ति होती है।'

भगवान् मनु ने भी 'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य' (३।३५) इत्यादि वाक्य द्वारा उपर्युक्त ऋणत्रय के अपकरण को ही मनुष्य का प्रधान कर्म बतलाया है। ऋणत्रय में 'देवऋण' का ही उल्लेख है। देवऋण से मुक्त होने के लिये उपर्युक्त तैत्तिरीय श्रुति ने स्पष्ट बतलादिया है कि यज्ञों के द्वारा देव-ऋण से मुक्ति होती है। वह यज्ञादि कर्म अत्यन्त पावन तथा अनुपेक्षणीय हैं, जैसा कि अनेक मत-मतान्तरों का निरास करते हुये गीता के परमाचार्य स्वयं भगवान् ने सिद्धान्त किया है—

यज्ञ-दान-तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(१८।५)

इतना ही नहीं, जगत्कल्याण की मीमांसा तथा कर्त्तव्य सत्पथ का निश्चय करते हुये भगवान् ने स्पष्ट कहा है—यज्ञिय कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्म लोक-बन्धन के लिये ही हैं—

'यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।'

(गीता, ३।९)

इस प्रकार अनेक श्रुति-स्मृति ग्रन्थों में तथा उपनिषदों में यज्ञ को मनुष्य का प्रधान धर्म कहा है।

वेदों में विभिन्न प्रकार के श्रेष्ठ कर्म कहे गये हैं, किन्तु उन समस्त श्रेष्ठ कर्मों की अपेक्षा यज्ञ को 'श्रेष्ठतम कर्म' कहा गया है—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' [शतपथ-ब्राह्मण, १।७।१।५]

जिस प्रकार यज्ञ अत्यन्त प्राचीन कर्म है, उसी प्रकार मनुष्य जाति भी अत्यन्त प्राचीन है। मनुष्य जाति के जीवन का प्रारम्भ यज्ञ से ही होता है। इस विषय का स्पष्टीकरण गीता के तृतीयाध्याय में इस प्रकार किया गया है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

[१०, ११]

'प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ के साथ प्रजा को उत्पन्न करके उनसे कहा—इस यज्ञ के द्वारा तुम्हारी उन्नति हो और यह यज्ञ तुम्हारे लिये मनोभिलषित फल को देने वाला हो। तुम इस यज्ञ से देवताओं को सन्तुष्ट करते हुये परस्पर दोनों अत्यन्त श्रेष्ठ श्रेयप्रद अर्थात् कल्याण पद को प्राप्त करो।'

* ब्राह्मण यह पद द्विजाति मात्र का उपलक्षण है।

यज्ञ का तत्त्व बड़ा ही दुरूह है, इसके यथार्थ तत्त्व को जानने के लिये सत्यता की आवश्यकता है, वह सत्यता श्रद्धा से प्राप्त होती है—'श्रद्धया सत्यमाप्यते' [शु०य० १६।३०]

सत्यता और श्रद्धा के सन्मेलन होते ही यज्ञादि तत्त्व जान लेने में किसी प्रकार की कठिनता नहीं रह जाती। अतः सुस्पष्ट है कि यज्ञ जैसे दुरूह तत्त्व को जानने के लिये श्रद्धा एवं सत्यता की विशेष आवश्यक्ता है।

दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद-इन सबका आश्रय सत्य ही है। अतः सबको सत्यवादी होना चाहिये। इसकी पुष्टि वाल्मीकीय रामायण में भी की गई है—

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ॥
(अयोध्याकाण्ड १०६।१३-१४)

पूर्वकाल के प्राणी यज्ञ के वास्तविक स्वरूप को भलिभांति जानते थे और उनके हृदय में श्रद्धा-भक्ति का अस्तित्व था। अतएव वे समय-समय पर यज्ञादि धार्मिक कार्य करते रहते थे, जिससे उनका तथा संसार का कल्याण होता रहता था। उस समय हमारा यह पवित्र भारतवर्ष अनेक सुख-समृद्धियों से परिपूर्ण था। समस्त प्राणी सर्वप्रकार से सुखी थे। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, अकाल-मृत्यु, महामारी प्रभृति रोग-शोकादि का तो लोग नाम भी नहीं जानते थे। किन्तु आज के प्राणी समय के हेर फेर से यज्ञ के महत्त्व को भूल कर यज्ञ करना तक त्याग चुके हैं। इसीलिए देवगण भी हमसे असन्तुष्ट हैं। देवताओं की असन्तुष्टता से ही आज सारा संसार अनेक कष्टों से पीड़ित है। सर्वत्र भूकम्प, अकाल, बाढ़, महामारी आदि किसी न किसी प्रकार की विपत्ति सर्वदा अपनी स्थिति जमाये रहती है। ऐसी भीषण परिस्थति में संसार के सर्वविध कल्याणार्थ यदि कोई सीधा साधा मार्ग है, तो वह है यज्ञ। यज्ञ ही एक ऐसा अकाट्य साधन है जिसके अनुष्ठान से देवगण की सन्तुष्टि होती है और देवगण की सन्तुष्टि से मनुष्य पुत्र-पौत्रादि एवं धन-धान्यादि सभी प्रकार के ऐहलौकिक सुखों को प्राप्त करता है और मरने के बाद परलोक अर्थात् स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है। अतः प्रत्येक द्विज को यज्ञ करते रहना चाहिये। जो लोग यज्ञ के वास्तिविक रहस्य को न समझ कर यज्ञ नहीं करते वे नष्ट हो जाते हैं। इस विषय में शास्त्र कहता है—

नास्त्ययज्ञस्य लोको वै नायज्ञो विन्दते शुभम्।
अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यति छिन्नपर्णवत् ॥

'यज्ञ न करने वाले पुरुष पारलौकिक सुखों से तो वञ्चित रहते ही हैं, किन्तु वे ऐहिक कल्याणों की भी प्राप्ति नहीं कर सकते। अतः यज्ञहीन प्राणी आत्मपवित्रता के अभाव से छिन्न-भिन्न पत्रों की तरह नष्ट हो जाते हैं।'

गीता में भी कहा है—

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरु सत्तम।'

'हे अर्जुन! यज्ञ न करने वाले को यह मृत्युलोक भी प्राप्त नहीं हो सकता, फिर दिव्यलोक की तो बात ही क्या है।'

वेद भी कहता है—

अयज्ञियो हतवर्चा भवति।' अथर्ववेद १२।२।३७
यज्ञहीन पुरुष का तेज नष्ट हो जाता है।'

जब तक इस पवित्र भारत-भूमि में यज्ञों का उचित सम्मान था, तब तक इसकी मर्यादा तथा सुख सराहनीय था। प्राणी-प्राणी में सद्भावना थी, सर्वत्र कल्याण ही कल्याण दृष्टिगोचर होता था। जब से नवयुग ने अपनी महिमा के प्रचुर प्रसार का आरम्भ किया तभी से यज्ञादि कर्म में शिथिलता आने लगी। जिसका परिणाम यह हुआ कि सुख के बदले दुःख, मर्यादा के बदले अकीर्ति, पारस्परिक प्रेम के बदले ईर्ष्या तथा द्वेष, द्रव्य के बदले

(शेष पृ० १७ पर)

गोस्वामी तुलसीदास का साधन-पथ

(लेखक—आचार्य्य श्री सत्यनारायणसिंहजी वर्मा)

भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी विश्व विख्यात विनय पत्रिका में एक पद दिया है जिस पद से आपकी साधना बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। रंच मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता। गोस्वामीजी जिस पीयूष को पान कर अमर हो गये, जिस अलौकिक वस्तु की प्रेरणा से अपने लोक-हित का संदेश मानव-संसार को दिया है, जिस कल्पवृक्ष की शीतल छाया में अवस्थित हो आपने स्वयं अभिलषित फल को तो प्राप्त किया ही है, जीव मात्र के कल्याण का सदाव्रत बाँटा है, उसी वस्तु की अभिव्यक्ति आपने इस पद में की है। पद यों है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मो को तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो।

जिस किसी भी व्यक्ति को दूसरे का भरोसा हो, वह उसका भरोसा करे, मैं किसी को मना नहीं करता, रोकता नहीं, वह खुशी से उसकी आशा कर सकता है; किन्तु यदि मेरी बात पूछते हैं तो मैं यही कहूँगा कि मेरे लिये सिर्फ एक "राम" नाम ही कल्पवृक्ष है। इस वृक्ष में मधुर फल फले हुए हैं। बड़े स्वादिष्ट और रसीले हैं। मैं चखता हूँ और मुग्ध होता हूँ। समझा न वे फल क्या है? फल का नाम है "कल्याण"। श्री 'राम' नाम के कल्पवृक्ष में कल्याण के ही फल लगे हुए हैं। यह मैं अपनी बात कहता हूँ, और लोगों की बात मैं नहीं कहता। मेरा कल्याण तो इसी कल्प-वृक्ष की शरण में आने से हुआ है। मैंने इसी नाम महाराज की रट लगाई है, जप किया है और कल्याण फल का रसास्वादन कर तृप्त हुआ हूं। तो क्या और सभी साधन व्यर्थ हैं? गोस्वामीजी आगे दर्शाते हैं—

करम-उपासन ग्यान-वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावन के अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो॥

कोई व्यक्ति यदि सावन के महीने में, जब कि प्रकृति हरी भरी रहती है, हरियाली देखते-देखते अंधा हो जाय तो उस व्यक्ति को अंधा हो जाने पर भी वही दृश्य आँखों के सामने लहराता हुआ दिखलाई पड़ता है। गोस्वामीजी कहते हैं—बस ठीक यही दशा मेरी भी हो गई है। मैं जिधर दृष्टि डालता हूँ, उधर ही श्री राम नाम दिखलाई पड़ता है, दूसरी कोई वस्तु नज़र में आती ही नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञान काण्ड तथा वैदिक सिद्धान्त सभी व्यर्थ हैं, अनावश्यक हैं और निष्फल हैं। गोस्वामी जी जोर देकर कह रहे हैं कि—'ये सब भांति खरो' ये सभी, सभी दृष्टियों से बिलकुल खरे हैं, सच्चे ठोस हैं। इनकी सत्यता में तनिक भी सन्देह का स्थान नहीं है। बावन तोला पाव रत्ती सही और दुरुस्त है। किन्तु मैं क्या करूँ, मैं तो "सावन का अंधा" ठहरा, हरा ही हरा, राम ही राम मुझे दृष्टि गोचर होता है। ऐसी बात नहीं कि मैंने इन सभी साधनों की उपेक्षा की है, तिरस्कार किया है, कभी मन दिया ही नहीं। मैंने तो समय लगाया है, अभ्यास किया है, पर क्या कहूं, मेरी दशा ही कुछ विलक्षण है—

चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधा रस पेखत परुसि धरो॥

शहर के कुत्ते जैसे दुकानों पर पत्तल बड़ी उत्सुकता से चाटते हैं। पर उनकी बुभुक्षा की ज्वाला शान्त नहीं होती, भूख लगी ही रह जाती है, ठीक उसी प्रकार जब तक मैं उक्त साधनों में लगा रहा, मेरा पेट कभी नहीं भरा, भूख लगी ही रही। जब से नाम कल्पतरु के नीचे आया हूँ, क्या कहूं ? मेरे जीवन की यवनिका ही सर्वथा बदल गई है। जूठन चाटने की कौन सी बात अपने सामने अमृत रस ही परोसा पाता हूँ। भाव यह कि पहले मैंने अनेक साधन किये, किन्तु किसी से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं हुई. तरसता ही रह गया पर जब से नाम महाराज की शरण में आया हूँ, परमानन्द का मधुर रस छक कर पीने को मिलता है, पूर्ण सन्तोष हो गया है. तनिक भी अब भूख नहीं है। यह तृप्ति लौकिक और पारलौकिक दोनों के लिये है। कहते हैं—

स्वारथ औ परमारथ हूँ को नहिं 'कुंजरो नरो'।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो।।

नाम के प्रताप से मेरा सांसारिक काम तो मजे में चलता ही है, परलोक की सिद्धि का होना भी ध्रुव है, अटल है निश्चित है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, 'नहिं कुंजरो नरो' का अभिप्राय यह है कि महाभारत में जब आचार्य्य द्रोण पांडव की सेना का विध्वंश करने लगे तो भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से आचार्य्य को मारने के लिये कहा। गुरु-हत्या के भय से अर्जुन हिचक गये। यह देख भगवान् ने भीमसेन को अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारने की आज्ञा दी। अश्वत्थामा मारा गया। अश्वत्थामा आचार्य्य के भी पुत्र का नाम था। जब आचार्य्य को यह खबर मिली कि अश्वत्थामा मारा गया, शोक विह्वल हो धर्मराज से पूछा—"क्या अश्वत्थामा मारा गया।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया 'अश्वत्थामा' हतो नरो वा कुंजरोवा," मनुष्य मारा गया वा हाथी। 'मनुष्य मारा गया" तो जोर से कह दिया "वा हाथी" धीरे से अपने प्यारे पुत्र की मृत्यु सुन द्रोणाचार्य्य मूर्छित हो गिर पड़े। इसी बीच धृष्टद्युम्न ने उन का मस्तक काट दिया। तब से 'नरो वा कुंजरोवा' का प्रयोग कहावत के रूप में होता है। इसका अर्थ है सन्देहात्मक। गोस्वामीजी कहते हैं कि लोक की सिद्धि तो प्रत्यक्ष ही है, परलोक की सिद्धि में भी सन्देह का बिलकुल स्थान नहीं है। परलोक की सिद्धि होकर ही रहेगी। प्रमाण में आप पत्थर का पुल जो समुद्र में बँधा था उस ऐतिहासिक घटना की ओर इशारा करते हैं। बन्दरों ने बड़े बड़े पत्थरों पर 'राम' लिख दिया था और वे पत्थर तैरने लगे थे। पुल बंध गया था और उस पर श्री रघुनाथजी की विशाल सेना पार हो गई थी; तो क्या उस 'राम' के प्रताप से भव-सागर में पुल नहीं बँध सकता और मैं अकेले पार नहीं कर सकता। इस प्रकार अपनी दृढ़ भावना को दर्शाते हुए आगे कहते हैं—

प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो बाप-माय दोउ, आखर हौं सिसु अरनि अरो

मैं यह कदापि नहीं कहता कि जो मेरी भावना है वही ठीक है, सबों को इसी पथ पर आ जाना चाहिये; तभी उनका कल्याण होगा, अन्यथा नहीं। विलक्षण विषय तो यह है कि जिस व्यक्ति को जिसमें प्रेम और विश्वास है. उसी से उसके सभी काम चलते हैं, पूरे होते हैं। यह सिद्धान्त अटल है, अमिट है। अतः जो जहाँ हैं, वे वहीं अपना प्रेम बढ़ावें और विश्वास दृढ़ करें। उनके लौकिक पारलौकिक सभी काम वहीं से चलेंगे। इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं है। मैं अपनी बात क्या कहूँ. मुझे तो ऐसा ही लगता है कि "रा" और "म" ये दोनों अक्षर ही मेरे माता-पिता हैं, इन्हीं के आगे मैं बालहठ करूँगा, अड़ूँगा, मचलूँगा और जिस वस्तु की मुझे आवश्यकता होगी, उस वस्तु को मैं लेकर ही छोड़ूँगा, मेरा दृढ़ विश्वास है कि जैसे सभी माता-पिता

अपने बच्चे की रुचि रखते हैं, दुलार करते हैं, मेरे माता-पिता भी मेरी रुचि पूर्ति में, तनिक भी कोर कसर नहीं करेंगे, खूब दुलारेंगे, पुचकारेंगे माताजी वात्सल्य हृदया हैं और पिताजी बड़े दयालु हैं। अब अंतिम पद सुनें. इसमें कितनी सचाई, कितनी दृढ़ता है, यह कितना यथार्थ और कितना स्पष्ट है:—

संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौं जरि जीभ गरो
अपनो भलो राम नाम हिते तुलसिहि समुझि परो॥

उपर्युक्त दो पंक्तियों में गोस्वामीजी ने कैसी कड़ी शपथ खाई है। कहते हैं—यदि मैं कुछ छिपा कर कहता होऊँ, झूठी फूसी बात बनाता होऊँ तो मैं शंकरजी को साक्षी रख कर कहता हूँ, मेरी जीभ गल जाय। तुलसीदास को तो अपना कल्याण एक राम नाम ही से समझ पड़ा है। सहृदय पाठक विचारें—संत तुलसीदास, भक्त-शिरोमणि तुलसीदास, युगल सरकार के वात्सल्य भाजन तुलसीदास, पीयूष वर्षी घन तुलसीदास, लोक कल्याण कल्पद्रुम तुलसीदास, शान्ति निर्झर तुलसीदास, त्रैतापहारी शीतल सुधाकर तुलसीदास और विश्व हित चिंतक तुलसीदास की इतनी कड़ी शपथ के बाद भी क्या किसी शंका का स्थान रह जाता है! कदापि और कथमपि नहीं।

———

(पृ० १४ का शेष)

दरिद्रता का नग्न नृत्य एवं नाना प्रकार के अकल्याण ही दृष्टि-पथ हो रहे हैं। राजा, रङ्क, फकीर सभी सुख लेश की आकांक्षामात्र में ही सफल होते दिखाई दे रहे हैं। अतः सुस्पष्ट है कि उपर्युक्त दुःखराशि एवं संसार के समस्त दुःखसमूह को आमूलचूल नष्ट-भ्रष्ट करने वाला केवल यज्ञ ही ऐसा अकाट्य साधन है जिसके द्वारा मनुष्य सर्वतो-भावेन सुखी हो सकता है।

पहले किसी समय इसी पुण्य भारत-भूमि में सभी त्रैवर्णिक श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने श्रौत-स्मार्त्त यज्ञों का अनुष्ठान किया करते थे। उस समय कोई भी ऐसा द्विज नहीं था जो वेदों का स्वाध्याय अथवा वेदोक्त कर्म अग्न्याधान (अग्निहोत्र) न करता हो। वर्त्तमान कराल कलिकाल के भयङ्कर प्रभाव से अत्यल्प संख्या में गिने चुने याज्ञिक दिखलायी देते हैं।

अस्तु, अन्त में मेरी भूतभावन श्री विश्वनाथजी के चरणों में प्रार्थना है कि यह देश पुनः अपनी प्राचीन उन्नति के लिये अग्रसर हो, घर-घर में त्रेताग्नियाँ प्रज्वलित हों, सब लोग पुनः अपने मुख्य धर्म यज्ञादि पर आरूढ़ हों, देवता लोग तृप्त हों, तृप्त देवगण यजमानों को अभीष्ट फल प्रदान करें भारतीय आर्यजाति में परस्पर प्रेमाधिक्य हो तथा यह भूमण्डल मूर्द्धन्य पवित्र भारतभूमि एवं आर्य-जाति पुनः 'सत्मेव जयते नानृतम्' के अवलम्ब से विश्वविजयी बने।

———

भूल
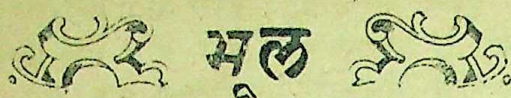
(ले० पं० श्री गोविन्ददासजी 'सन्त' धर्मशास्त्री)

एकबार एक इंस्पेक्टर साहब ने किसी एक स्कूल में जाकर लड़कों की परीक्षा लेते समय एक लड़के से पूछा कि—आठ और आठ कितने होते हैं ?

लड़के ने आगे हाथ बढाकर कहा कि—आठ और आठ होते हैं चार। यह सुन कर सब लड़के हंस पड़े। सब मास्टर भी हंसने लगे और इन्स्पेक्टर साहब को भी हंसी आ गई। दो मिनट तक हंसी का बाजार खूब गरम रहा।

आप कहते होंगे कि उस लड़के ने बड़ी भूल की। वह इतना भूला कि आठ और आठ सोलह बतलाना तो दूर रहा किन्तु एक आठ में भी गोली लग गई।

आप और हम सभी मिलकर उस लड़के की भूल का अनुभव करते हैं किन्तु हम अपनी भूल का अनुभव नहीं करते कि हमने कितनी भूल की।

एकबार चार मित्र विदेश जारहे थे। सांयकाल किसी एक ग्राम की धर्मशाला में जाकर ठहरे। रात्रि में चारों ने विचार किया कि हम सभी सो जायेंगे तो हमारा सामान लेकर कोई चम्पत बनेगा और यदि सभी पहरा देंगे तो निद्रा न लेने के कारण बीमार हो जायेंगे। अन्ततोगत्वा चारों में यह सलाह होगई कि प्रत्येक व्यक्ति दो दो घण्टे का पहरा दे और तीन सोवें। इस प्रकार रात्रि के नौ से प्रातःकाल के पांच बजे तक आठ घन्टे में से दो दो घन्टे प्रत्येक व्यक्ति ने नियत कर लिये।

इन लोगों में एक व्यक्ति गंजा भी था यद्यपि इसका नाम वंशी था किन्तु गंजा होने के कारण सब इसको गंजा गंजा ही कहते थे।

इनमें एक नाई भी था। जब तीसरा पहरा एक से तीन तक उस नाई का आया तो उसने विचार किया कि एक से तीन तक का समय कटना बड़ा मुश्किल है। यह हजरत नाई बड़ाही मज़ाकी था। उसने देखा यों तो समय व्यतीत होगा नहीं, चलो कुछ काम ही करें। ऐसा विचार करके उसने अपनी पेटी खोली और उसमें से उस्तरा कैंची आदि निकाल कर सोते हुये सोहन (जिसका नम्बर इसके बाद ३ से ५ तक का था) के बाल बनाना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे ऐसी हजामत बनाई कि (जैसे नर्मदा नदी में जल के झकोरों से गोल मटोल हुये चिकने पत्थर के समान) उसका सिर सफाचट चिकना कर दिया। इतने ही में घड़ी ने टन् टन् टन् करके तीन बजा दिये। नाई ने भी तुरन्त अपनी दुकान समेट कर सोते हुये सोहन को जगाया कि उठो अब तुम्हारा समय होगया।

सोहन उठा और कहने लगा क्या हमारा समय आ गया। नाई कहने लगा जी हां। ज्योंही सोहन ने अपने मस्तक पर हाथ फेरा त्योंही उसे बड़ा क्रोध आया और नाई से कहने लगा कि अरे धूर्त ! इस समय पहरे का नम्बर तो हमारा था सो हम को न जगा कर तूने गंजे को जगा दिया ! नाई ने कहा मैंने तो आपको ही जगाया है गंजे को नहीं। सोहन ने कहा चल हट चालाक ! मैं तेरी चालाकियों में आने वाला नहीं तूने जगाया तो गंजे को है और कहता है कि मैंने तुम्हें जगाया है, देख हमारा शिर सफाचट चिकना पड़ा है।

सज्जनों ! नाई ने तो सोहन को ही जगाया किन्तु सोहन अपने शिर को सफाचट चिकना देख अपने स्वरूप को भूल अपने आपको गंजा ही समझ बैठा।

यही हाल आज हमारा हुआ है हम अपने असली स्वरूप को भूलकर माता, पिता, स्त्री पुत्र, धन, महल, परिवार एवं शरीर आदि को अपना समझने लगे हैं।

नित्य साबुन से मल-मल कर तेल फुलेल आदि लगा कर सुसंस्कृत सुन्दर शरीर को देख कर हम फूले नहीं समाते। वह भी हमारा नहीं। अन्त समय जल कर चिता में भस्म हो जायगा। जगद् गुरु श्री १००८ श्रीमन्निम्बार्काचार्य पाद पीठाधिरूढ श्री परशुराम देवाचार्यजी महाराज ने कैसे सुन्दर शब्दों में बताया है कि—

माया सगी न मन सगो, सगो न यह संसार।
परशुराम या जीव को, सगो है सरजन हार॥

एक पहुंचवान फकीर ने बादशाह पर कृपा करने के लिये उसके महलों में पदार्पण किया। उस समय बादशाह महल में नहीं थे। फकीर सांसारिक व्यक्ति की भांति उसके सुसज्जित सुन्दर पलंग पर आंखें मूंद कर लेट गया, जिससे देखने वाले को निद्रा आई हुई सी प्रतीत होने लगे। गुणातीत पुरुष तो सांसारिक वस्तुओं से व्यवहार करते हुये भी वास्तव में उनसे निर्लिप्त ही रहते हैं। इतने ही में बादशाह आये और अपने पलंगपर एक साधारण अपरिचित व्यक्ति को सोते हुये देखकर बड़े नाराज हुये। उसे जगाकर कहने लगे कि—बिना हमारी इजाजत के हमारे महल में क्यों आये।

फकीर ने कहा कि मुझे मालुम नहीं था कि यह तुम्हारा मकान है मैं तो सराय समझ कर इसमें आगया हूं।

बादशाह ने कहा—यह आप ने कैसे जाना कि यह सराय है ?

फकीर ने कहा—अच्छा यह बताओ कि आप के पहले इसमें कौन रहता था। बादशाह ने कहा—हमारे पिता। फकीर ने पूछा—और उसके पहले। बादशाह ने कहा—हमारे दादा। फकीर ने फिर पूछा—और उससे भी पहले। बादशाह ने कहा कि हमारे परदादा। फकीर फिर कहने लगा कि—उनसे पहिले बादशाह ने कहा—उनके पिता, दादा और परदादा आदि। तब फकीर ने कहा यह सराय नहीं तो और क्या है। नादान ! जब इसमें इतने व्यक्ति रह-रह कर चले गये और यह उनका भी नहीं रहा तो फिर तुम कैसे कहते हो कि यह हमारा मकान है। बतला यह सराय नहीं तो और क्या है। यह सुनकर बादशाह को ज्ञान हो गया। वह फकीर के चरणों में गिर पड़ा और अपनी भूल की माफी मांगने लगा।

यह संसार बड़ा विचित्र है इसमें मनुष्य को सावधानी के साथ संभल कर चलने की आवश्यकता है।

भजन:—

मुसाफिर ! संभल संभल पग धर ॥टेर॥
धन दौलत और माल खजाना सुत तिरिया निज घर।
मात पिता और बहिन भानजी झूंठा सब परिकर ॥१॥
दिवस पक्ष पुनि मास वर्ष ऋतु सब ही तो मिलकर।
दिन दिन आयु तेरी मूरख जाते हैं सब चर ॥२॥
इस दुनिया के मोह जाल से चलता तू बच कर।
काम क्रोध मद मोह लुटेरे इनका रखियो डर ॥३॥
यह दुनिया है भूल भुलैया माया का चक्कर।
सब से हिल मिल रहना जग में काहू से मत लर ॥४॥
दीन बन्धु दुख नाशक सबके ब्रजनन्दन यदुवर।
चरण कमल की नौका चढ कर भवसागर से तर ॥५॥
धर्म शास्त्र और गुरुजनों की बातें सब हितकर।
'सन्त' सदा भज राधा माधव प्यारे सर्वेश्वर ॥६॥

संसार के सभी पदार्थ नाशवान, क्षणभंगुर तथा अनित्य है। इस नित्य अविनाशी जीवात्मा के सच्चे साथी तो वे ही परमात्मा हैं, जिन्होंने महान कृपा करके मनुष्य शरीर देकर इसको अपने उद्धार करने का सुअवसर प्रदान किया है। वे हमारी पद पद पर रक्षा करते हैं अतः हमारी उस मूल वस्तु जहां से कि हम आये हैं हमें वहीं पहुंचकर सच्चे सुख एवं आनंद की प्राप्ति हो सकती है। हम सांसारिक क्षणभंगुर विषय सुखों में फंस कर अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक, करुणा वरुणालय, सच्चिदानंद स्वरूप परात्पर पुराण पुरुषोत्तम, भक्तवांछाकल्पतरु, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर को जो हमारे सच्चे संरक्षक, माता, पिता, भाई बन्धु और मित्र हैं उनको भूले हुये हैं यह हमारी भूल नहीं तो और क्या है ?

संकीर्त्तन प्रेमी-सन्त

(ले० श्री० अवधकिशोरदासजी, श्रीवैष्णव)

वह संकीर्तन का प्रेमी मतवाला सन्त था, उसकी मस्ती को देख कर लोगों ने 'मस्तराम' नाम से पुकारना प्रारम्भ कर दिया था। नौजवान, शरीर का हृष्ट पुष्ट, सुरीला कण्ठ, और भावुक हृदय सभी को एकाएक अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। बालकों से इसका विशेष स्नेह रहता था। प्रात.काल ईश्वराधन के बाद वह बालकों के झुंड के साथ 'रघुपति राघव राजाराम' की धुन लगाता और चेतावनी के सुन्दर पद गा-गा कर गलियों में घूम जाता। उसकी झोली में फल और मेवा सदा ही रहता था, बच्चों को बांटने के ज़िये वह यह संग्रह सदा साथ रखना पसन्द करता था, और कुछ भी वह कभी न लेता न साथ रखता, पता नहीं उसका विश्राम स्थान कहीं था कि नहीं।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन, लगातार बीसों दिन मेरे ग्राम में उसने सँकीर्तन की धूम मचाई। उसका स्नेह, त्याग-सहिष्णुता, उदारता नास्तिकों को भी अपने पास बुला लेती थी। लोग कुछ कहें-हँसे-निन्दा करें, ठग-चोर-सी० आई० डी० जो कुछ बतावें वह तो अपनी धुन में मस्त था, अनेकों उसके पीछे चले, अनेकों ने ललचाया, धमकाया परन्तु वह तो था प्रेम का पागल। ऐसी अंट संट बातें कहते लोग स्वयं थक कर लौट जाते। इस प्रकार वह प्रति दिन ६-७ ग्रामों में चक्कर लगाया करता था, कोई उसको देवता कहता, कोई सिद्ध योगी, कोई पागल तो कोई पहले दरजे का बदमाश। किसी के बात का कुछ भी प्रभाव उसके हृदय पर कभी पड़ते किसी ने न देखा।

मैंने अपने मित्रों से छिप कर एक बार उसका रहस्य जानने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर अज्ञात रूप से उसके आगे पीछे चलना प्रारंभ कर दिया। जब मार्ग में समागम हो गया 'मस्तराम' पूछ बैठे "कहाँ तक चलोगे ? लौट जाओ भैया ! पागलों के साथ बुद्धि वालों का मेल नहीं बैठता।" मैं कुछ भी उत्तर दिये बिना आगे पीछे चलता ही रहता, लगभग दो कोश के बाद एक गाँव मिला, एक अनाथ बालक १३ वर्ष का, एक झोंपडी में रोगी पड़ा हुआ था, मस्तराम उसके पास चला गया, उसका घर साफ कर दिया। पानी गरम करके छान कर एक घड़े में ढांक कर रख दिया, खाने को कुछ फल दिये, और कीर्तन ध्वनि सुनाना प्रारम्भ किया, लगभग आधा घँटा के बाद बालक से कहा-कल तुम मेरे साथ कुछ दूर टहलने लायक हो जाओगे। एक पद्य उसको कंठस्थ भी करा दिया. गाने का ढंग भी बता दिया, आज ६ दिनों से सँत का यह कार्यक्रम चल रहा था। जीवन से हताश बना हुआ बालक पूर्ण स्वथ हो गया था।

मस्तराम आगे बढ़ा, मैं भी पीछे लगा, बहुत चेष्टा करने पर भी मैंने साथ न छोड़ा, दूसरे ग्राम में भी इसी प्रकार तीन निराधार व्यक्तियों को उसने सुन्दर संगीत सुनाया, उनकी व्यथा का हरण कर वह आगे बढ़ा, फिर एक वृक्ष के नीचे ग्राम से बहुत दूर नहीं किनारे 'तम्बूरा' सिरहाने रख कर सो गया, मैं भी वहीं सो रहा।

थकावट के कारण ऐसी नींद आयी कि वह मस्तराम कब कहां चला गया कुछ पता न लगा, परन्तु उस दिन

से वह मेरे गांव में फिर कभी न आया। मैं उस बालक के पास पहुंचा जिसको कल टहलने लायक बनाने की बात कह गया था। ठीक समय पर वह पहुंच गया। कुशल समाचार पूछने के बाद संकीर्तन प्रारंभ किया। उसका आनन्द लहराने लगा मस्ती में आकर नृत्य करने लगा बालक भी उठ खड़ा हुआ और प्रेमोन्मत्त होकर उसके साथ नृत्य करने लगा मैं भी पत्थर तो था नहीं उसके भावपूर्ण सँकीर्तन में तो वह प्रभाव था कि पत्थर की प्रतिमा भी नाच उठे। साक्षात् देवर्षि नारद ही हों ऐसा प्रतीत होता था। लगभग दो घँटे के पश्चात् आवेश शान्त हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज इसी प्रकार उसने अपने सभी रोगियों को प्रेमामृत पिला कर पूर्ण स्वस्थ ही नहीं कृतार्थ भी कर दिया।

जब वह नदी की ओर चलने लगा तब बड़े मीठे बचनों द्वारा मुझे लौटाने लगा, मैंने उसके चरण पकड़ लिये, रो पड़ा, नहीं सहा गया उस दयालु हृदय को। मुझे उठा कर गले लगा लिया और कहा—"भैया। संसार में प्रभु का भजन और सत्संग ही सार है, भाव बिना का भजन-सेवा सब कुछ व्यर्थ है। दीन हीनों के साथ ही सर्वेश्वर आत्मीय स्वजन की भाँति सदा निवास करता है। अन्य आडँबर तो भजन के कांटे ही है। मैंने जीवन की प्रारम्भिक दशा में संगीत के द्वारा लाखों रुपये कमाये संगीत पर मोहित होकर मर मिटने वाले हजारों मिले परन्तु साधना सफल कर सर्वेश्वर के समीप पहुंचाने वाला कोई न मिला, हृदय दिनों दिन कामनाओं की ज्वाला में तप्त होने लगा। तभी श्री गुरुदेव की कृपा प्राप्त हुई उन्होंने आज सेवा और संकीर्तन दो महामन्त्र प्रदान किये, उनके अनुष्ठान से ही चित्त सर्वेश्वर के समीप ले चलता है। जाओ तुम से भी बने तो दीन हीनों को अपनाना, माया में मतवाले मनुष्यों को इस मार्ग का पता ही नहीं है। उन्हें चेताओ और रामजी को रिझाओ, मेरे साथ भटक कर क्या करोगे, इस अनुष्ठान को तुम चाहो वहाँ सभी दशा में कर सकते हो, इस प्रेम मार्ग-भक्तिमार्ग सेवा मार्ग के सब कोई समान अधिकारी हैं।

इतना कह कर उसने तम्बूरा उठाया और चल पड़ा "रघुपति राघव" अलापता हुआ अज्ञात की ओर मैं देखता ही रहा, बहुत कुछ कहने की इच्छा रखते हुए भी कुछ न कह सका, परन्तु उसका भाव, सेवा, प्रभुभक्ति, अनुपम अनुराग, त्याग तितिक्षा सभी मेरे अन्तःकरण पर चित्र की भांति अङ्कित हो गये।

॥ श्रीराम शरणं मम ॥

गृहस्थ जीवन की सफलता

(लेखक पं० श्रीरामजी शर्मा आचार्य, सम्पादक अखण्ड ज्योति)

शास्त्रों में कहा है कि "न गृहं गृह मित्याहु गृहणी गृह मुच्यते" घर को घर नहीं कहते वरन् गृहणी को ही घर कहते हैं और लोक में प्रसिद्ध है कि "बिन घरनी घर भूत को डेरा" लोक और शास्त्र की बात का समर्थन व्यवहार द्वारा हो जाता है।

मनुष्य जीवन का आधार प्रेम है। जहाँ प्रेम है वहाँ स्वर्ग है, सुख है। जिस घर में प्रेम नहीं वहां रहने की इच्छा नहीं होती, ठहरने की आकांक्षा नहीं रहती। प्रेम में एक आकर्षण है, खिंचाव है।

जब तक मनुष्य अपनी ही अपनी बात सोचता है तब तक कहीं से भी उसे आकर्षण प्राप्त नहीं होता। आकर्षण या खिंचाव उसी समय उसे अनुभव होता है जब वह अपने को भूल कर औरों के प्रति अपना उत्सर्ग कर देता है। जब स्वार्थ को खतम करके परम स्वार्थ परमार्थ की शरण लेता है।

कौन मानव जान बूझ कर दुःख की ओर कदम बढ़ाता है, परेशानी को मोल लेना चाहता है। जीवन का काम ही है सुख की ओर बढ़ना, शान्ति की ओर चलना। लेकिन अपने सुख की चिन्ता नहीं, जब तक दूसरों के सुख की चिन्ता न होने लगे, तब तक सुख पास नहीं आता। इसी से तो हम कहते हैं कि दूसरों के लिये त्याग करना मानव धर्म है। दूसरे के लिये सुख खोजने की प्रवृत्ति उत्पन्न करने से अपने लिये सुख पाने का राजपथ तैयार किया जाता है। इस प्रवृत्ति का जनक है—गृहस्थ जीवन। वह एक ऐसी पाठशाला है जहां इस हाथ देकर उस हाथ पाने की तात्कालिक शिक्षा प्राप्त होती है।

विवाहित जीवन के लिये जिस नारी को पराये घर से लाते हैं और अपना घर और उसकी ताली कुंजी उसे दे देते हैं तो ठंडी सांस लेते हैं। उसे उस घर की मालकिन बना देने पर ही मानव के सुख की शुरुआत कर देते हैं और तब फिर पुरुष का सारा व्यापार अपने लिये न होकर उस नारी के लिये होता है जो अपनी नहीं थी पर जिसके लिये सभी कुछ उत्सर्ग कर दिया गया। घर लाई हुई नारी को सुखी रखना एक मात्र यही पुरुष का कर्त्तव्य हो जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि वह आई हुई नारी अपना सर्वस्व पुरुष के प्रति समर्पित कर देती है। स्वयं दुख उठाकर भी वह पुरुष को सुखी देखना चाहती है स्वयं भूखी रहकर भी वह पुरुष को तृप्त कर देना चाहती है। यह परस्पर का आत्मसमर्पण ही गृहस्थ जीवन के सुख की कुंजी है।

परन्तु यह सुख उस समय मिट्टी में मिल जाता है जब एक दूसरे के प्रति त्याग की भावना समाप्त हो जाती है या समाप्त होने के लिये कदम बढ़ाती है। जब एक दूसरे को शंका की नजर से देखते हैं या एक दूसरे को अपने अधीन रखने के प्रयत्न में लग जाते हैं और जानते हैं, इसमें कौनसी भावना काम करने लगती है, वह भावना होती है दूसरे को कम देना और अधिक पाने की इच्छा रखना। यह इच्छा जिस दिन अंकुरित होती है, सुख और शान्ति की भावना का उसी दिन से तिरोभाव

आरम्भ हो जाता है और एक नया शब्द जन्म लेता है जिसके द्वारा दूसरे को अपने काबू में रखने के लिये मानव व्यक्त करता है। वह शब्द है 'अधिकार'। अधिकार दूसरे से कुछ चाहता है परन्तु दूसरे को देने की बात भूल जाता है। इस मांग और भूल की लड़ाई में ही गृहस्थ जीवन का सुख विदा मांगना आरम्भ कर देता है।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि प्रेम के जीवन में सुख है और प्रेम, त्याग और समर्पण का पाठ पढ़ाता है। वहां अधिकार नामक शब्द का निषेध है वहां एक ही शब्द आ सकता है जिसका नाम कर्त्तव्य है। अपना कर्त्तव्य करते चलो। जो तुम्हारा प्राप्य है वह अपने आप मिल जायगा। लेकिन कर्त्तव्य की बात भूलकर प्राप्य की बात को सामने रखने से प्राप्य के प्राप्त करने में कठिनाई रहती है। समस्त झगड़े बखेड़ों की यही एक मात्र जड़ है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दुनियां का कार्य स्वयं ही आदान प्रदान से चल रहा है। जब कुछ दिया जाता है तब तुरन्त ही कुछ मिल जाता है। देना बन्द होते ही मिलना बन्द हो जाता है। इसलिये लेने की आकांक्षा होने पर देने की भावना पहले बना लेना जरूरी होता है। अधिकार में लेने की भावना भरी रहती है, देने की नहीं। इसलिये आपस का प्रेम कम होना आरम्भ हो जाता है। जिस दिन यह अधिकार की लालसा गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट हो जाती है, गृहस्थ जीवन कलह का अखाड़ा बन जाता है, आज यही कारण है कि अधिकांश मानव इसी के शिकार हो रहे हैं और अपने जीवन को अशांत और दुखी बनाये हुये हैं। अपने ही हाथों उन्होंने अपने सुख-सुविधा को लात मार दी है।

अधिकार की मंशा है दूसरों को अपने अधीन रखना-अपनी इच्छा के अधीन रखना अपने सुख का, भोग का यंत्र बनाना। जब किसी भावना का प्रवाह एक ओर से चलना आरम्भ हो जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया दूसरी ओर से भी होना आरम्भ हो जाती है। जब एक दूसरे को अपने भोग का यंत्र बनाना चाहता है तो दूसरा भी पहले को यंत्र बनाने की धुन में लगा रहता है।

पुरुष ने जिस दिन से स्त्री को अपने भोग का उपकरण बनाना विचारा, उसी दिन से स्त्री ने भी पुरुष को अपनी तृप्ति का साधन बनाने की ठानी, एक दूसरे को सुख देने, प्रसन्न रखने की भावना का लोप हो गया। प्रेम की जगह भोग ने आश्रय लिया। घरनी की जगह रमणी की प्रतिष्ठा हुई घर भूत का डेरा बनने लगा। गृहणी जो आत्म साधका थी, लिपस्टिक, जम्फर, जाकेट, विलायती तरकी के जूतों की साधका बनी। दिखावट बढ़ी, रुपयों की मांग बढ़ी स्वच्छन्दता बढ़ी और पुरुष ने उसे दबाकर रखने की मांग को बढ़ाया। इस तरह गृह कलह जन्मा। भोग और अधिकार के प्रश्न ने सेवा को खोया, प्रेम को खोया और आज घर २ में चितायें जल रही हैं।

एक युग था पति के बिना नारी घर पर न रह सकती थी, पति के सुख को ही अपना सुख मानने वाली नारी पति के साथ वन जाकर भूमि

सयन, वल्कल वसन, असन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय २ अनुकूल॥

पाने वाली वन में भी सुखी रही और आज अधिकार का प्रश्न उठाने वाली महल में स्वच्छन्द रहने पर भी एक टीस, एक वेदना लिये जिन्दा है।

भावना बदलते ही जिन्दगी बदल गई। जिन्दगी की तृप्ति और शान्ति दोनों ही विदा ले गये। मानव जीवन का जो श्रेयस्कर मार्ग था उसे छोड़ कर भ्रष्ट पथ होने का पुरुस्कार हजारों नर नारी रात दिन भोग रहे हैं इसलिये यह आवश्यक है

कि उन्हें फिर से आर्य पथ पर चलने की तैयारी करनी चाहिये।

अधिकार मांगने से नहीं देने से मिलता है। कर्त्तव्य कर्म करने पर स्वयं उसका बदला मिल जाता है, भारतीय दर्शन में कर्त्तव्य का नाम ही धर्म है। पुरुष धर्म और नारी धर्म दोनों का आति ओत समर्पण है। दोनों की भावनाओं में, दिल में, दिमाग में समर्पण की उत्सर्ग की भावना के बीजों को आरोपित करने से फिर से शान्ति, तृप्ति और सुख का समावेश हो जायगा, विवाहित जीवन का जो उद्देश्य है वह सफल होगा।

—*—

बसन्त-वर्णन

(रचियता-पं० श्रीगोविन्ददास 'सन्त' धर्मशास्त्री)
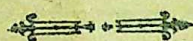
हाँ देखो देखो सखीरी प्यारी लागे बसन्त बहार है ॥ टेर ॥

फूली सरसों की डार, लागे कैसी पियार।
छाइ शोभा अपार ॥ प्यारी लागे० ॥ १ ॥

कर सुन्दर शृङ्गार, देखो नन्द कुमार।
पहुंचे राधा के द्वार ॥ प्यारी लागे० ॥ २ ॥

सखी बागों निहार, बैठे पुष्पों की डार।
भौंरें करते गुञ्जार ॥ प्यारी लागे० ॥ ३ ॥

होरी गावें नर नार, लागे कैसे पियार।
बाजे तबले सितार ॥ प्यारी लागे० ॥ ४ ॥

बचा बचा के वार, होरी खेलें मुरार।
चाले केसर फँवार ॥ प्यारी लागे० ॥ ५ ॥

सुन के 'सन्त' पुकार, आवो युगल सरकार।
देने दर्शन मुरार ॥ प्यारी लागे० ॥ ६ ॥

॥ श्री हरिः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन

[श्री भगवन्नाम प्रचारक प्रमुख धार्मिक एवं पारमार्थिक संस्था]

[एक्ट २१ आफ़ १८६० द्वारा रजिस्टर्ड]

का

—: संक्षिप्त विवरण :—

श्री वृन्दावन धाम हिन्दुओं का प्रधान तीर्थ है, इस स्थल की पावन रज में लोट लोट कर भगवान श्रीकृष्ण ने इसे पूजनीय बना दिया है और इसी कारण समस्त भारत से लाखों हिन्दू श्रद्धा और प्रेम से यहां की यात्रा करते हैं। साथ ही बहुत सी वृद्ध एवं अनाथ विधवायें भी अपना शेष जीवन बृजधाम में व्यतीत करने के पावन उद्देश्य से अपना घर बार तथा सगे सम्बन्धी छोड़कर यहां आ जाती हैं। भारत इस समय एक निर्धन देश है और यहां यह सम्भव नहीं है कि हज़ारों की संख्या में आई हुई इन विधवाओं और वृद्धाओं के सम्बन्धी उनके भरण पोषण के लिये उनको प्रति मास सहायता भेज सकें और इसी कारण यह विधवायें वृन्दावन में अपनी उदर पूर्ति के लिये प्रत्येक यात्री से गिड़ गिड़ा कर भिक्षा माँगती हुई दृष्टिगोचर होती थीं। अब से ३३ वर्ष पूर्व इस दुरावस्था को देख कर अनेक सद्गृहस्थ तथा धनी मानी धार्मिक सज्जनों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने सम्वत् १६७३ में 'श्री वृन्दावन भजनाश्रम' नाम से एक परमोपयोगी संस्था की स्थापना की। और उसे चलाने के लिए एक सुदृढ़ ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। ट्रस्टियों के निर्णय से यह विधान बनाया गया कि भजनाश्रम में नित्य जितनी माइयां आवें उनसे ४॥ घन्टे प्रातः तथा ४॥ घन्टे सायं श्री भगवद् कीर्तन कराया जाय और उन्हें उदर पोषण के लिये अन्न एवं पैसे दिये जावें। भजनाश्रम स्थापित होते ही नित्य प्रति सैंकड़ों की संख्या में गरीब तथा आश्रयहीन वृद्धायें तथा विधवायें आश्रम में आने लगीं और परम पावन, कल्याणकारी श्री भगवन्नाम कीर्तन करते हुए अपना मानव जीवन सफल करने लगीं। इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होते देख कर एक द्वितीय संस्था 'श्री भगवान भजनाश्रम' के नाम से सम्वत् १६६० में स्थापित की गई तथा उसका भी ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। इन दोनों भजनाश्रमों का प्रवन्ध योग्य ट्रस्टियों द्वारा सुचारु रूप से हो रहा है।

इस समय इन आश्रमों में लगभग ८०० अनाथ गरीब स्त्रियां जिनमें अधिकांश निराश्रित विधवायें हैं नित्य प्रति अनन्त भगवद्नामों का कीर्तन करती हुई भगवद्-भजन में लीन रहती हैं। अष्ट प्रहर कीर्तन भी अलग होता है। इन भजन करने वाली माइयों को सवेरे ४॥ घन्टे भजन करने पर =)॥ ढाई आना अन्न के वास्ते दिया जाता है। तथा शाम को ४॥ घन्टे भजन करने पर =) दो आना ऊपर खर्च के वास्ते दिया जाता है और समय समय पर आवश्यकतानुसार वस्त्र भी दिये जाते हैं और २०० के लगभग अपाहज वृद्धायें जो आश्रम में आने के अयोग्य हैं अपने घरों में बैठी हुई भगवद् भजन किया करती हैं जिन्हें भी कुछ सहायता दी जाती है।

भारत व्यापी तेजी के कारण इस समय इन संस्थाओं का खर्च लगभग रु० ८५००) आठ हजार पांच सौ रु० प्रति मास हो गया है जब कि स्थायी आय, मासिक चन्दा तथा ब्याज केवल ३०००) रुपये मासिक है। आज हम इसी कमी की पूर्ति करने के लिये आप जैसे धनी मानी तथा धार्मिक महानुभाव की सेवा में अपील करते हुए निवेदन करते हैं कि आपकी अतुल दानराशि में से अधिक से अधिक भाग इन संस्थाओं को प्राप्त होना चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा आपके धन का सदुपयोग का विश्वास दिलाते हुए हम यह भी बता देना चाहते हैं कि इन संस्थाओं में दिये गये आपके धन से अनेक प्राणियों का उदर पोषण होगा एवं कोटि कोटि भगवन्नाम जप के पुण्य प्रताप का आपको पूर्ण लाभ होगा।

हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमानजी हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान देंगे और श्रद्धानुसार संस्थाओं की सहायता करते हुए जनता जनार्दन की अधिकाधिक सेवा के पावन अनुष्ठान में सहायक बनेंगे।

प्रार्थी:—जानकीदास पाटोदिया, प्रधान

नोट—१. प्रार्थना है कि आप जब बृजधाम की यात्रा को पधारें तो इन आश्रमों में पधार कर यहां के कार्यों का अवलोकन करें, एवं आश्रम के लिये जो दान करना चाहें वह भजनाश्रम में ही देवें अन्य किसी मन्दिर में नहीं देवें।

२. अपने एवं अन्य नगर के धर्म प्रेमी दानदाताओं के कुछ नाम व पते भी हमें भेजने की कृपा करें जिससे हम उनसे संस्थाओं की सहायता के लिये अपील कर सकें।

३. बीमा या मनीआर्डर द्वारा सहायता मन्त्री श्री भगवान् भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन [मथुरा] तथा मन्त्री श्री वृन्दावन भजनाश्रम, पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से भेजिये।

४. कृपया सहायता एक मुश्त भेजिये अथवा मासिक या वार्षिक सहायता भेजने की कृपा कीजियेगा।

५. आश्रम की ओर से ऐसा प्रबन्ध भी है कि जो दानी महानुभाव अपनी ओर से भजन कराना चाहते हों वह ८।≋) रु.मासिक प्रत्येक माई के हिसाब से भेजकर जितनी माइयों द्वारा चाहें भजन करा सकते हैं। प्रतिदिन ६ घण्टे में हर एक माई लगभग एक लाख भगवन्नाम उच्चारण कर सकती है।

६. आश्रम द्वारा निकलने वाले धार्मिक मासिक पत्र 'नाम-माहात्म्य' में भजनाश्रमों में दान देने वाले सज्जनों के शुभ नाम मय दान की रकम के प्रकाशित होते हैं।

७. वृन्दावन के किसी मन्दिर, मठ व अन्य स्थानों से भजनाश्रम का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिये भजनाश्रम के लिये किसी अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी मनीआर्डर या बीमा द्वारा श्री भगवान् भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस केसरगंज, अजमेर में मुद्रित व गौरगोपाल मानसिंह का संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान, भजनाश्रम वृन्दावन [मथुरा] से प्रकाशित

अंक ३
MURARI ART DELHI.

विषय सूची

फाल्गुन संवत २००८

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहियें और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जासकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहियें पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक :- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम

मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओं से १॥≡) एक प्रति का ≡)

वर्ष १२ "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन मार्च सन् १९५२ अंक ३

श्री राम कृष्ण शिव वन्दनम्

भज गोपालं जय श्रीरामं शिवमीशानं वन्देऽहम् ।
यदुकुलनाथम् रघुकुलनाथं अनाथनाथं वन्देऽहम् ॥
धृतकरमुरलिं धृतशरचापं त्रिशूलहस्तं वन्देऽहम् ।
राधारमणं सीतारमणं गिरिजारमणं वन्देऽहम् ॥
कंसनिकन्दन् रावणमर्दन त्रिपुरविभञ्जन वन्देऽहम् ।
अर्जुनशरणं हनुमत्शरणं अशरणशरणं वन्देऽहम् ॥
दीनदयालुं परमकृपालुं अतिश्रद्धालुं वन्देऽहम् ।
कुञ्जविहारिन् अवधविहारिन् शिखरविहारिन् वन्देऽहम् ॥
कृष्णमुरारिम् रामखरारिम् शिवकामारिं वन्देऽहम् ।
कुञ्चितकेशम् केशरतिलकम् धृतशशितिलकम् वन्देऽहम् ॥
मयूरमुकुटम् किरीटमुकुटम् जटाहिमुकुटम् वन्देऽहम् ।
शिवमघहरणं शिव दुखहरणं श्री शिवकरणं वन्देऽहम् ॥

अजामिल उपाख्यान

"यमराज द्वारा अपने दूतों के प्रश्नों का उत्तर"

(लेखक—श्री प्रभूदत्तजी ब्रह्मचारी)

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च
ओतंप्रोतं पटवद्ध यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्त स्थितिजन्मनाशा
नस्योतवद्ध यस्य वशे च लोकः ॥

श्री शुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! अपने दूतों के प्रश्नों को सुनकर यमराज कहने लगे—"दूतो! मेरे अतिरिक्त इस स्थावर जंगम जगत् के एक और भी अधीश्वर हैं, जिनमें यह विश्व उसी प्रकार ओतप्रोत है जिस प्रकार वस्त्र में ताने बाने का सूत ओतप्रोत है। जिनके अंशों से ही जगत के जीवों के जन्म, उनकी स्थिति और विनाश होते रहते हैं। यह सम्पूर्ण लोक उनके इसी प्रकार आधीन है जैसे बैल नाथ के अधीन होता है।

'नारायण' है मन्त्र जन्त्र वा जादू टोना।
काहू नरने मृत्यु समय जिह नाम कह्यो ना॥
सुनि नारायण नाम भयो तन पुलकितयमको।
प्रेम मग्न ह्वै करयो ध्यान भगवत् चरनान को॥
जलद सरिस अतिविमलवर,
जो हरि नित्य नवीन हैं।
शिव बिरंचि इन्द्रादि हम,
तिन के नित्य अधीन हैं॥

अपने प्रियतम के गुणगान का किसी प्रकार भी अवसर प्राप्त हो जाय प्रेमी उसी से प्रसन्न हो जाता है और प्रेमास्पद के सम्बन्ध में अपने उद्गारों को उगलने लगता है। संसार में जितनी भी सुनने में प्यारी वार्तायें हैं, उन सबसे प्रिय प्रेमास्पद की कथा है। संसार में जितनी भी गाने योग्य वस्तु हैं, उन सब में सुखद सुन्दर और अन्तःकरण को तन्मय बना देने वाली अपने इष्ट देव की, प्रेमास्पद की, गौरवयुक्त गुण गाथायें हैं।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन! मालूम पड़ता है, यमराज के दूत नये ही नये थे और प्रतीत होता है वे भगवत्तत्व से अनभिज्ञ भी थे। आज उन के मुख से नारायण की महिमा सम्बन्धी बातें सुनकर यमराज अत्यन्त ही प्रसन्न हुये। भगवान् का सुमधुर त्रैलोक्य पावन नारायण नाम सुनकर उन का सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो उठा! प्रेम के आवेग में वे विकल से होगये। फिर कुछ देर में प्रेम का वेग शान्त होने पर वे दूतों से कहने लगे—"अरे दूतों! तुम मुझे ही सब कुछ समझते थे क्या? यह ऐसा समझना तुम्हारा भ्रम है। मैं इस चराचर जगत का स्वामी नहीं हूँ। इस जगत की सृष्टि लोक पितामह ब्रह्माजी करते हैं, अतः सृजन के स्वामी वे ही हैं। समस्त चराचर विश्व का पालन श्री विष्णु भगवान करते हैं, अतः वे पालन के पति हैं। अन्त में सब का संहार त्रिनेत्र रुद्र करते हैं। अतः वे संहार के ईश हैं। ये तीनों भी जिनके अंशों से उत्पन्न हुये हैं, वे अंशी ही श्री नारायण हैं। वे ही उसके स्वामी हैं। वे ही सबके गति हैं। वे ही गुरुओं के गुरु हैं। वे ही सब शासकों के सम्राट हैं। उन्हीं का आदेश पालन करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य गणों के पति हैं। वे विश्व में उसी प्रकार ओतप्रोत हैं—जैसे घट में मिट्टी, कुण्डल में सुवर्ण, वस्त्र में सूत, तथा शक्कर के खिलौनों में शक्कर ओतप्रोत हैं। वे सर्वेश्वर ही सम्पूर्ण प्राणियों को घुमा रहे हैं।

दूतों ने पूछा—महाराज! वे कैसे घुमा रहे हैं।

शीघ्रता के साथ यमराज ने कहा वे कैसे घुमा रहे हैं, यह भी कोई प्रश्न हैं। कलन्दर बन्दर को कैसे नचाता है। हाथीवान हाथी को कैसे घुमाता

है। ऊँट वाला ऊँट की नाक में नकेल डालकर कैसे जहाँ चाहता है ले जाता है। किसान बैलों को नाथ कर कैसे मनमानी ढंग से चलाता है। उसी प्रकार वर्णाश्रम रूप नामों से वेद रूप रस्सी में बाँध कर नारायण रूप स्वामी जीवों को जैसे चाहता है, वैसे ही घुमाता है। सभी प्राण विवश होकर उसीके संकेत पर नाच रहे हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई तिलभर भी इधर उधर नहीं चल सकता।

दूतों ने आश्चर्य से पूछा—"तो क्या आप उन्हीं की आज्ञा से जीवों को पकड़ पकड़कर भगाते रहते हैं। आप भी स्वतन्त्र नहीं हैं।

यमराज ने बात पर बल देते हुये कहा—"अरे मैं क्या भैया! जितने भी ये इन्द्र, वरुण, कुवेर, निर्ऋति, अग्नि, शिव, वायु, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, द्वादश, आदित्य, विश्वदेव, वसुगण, मरुद्गण, साध्यगण तथा सिद्धगण तथा रुद्रदेव के गण हैं, इनके अतिरिक्त तमोगुण से रहित भृगु आदि महर्षि प्रजापति वैवस्वत आदि मनु तथा सत्व प्रधान देवता गण कोई भी उनकी लीला का कुछ भी मर्म नहीं जानता वे ही सब के स्वामी हैं।"

दूतों ने पूछा—"प्रभो! वे कहां रहते हैं और उनके दर्शन कैसे हो सकते हैं!

यमराज हँसकर बोले—"अरे, भैया! उनका कोई एक स्थान थोड़े ही है, वे तो सर्व व्यापक हैं सर्वज्ञ हैं। वे प्राणीमात्र के अन्तःकरण में साक्षीरूप से स्थित हैं। जीव उन्हें इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय, अथवा वाणी आदि किसी के द्वारा भी जानने में समर्थ नहीं हो सकते।

दूतों ने पूछा—"भगवन्! जब सब प्राणी उन्हीं के प्रकाश से प्रकाशवान् हैं, तो जीव उन्हें क्यों नहीं देख सकता?

यमराज बोले—"अरे, भैया! यह तो मोटी बात है। अति दूर या अति समीप की वस्तु, दिखाई नहीं देती। प्रयाग से हम वाराणसी में क्या हो रहा है। इसे सूर्य और चक्षु के रहते हुये भी नहीं देख सकते। जिन नेत्रों से सबको देखते हैं उन्हीं में लगे काजल को नेत्र नहीं देख सकते, और तो जाने दो जिस चक्षु इन्द्रिय द्वारा सब को प्रत्यक्ष देखते हैं। उस अपने प्रकाशक चक्षु इन्द्रिय से रूपवान् पदार्थ नहीं देख सकते हैं। उसी प्रकार सबके अन्तःकरण में स्थित रहने पर भी वे मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों द्वारा दिखाई नहीं देते।

दूतों ने कहा—'तो भगवन्! वह एक हैं या अनेक हमारे सम्मुख तो वे परम मनोहर अत्यन्त रूपवान् सर्व गुण सम्पन्न तथा सुन्दर स्वभाव वाले ४ महापुरुष प्रकट हुये थे। वे सब नारायण थे या उसमें से कोई एक थे अथवा उन चारों से विलक्षण कोई अन्य नारायण हैं।

हँसकर यमराज ने कहा—"अरे पगलो! वे तो श्रीमन्नारायण के पार्षद थे। वे लोग भी भगवान् के ही समान चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले, वनमाला पहिनने वाले, पीताम्बर ओढने वाले तथा दिव्य विमानों में विहार करने वाले होते हैं।

दूतों ने पूछा—महाराज, जब हम वहां गये थे; तब तो वे लोग वहाँ थे नहीं। ज्यों ही हम उस पापी को बाँध कर चलना चाहते थे त्यों ही "नारायण" इन चार शब्दों को सुनते ही वे सहसा आ कहाँ से गये?"

यमराज ने हँसकर कहा—"भैया! उनका आना जाना क्या, वे तो सदा सर्वदा इसी प्रकार संसार में ही घूमते रहते हैं। चक्कर लगाते रहते हैं।

यमदूतों ने पूछा—"प्रभो! इस प्रकार विश्व में भ्रमण करने का उनका कारण क्या है?

यमराज बोले—"देखो भैया! वे इस बात को देखते रहते हैं कि विष्णु भक्त को कोई सता तो नहीं रहा है। वैष्णवों को कोई क्लेश तो नहीं दे रहा है, वे देव वन्दित दुदर्श स्वरूप परम अद्भुत विष्णु दूत भगवद् भक्त मनुष्यों को उनके पर पक्षियों से, मुझसे, अग्नि आदि मारक वस्तुओं से सर्वत्र सुरक्षित रखते हैं।

दूतों ने पूछा—"उन भगवान् को हम इन्द्रिय आदि के द्वारा देख नहीं सकते तो फिर उनके गुणकर्म को आज तक किसी ने किसी अन्य साधन से जाना भी है ?"

इस पर यमराज बोले—"उनके विषय में निश्चित रूप से कोई कुछ भी कहने में समर्थ नहीं। ऋषि देवता, सिद्धगण ये सब सत्व प्रधान ज्ञानी पुरुष भी उनके विषय में "ऐसा ही है" इस बात को दृढ़ता के साथ नहीं कह सकते तो फिर तमोगुण प्रधान असुर, राक्षस, दैत्य, दानव, गुह्यक, चारण, विद्याधर तथा मनुष्य आदि तो कह ही क्या सकेंगे।

यमदूतों ने कहा—"तब तो प्रभो ! आज तक संसार में कोई उस परम गुह्य परम पावन दुरूह दुर्बोध भागवत् धर्म का ज्ञाता ही न हुआ होगा ? किसी ने उसे जब जाना ही नहीं, तो उसके विषय में क्या कहें और कैसे प्रयत्न करें ?

यमराजजी ने दृढ़ता के साथ कहा—क्यों जाना क्यों नहीं ! पूर्णरूप से न सही, तो भी इस धर्म के ज्ञाता कुछ लोग हैं १२ के तो नाम मैं ही जानता हूँ। जो इस धर्म के जानने वाले परम भागवत पवित्र वैष्णव हैं !

यमदूतों ने पूछा—महाराज ! यदि हम इसके सुनने के अधिकारी हों और कोई परम गोपनीय बात न हो, तो हम सुनना चाहते हैं, वे १२ भागवत धर्म के ज्ञाता कौन-कौन हैं ? उनके नाम हमें बतादें ?

यमराज बोले—देखो ! "लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा, वीणाधारी देवर्षि नारद, राम नाम के अनन्य उपासक श्री शिवजी, ऊर्ध्व रेता माया प्रपंच से सर्वदा विमुक्त सनतकुमार, ज्ञानावतार भगवान् कपिल, आदिराज भगवान् स्वायम्भू मनु, भक्ताग्रगण्य असुर वंशावतन्स श्री प्रह्लादजी, जीवनमुक्त राजर्षि जनक, बाल ब्रह्मचारी गंगापुत्र भरत वंश के केतु श्री भीष्म पितामह, अवधूत शिरोमणि परम हंसावतंस श्री शुकदेवजी ये ११ इस धर्म के ज्ञाता हैं और १२ वाँ मुझे भी समझ लो।"

यमदूतों ने पूछा—"तो प्रभो ! आप भी वैष्णव हैं ?"

यमराज ने कहा—"कैसे कहूँ भैया ! मैं भी वैष्णव हूँ, किन्तु श्री विष्णु भगवान मेरे उपास्य देव हैं अतः मुझे भी लोग वैष्णव कहते हैं।"

दूतों ने कहा—"प्रभो ! वैष्णव तो कभी किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाते। आप तो रात्रि दिन जीवों को मरवाते ही रहते हैं। फिर यदि आप वैष्णव हैं तो आपकी मुक्ति क्यों नहीं हुई ? आप इस मार काट में क्यों फँसे हुए हैं ?"

इस पर गम्भीर होकर यमराज बोले—"देखो, भैया ! वैष्णव अपने लिये कुछ नहीं करता है। जो करता है, भगवत् सेवा समझ कर करता है। भगवान उसे जिस कार्य में भी नियुक्त कर दें, उसे ही उनकी सेवा समझकर श्रद्धा से करता रहता है। रही मुक्ति की बात, सो वैष्णव तो बँधा ही नहीं। मुक्ति तो वह चाहे, जो बँधा हुआ हो यह विश्व ब्रह्माण्ड उन्हीं श्रीमन्नारायण का लीला विलास है। भगवान अपने भक्त को जहाँ रखना चाहें भक्त वहीं प्रसन्नता से रहता है। उनकी आज्ञा का पालन करना अपना परमधर्म समझता है।

यमदूतों ने कहा—'महाराज ! हमें भी कुछ भगवद् धर्म का यत् किंचित मर्म समझा दें।"

इस पर यमराज ने कहा—"भैया ! इस लोक में भगवान के नामोच्चारण आदि के सहित किया हुआ भक्ति योग ही मनुष्यों का सबसे प्रधान धर्म माना गया है। तुम्हें अधिक बताने की आवश्यकता नहीं, तुमने अपनी आँखों से आज प्रत्यक्ष ही देख लिया कि कितना पापी अजामिल नामोच्चारण के कारण मृत्युपाश से विमुक्त होकर परम पावन और पूज्यनीय बन गया। इसलिये समस्त पापों के समूल नाश करने के निमित्त भगवान के गुण कर्म सम्बन्धी नामों का कीर्त्तन करना ही पर्याप्त साधन है। इससे बढ़कर न कोई धर्म है। पापों का सर्वोत्कृष्ट अमोघ दूसरा कोई इसके अतिरिक्त प्राय

श्चित नहीं है। इसलिये जिसे भगवत् धर्म में दीक्षित होना हो, उसे सर्व प्रयत्नों से भगवान् का नाम कीर्तन करना चाहिये। नाम कीर्तन में जो विघ्न करें, वह कितना ही प्यारा क्यों न हो उसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिस स्थान में भगवन्नाम संकीर्तन में बाधा हो, वह स्थान कितना ही सुविधापूर्ण क्यों न हो उसे छोड़ देना चाहिये। जो नाम संकीर्तन में सहायक न हों उन सम्बन्धियों से कोई सम्बन्ध न रखना चाहिये। नाम ही कर्त्तव्य हो, नाम ही जीवन का आधार हो, कृष्ण कीर्त्तन ही अपना प्रधान आहार हो। नाम संकीर्त्तन ही अपना सर्वस्व है। भगवान् को छोड़ कर अन्य शब्दों का उच्चारण करना ही उचित नहीं। यही भागवत धर्म है। भगवान् के नामों का कीर्तन करना उनकी सरस मधुमय कथाओं का नित्य नियम से श्रवण करना। उन्हीं को अपना सब सौंप देना यही परम धर्म है। यही प्राणीमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है।

इस पर यमदूतों ने कहा—"महाराज! जब भगवन्नाम का इतना भारी महात्म्य है तो इतने बड़े बड़े ऋषि महर्षि नाम संकीर्तन को इतना अधिक आदर न देकर बड़े २ यज्ञ यागों में क्यों फँसे रहे, क्यों उन्होंने अनेक पापों के अनेक कठिन २ प्रायश्चित बताये हैं?"

यमराज ने उदासीनता के साथ कहा—"अब भैया! बड़ों की बड़ी बातें हैं। इस विषय में हम कह ही क्या सकते हैं। इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं, उन प्रायश्चित विधान करने वाले महाजनों की बुद्धि भगवान की दुरुह माया से मोहित हो गई होगी। या यह भी सम्भव हो सकता है कि भगवन्नाम संकीर्तन के इतने बड़े महात्म्य से अपरिचित रहे हों। इसीलिये तो उन्होंने स्वर्गादि नाशवान फलों की बड़ाई करने वाले आपातरमणीय पुष्प स्थानीय वेद वाक्यों में चिरा फँस जाने के कारण ही भगवन्नाम संकीर्तन को छोड़ कर बड़े २ यज्ञ यागादि क्लेश से होने वाले कर्मों में फँसे रहे, इसलिये भैया! मैं तो कहता हूँ, भगवन्नाम संकीर्तन को छोड़ कर भगवान् की प्राप्ति का इतना सरल सुगम दूसरा कोई साधन नहीं।

वैसे तो भगवन्नाम संकीर्तन का सभी युगों में समान माहात्म्य है। किन्तु कलयुग में तो ऐसा कोई सर्वोपयोगी साधन और है ही नहीं। इसलिये जो भगवान के नाम का कीर्तन करता है, वह मेरे शासन से बाहर का पुरुष है। वह मेरे स्वामी का सम्बन्धी है। उसके पास तुम लोग कभी भूल कर मत जाना।

यमदूत ने डरकर कहा—"महाराज यह तो बड़ी गड़बड़ सड़बड़ की बात है। हमें आप एक सूची लिखा दीजिये किन किन के पास जायें, किन किन के पास न जायें। किन किन को पकड़ कर लावें, किन-किन को दूर से प्रणाम करके चले आवें।" क्योंकि बिना ऐसी सूची रहे नित्य हमारी कुटाई होगी फिर तो हम पिटने के ही होगये।

गुह्य भागवत धर्म देवता सिद्ध न जाने,
फिर नर दानव दैत्य ताहि कैसे पहिचाने।
अज, शिव, नारद, कपिल, जनक, मनु, शुक, ज्ञानी
भीष्महु, सनत्कुमार, धर्म प्रह्लाद अमानी॥
जानि भागवत धर्म कूँ, परम भागवत ये भये।
अन्य भक्तहूँ भक्ति तें, नाम लिये हरिपुर गये॥

एक मानव की कहानी

(लेखक श्री सन्तोष कुमारजी मिश्र "वियोगी हृदय")

उस दिन जवानी ने आकर उस अबोध शिशुता को झिझकोरा-"अभी सोते हो", बेचारे शिशु ने रुदन कर उस मादक यौवन को सशंकित दृष्टि से देखा, और आँखें मूंद ली।

आँखों ने मन से कहा—"कितनी आकर्षण मई आभा थी उसके साथी सौन्दर्य की ओह । मैं तो बावली हो गई", मनने अपनी उत्कंठा को जगाया और फिर दोनों यौवन के ग्रह की ओर चलने को तत्पर हुये । यौवन ने कहा-कहां, मैं तो यही हूं। आँखों ने देखा ओह……… और फिर पलकों को गिरा दिया, अतृप्त, पियासित मन चंचल हो उठा और……फिर……निर्दोष शिशुता रोती कलपती भागी। यौवन का, सौन्दर्य का मानस में निवास हुआ।

यौवन ने अंगड़ाई ली, और रूप की हाट की ओर मुड़ा विवेक ने कहा—कहां जा रहे हो? तुम जाओ, मन को रहने दो। आँखें क्रुद्ध हो उठीं, मादक सौन्दर्य ने कहा—चलो भी विवेक तो पागल है, बुद्धि सकपकाई, कभी मन की ओर और कभी विवेक की ओर ठगीसी देख रही थी—तब तक चंचल इन्द्रियों ने कटाक्ष से इंगित किया—और मन बावलासा हो बुद्धि को बरबस साथ लेकर चल पड़ा, सौन्दर्य के लुभावने आकर्षण में अपने को खो बैठा।

यौवन ने विषयों की बहार में, संगीत मई वीणा की सुमधुर झनकार में, नृत्यमई नूपुरों की रुनझुन में तथा गीतों की उन्मादिनी लपों में मन को लपका दिया। प्रकृति के कोलाहल में वह बावला अहमत्व मान, यश और विभुता से झूम उठा, मदान्ध हो उठा तथा साथ ही अहंकार से उदण्ड भी।

किन्तु……जब……जरठता ने आकर अट्टहास किया तो उसने चौंक कर देखा—ओह मन चीत्कार कर उठा देख कर उस भयावनी आकृति को उसे रोमांच हो आया। जरठता के शुष्क होठों पर नैराश्यमई हास्य की झलक देखकर मनने यौवन को निहारा—अरे कहां गया, सौन्दर्य भी नहीं, निराश इन्द्रियों की ओर मुड़ा किन्तु ओह शीर्णता ने उन्हें पहले ही बन्दी बना लिया था। हताश हो झिझक पड़ा। बुद्धि खिलखिलाकर हंसी, गम्भीर विवेक ने उसे दयार्द्र नेत्रों से देखा—और मन…… अब अपना सर्वस्व लुटाकर जरठता के कारागार का परवश बन्दी था।

आशायें निराशाओं के कटु व्यवहार से विलख पड़ीं मन के लिये संसार नीरस और भयावना दीखने लगा। विवेक ने कल्पना के तारों को झंकृत कर उसे दिलासा दी लेकिन कोरी दिलासा से होता क्या है। जिसने अब तक विभव भोगा अगनित रूप राशि जिसके स्पर्शालिंगन को भाग्य मानती थीं जिसके सन्मुख विलासिता नर्तन करती थी अब वही जीर्ण शीर्ण काया में रहकर क्या करेगा नहीं, नहीं, अब वह इस घिनौने गृह में नहीं रह सकता, जिससे लोग घृणा करें, अपमान करें, उपहास करें ओह उसे कैसे छुटकारा मिले, "वह क्षुब्ध हो उठा अपनी दयनीय दशा पर। प्रगट की लांछना उसे विषवत् हो रही थी और… फिर……उसे शान्ति और सुख की चाह हुई तथा दुःखों से निवृत्त होने की इच्छा—किन्तु यह हो कैसे— "यह कैसे हो" अन्तरात्मा ध्वनित हो उठी-कैसे हो, कैसे हो, उसे लगा जैसे अन्दर कोई है-कौन है उसने पुकारा-

मैं-मैं जैसे किसी ने कहा" मैं सत्य हूं, शिव हूं, सुन्दर हूं, "मैं तेरे दुःखों का विनाश कर तुझे पूर्ण शान्ति प्रदान करूंगा मैं सत्य हूं, शिव हूं, सुन्दर हूं।"

वाणी ध्वनित हो उठी, मैं पूर्ण हूं, सुख और शांति प्रदान करूंगा मैं सत्य हूं, शिव हूं, सुन्दर हूं मैं सत्य...... और उसे लगा जैसे आकाश पृथ्वी, पशु पक्षी समस्त सृष्टि, सभी सत्य शिव सुन्दर मय हैं, वाणी अविराम रट लगाती रही प्रकृति के अणु २ से सत्य शिव सुन्दर की ध्वनि उसके कानों में गूंज रही थी।

शिशुता ने तालियां पीटी। रूप और यौवन ने पागल कह कर पुकारा, जरठता मुस्कराई—विवेक ने नमन किया और......

कलकनाद से ध्वनित वसुन्धरा के पहाड़ी सिखर पर एक झरने के पास उसने डेरा किया।

कितने ही भ्रमित हृदय वहां शान्ति पाने आते थे दर्शन करते और चले जाते थे अभूतपूर्व शान्ति लेकर किन्तु वह शान्त था। पूर्ण शान्ति पागलों की तरह केवल एक ध्वनि भी सत्यम् शिवम् सुन्दरम्......बस और कुछ नहीं।

———

—:❀ श्री भगवन्नाम जप कराइये ❀:—

श्री वृन्दावन में लगभग ८०० गरीब माइयां प्रति दिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घन्टे परम मंगलमय श्री भगवन्नाम जप एवं संकीर्तन करती हैं। इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र व पैसों की सहायता दी जाती है। एक माई प्रति दिन एक लाख श्री भगवन्नाम जप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुग में संसार सागर से पार उतरने का एक मात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम जप करना ही शास्त्रों में वर्णित है। सभी महानुभावों को स्वयं अधिक से अधिक भगवन्नाम जप करने की चेष्टा करनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओर से गरीब माइयों द्वारा श्री भगवन्नाम जप कराना चाहें वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रम में लगभग ८०० गरीब माइयाँ आती हैं। जिनमें से इस समय ५०० माइयां दानदाताओं की ओर से भजन कर रही हैं। बाकी माइयों से भजन कराने के लिये हम सभी सज्जनों से निवेदन करते हैं कि अपनी अपनी श्रद्धा व प्रेम अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने माह के लिए आप चाहें अवश्य भजन कराइयेगा एवं अपने इष्ट मित्रों को भी भजन कराने के लिये प्रोत्साहित कीजियेगा।

एक माई को नित्य प्रति साढ़े चार आने की सहायता दी जाती है। इस हिसाब से एक माह का ८।≡) और एक वर्ष १०१।) खर्च लगता है। पत्र व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजने का पताः—

मन्त्री—भगवान भजनाश्रम

मु० पोस्ट, वृन्दावन।

भोले भाले राम

(लेखक—रावत श्री चतुरभुजदासजी चतुर्वेदी,)

प्रस्तुत शीर्षक में दो शब्द हैं भोले और भाले जो राम के विशेषण स्वरूप हैं राम कैसे हैं भोले हैं और भाले हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि वे राम भोले किस के लिये हैं और भाले किस के लिये। जो सीधा, सरल होता है उसके लिये भोले शब्द का विशेषणरूप से प्रयोग में आता है और भाला तीक्ष्ण के अर्थ में प्रयोग होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान भक्तों के लिये भोले यानी सरल स्वभाव है और दुष्टों के लिये भाले। जैसे भगवान नृसिंह भक्त प्रहलाद के लिये भोले थे परन्तु हरनाकुश के लिये भाले। इसी प्रकार भगवान राम भक्तों के लिये भोले और रावण के लिये भाले। कंस के लिये भगवान कृष्ण भाले और गो, गोपी, गोप के भोले थे। वैसे प्रभु सब पर कृपा करते हैं जिस प्रकार प्रभाकर का तेज सर्वत्र एक सा पड़ता है चाहे वह मलिन वस्तु हो, चाहे स्वच्छ, चाहे बुरी ठौर हो, चाहे अच्छी इस प्रकार भगवान भी रक्षा सब की करते हैं किन्तु उनके कर्म भगवान को प्रेरित करते हैं जिससे उनको भला और बुरा कर्म फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का अच्छा फल और बुरे कर्म का बुरा फल भोगना पड़ता है। नवधा भक्ति के अतिरिक्त भक्ति दो प्रकार की होती है। बांदरी और मारजारी। बांदरी भक्ति का अनुसरण करने वाले भी भक्त होते हैं और मारजारी भक्ति के भी पूर्ण अनुयायी भक्त होते हैं अन्तर उनमें केवल इतना होता है कि जिस प्रकार बन्दर का बचा अपनी मां को खूब कस कर पकड़ता है। उसकी माता को यह पूर्ण रूप से पक्का विश्वास हो जाता है कि उसका बच्चा उसे अच्छी तरह से पकड़े हुए है यह विश्वास करके वह सर्वत्र कूदती फांदती है और जहां चाहती है वहां उछलती कूदती है। माता को बच्चे की तरफ से पूर्ण विश्वास है कि उसका बच्चा अपने आप अपनी रक्षा कर रहा है यह जानकर वह उस बच्चे की उतनी ही चिन्ता रखती है जितनी कि होनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि बांदरी भक्ति का अनुसरण करने वाले भक्त भगवान के प्रति उसी बन्दर के बच्चे के समान है जो अपने को स्वयं अपना रक्षक समझता हुआ मां का आश्रय लेता है। भगवान भी उस भक्त से उसी प्रकार निश्चिन्त से रहते हैं जिस प्रकार बांदरी अपने बच्चे से किन्तु मारजारी भक्ति का अनुसरण करने वाला भक्त उस बिल्ली के बच्चे की तरह होता है जिस प्रकार बिल्ली का बच्चा। बिल्ली का बच्चा अपनी मां पर हर प्रकार से निर्भर रहता है वह बिल्ली उसे जहां चाहती है वहां उसे ले जाती है जहां उठा कर रख देती है वहां जा बैठता है इसी प्रकार भगवान का भक्त जो उस बिल्ली के बच्चे की तरह अपने आपको भगवान के चरणों में समर्पण कर देता है तो भगवान को उसकी सब तरह से चिन्ता होती है भगवान उस मारजारी भक्त की सर्वत्र रक्षा करते हैं और उसका पूर्ण ध्यान रखते हैं। वास्तव में बात तो यह है कि जब तक कोई भक्त अपने आप को समर्पण योग में दीक्षित नहीं होता है तब तक उसका किया हुआ कर्म पूर्ण सफल नहीं होता है उसे तो इस सिद्धान्त का प्रति क्षण अनुसरण करना होगा कि त्वयाऋषिकेश हृदस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोनि भक्त अपने आपको उस गाड़ी के समान समझे और भगवान को संचालक! गाड़ी का संचालक जिधर को चाहता उधर उसे हांक लेजाता है इसी प्रकार भक्त अपने में समझे और भगवान के पूर्ण आश्रत रहें तब उसका पूर्ण कल्याण भी हो सकता है और अपने कार्य में पूर्ण सफल भी हो सकता है। भगवान तो हमेशा भक्त के वश में रहते हैं। भक्त की देख रेख का समस्त भार भगवान पर रहता है जो उसकी टेक निबाहते हैं। बोलो श्री भगवान और उनके भक्त की जय।

अमृतत्व

(लेखक—श्री शम्भुनाथजी चतुर्वेदी)

स्थावर अथवा जंगम सृष्टि जो हमें दृष्टिगोचर होती है यह पुरुष एवं प्रकृति के संयोग से बनी है। पुरुष के विषय में श्रुति कहती है कि यह विश्व जो कुछ हुआ अथवा होगा उसी को पुरुष जानना चाहिए।

पुरुष ए वेद ठं सर्व्वयद् भूत यच्चभाव्यम्

प्रकृति भी अनादि ही है। 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धनादी उभा वपि' इसके दो भेद हैं एक पचधा यानी अपरा जिसके संयोग से यह पंच भौतिक शरीर बना है और दूसरी परा जिसके द्वारा इस पंच भौतिक शरीर में क्रिया शक्ति का संचालन होता है। इसी को क्रमशः जड़ तथा चेतन प्रकृति भी कहते हैं। इस प्रकृति से ही सत्वरजस्तमोमयी त्रिगुणों की उत्पत्ति हुई है। इस त्रिगुणात्मक प्रकृति को वेदान्त शास्त्र में माया अथवा अविद्या भी कहते हैं जिसके ऊपर अधिष्ठान कर पुरुष सृष्टि की उत्पत्ति करता है।

अनन्त जन्म की वासनाएं जीव को संस्कार चक्र में घुमा रही है। हम जो भी शुभ अथवा अशुभ करते हैं वे सब संचित हो जाते हैं। उन संचित कर्मों से जो एक जन्म का भोग लेकर शरीर बनता है उसे प्रारब्ध कहते हैं। इन प्रारब्ध कर्मों को भोगने ही के लिये जीव को शरीर धारण करना पड़ता है क्योंकि इनका नाश तो बिना भोगे हो ही नहीं सकता। आगे के लिये जैसी वासना रखकर जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं वैसे ही बानिक बन जाते हैं।

इसी गुण और कर्म के विभाग से यह चार वर्ण की सृष्टि बनी है यानी अंडज, उद्भिज, स्वेदज, और जरायुज। इन्हीं चार खानियों के अन्तर्गत जीव चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमता फिरता है। शुभ कर्मों से क्रमशः उत्थान तथा अशुभ कर्मों से पतन होता रहता है। उत्थान प्राप्त करते २ जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर या और भी उत्तम पितृ लोक का, गन्धर्व लोक का, अथवा देवलोक या प्रजापति लोक का शरीर प्राप्त कर लेता है परन्तु भोग द्वारा कर्म क्षय होने पर पुनः मनुष्य लोक में जन्म होता है। इसी को आवागमन कहते हैं। सृष्टि के इस आवागमन के चक्र के चलते ही रहने से इस संसार को जगत कहते हैं।

इन चौरासी लक्ष योनियों में जन्मित सब ही जीव नाशवान हैं जिसे लौकिक भाषा में मृत कहते हैं। एक विराट पुरुष ही ऐसा है जो अक्षय तथा अव्यय है। इसी अमृत में विलीन हो जाने को अमृतत्व कहते हैं जिसको प्राप्त कर लेने पर जन्ममृत्यु जरा व्याधिभयं नैवोपजायते।

उपरोक्त पंचधा प्रकृति में समन्वित मन और अहंकार सहित बुद्धि को विवेक मयी बनाने की क्षमता मानव योनि में ही उपलब्ध है जिसके कारण मनुष्य अन्धकार रूपी अज्ञान को शुद्ध ज्ञान द्वारा अतिक्रम कर सकता है। इसी लिये तो भगवान श्रीराम ने अपने श्रीमुख से इसे सुर दुर्लभ योनि कहा है:

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

देवता जो सर्व समर्थ हैं वे भी यज्ञादिक द्वारा अपना भाग पाने लिये गृहस्थ के आश्रित रहते हैं। केवल वे ही नहीं अपितु ऋषि एवं पूर्व मृत पितृगण भी तुष्टि के हेतु सदाचारवान सद् गृहस्थ के आश्रित रहते हैं इस कारण से

भी इस योनि को सुर दुर्लभ ही कहा जा सकता है। ऐसे दुर्लभ मानव शरीर को पाकर भी जिसने परम गति प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ नहीं किया वह आत्मघाती कहा गया है और यह आत्मघाती मृत्यु के अनन्तर अज्ञान से आवृत असुर लोकों में जाते हैं।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता।
तांस्ते प्रेत्यभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥कठो०॥

अतः इस दुर्लभ मानव शरीर को पाकर आत्मा का उद्धार करना ही चाहिये। यह आत्मा स्वयं ही आत्मा का बन्धु अथवा शत्रु है।

आत्मैव ह्यात्मना बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

मानव शरीर में जन्म गृहण करते ही जीव को माता, पिता, भाई, बहिन और अन्य सगे सम्बन्धियों का प्यार प्राप्त होता है जो राग में परिणित हो जाता है। बड़े होने पर शनैः शनैः संगी साथी व मित्र बढ़ते जाते हैं। विवाह हो जाने पर स्त्री पुत्र व धन के संचय के चक्कर में पड़ जाता है। क्रमशः यह माया का फन्दा इस जीव को जकड़ता ही जाता है।

पीत्वा प्रमादमयीं मोह मदिरां मुन्मत्त भूतं जगत्।

इस प्रकार यह अन्धकार का पर्दा परमात्मा के वास्तविक ज्ञान को आच्छादित कर लेता है। लौकिक यानी प्राकृतिक जीवों के साथ यह विशेषता हो सो बात नहीं। इस माया के चक्कर में जगतसृष्टा ब्रह्माजी, शिवजी, इन्द्र प्रभृति देवता तथा महर्षि नारद, विश्वामित्र, सौभरि आदि तपस्वी भी फंस चुके हैं तो फिर पामर जीव की कौन बसात। भगवान ने अपने श्री मुख से कहा है देवी ह्येषां गुण मयी मम माया दुरत्यया। इसी माया द्वारा

नट मर्कट इव सबहिं नचावत। राम खगेस वेद अस गावत

इस माया से तरने का उपाय भगवान ने बताया है

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते

इसके लिये वे कहते हैं: मन्मना भव मद् भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। और तब मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे। अतः पूर्णतया उन्हीं परमात्मा की शरण जाने से और उन्हीं की कृपा से परम शान्ति तथा परम पद प्राप्त होगा। मगर इस मार्ग पर चलना सहज नहीं है "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति"। यदि यह मार्ग निर्विघ्न निबह जाय तब तो परम पद यानी कैवल्य प्राप्त हो जाय। इस के लिये

अति हरि कृपा जाहि पर होई।
पांउ देइ एहिं मारग सोई॥

इस पथ में श्रद्धा रूपी पाथेय और सन्तों के सत्संग की अत्यन्त आवश्यकता होती है जो पग-पग पर मार्ग प्रदर्शित कर सकें। यह सन्त भी बिना भगवान की कृपा के नहीं मिलते।

बिन हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता।
सन्त विशुद्ध मिलहिं पर तेही।
चितवहिं राम कृपा कर जेही॥

ज्ञानी गुरु अथवा सन्तों के साथ सत्संग करने की भावना अन्तःकरण से ही प्रेरित होती है। यह भावना तब ही उत्पन्न होती है जब चित्त सांसारिक विषयों से उपरिमित होने लगता है। आधिभौतिक सुख की खोज में आदमी जब इधर-उधर दौड़ते २ थक जाता है तब वह विचारता है कि वास्तविक सुख संसार में कहीं नहीं है। धनी, पुत्रवान, निस्संतान, राजा, रंक कोई भी सुखी नहीं है वास्तविक सुख तो संतोष में है। "संतोषं परमं सुखं"। कहा भी है

गोधन गजधन वाजिधन अरु धन मेरु समान।
जब आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥

सन्तोष राग में नहीं वैराग्य में है। जब यह समझ में आजाता है तब इच्छाओं अथवा यों कहें वासनाओं को दमन करने की प्रवृति स्वयं जागृत होने लगती है। इन्द्रियों में सब से बलवान मन है जो बुद्धि और अहंकार नामक मंत्रियों की सहायता से शेष कर्मेन्द्रियों पर शासन करता है। यही मन साधक के पथ में मोक्ष अथवा बन्धन का कारण है और इसी का बुद्धि द्वारा सदुपयोग और अहंकार द्वारा दुरुपयोग होता है। अहंकार के परामर्श से चक्कर खाता हुआ मन अन्त में जब बुद्धि से परामर्श लेता है तब ही स्वस्थ होता है। राजर्षि विश्वामित्र, सौभरि मुनि, ययाति और एल (पुरुर्वा) इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। जब बड़े बड़े तपस्वियों की यह दशा हुई तो इस पथ पर अग्रसर एक नवीन साधारण पथिक की दशा का अनुमान लगा लेना कठिन नहीं। इस विषय में एक साधारण उदाहरण दिया जाता है।

एक विद्यालय है जिस में बहुत से छात्र अध्ययन करते हैं। हर कक्षा में कुछ तो मन न लगने के कारण, कुछ यथेष्ट व्यय न कर सकने के कारण पढ़ाई ही छोड़ बैठते हैं। कुछ वार्षिक परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण उसी कक्षा में रुक जाते हैं। इसी क्रम से हाई स्कूल परीक्षा तक तो विरले ही विद्यार्थी पहुंच पाते हैं। जो इस परीक्षा में भी किसी प्रकार उत्तीर्ण हो गये उन में से कुछ तो अध्ययन वहीं समाप्त कर देते हैं और विरले ही आगे भी क्रम जारी रखते हैं। इस तरह उस प्रारंभिक कक्षा के साथियों में से बहुत थोड़े ऐसे निकलते हैं जो एम० ए० की अन्तिम परीक्षा में साथ साथ रहते हैं और उसमें उत्तीर्ण होते हैं। यही भाव गीता में भगवान ने निम्नांकित श्लोक में वर्णन किया है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥७।३

इस दुर्गम पथ में अग्रसर हुये, सहस्रों प्रयत्नशील साधकों में से बिरले कोई एक दो ही गन्तव्य स्थान तक सकुशल पहुंच सकते हैं। सम्भव है यह सफलता एक ही जन्म में न प्राप्त हो सके। जितना पथ शेष रह जाता है उसके लिये एक या अनेक बार पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ता है। ब्रह्म शुद्ध है अतः वह अमित प्रत्येक आत्मा को पूर्णतया तप्त कर खरा बना लेता है। जितना मैं मार्ग ते करलिया है वह भी व्यर्थ नहीं जाता क्योंकि—

पूर्व जन्मार्जिता विद्या पूर्व जन्मार्जितंधनम्।
पूर्वजन्मार्जित पुण्यमग्रे धावति धावति ॥

और अगले जन्म में ऐसे साधन स्वतः ही उपलब्ध हो जाते हैं जिस से यह योगभ्रष्ट पथिक क्रम से अपने निर्देशित मार्ग की ओर अग्रसर हो यथा—

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
गी० ६।४१।४२

लोकोक्ति है 'रसरी आवत जात तें सिल पर होत निशान' अनेक जन्मों में भगवत् चरणों में रति होते-होते साधक क्रमशः पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेता है।

बहूनां जन्मनान्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ गी. ७।१९

अतः यह स्पष्ट हो गया कि इन्द्रियों का विषयों से क्रमशः उपरमित होना ही भगवत कृपा का द्योतक है। जिसकी इन्द्रियां वशीभूत हो गई हैं उसी की बुद्धि वास्तव में स्थिर हो सकती है और उसी का चित्त प्रसन्न रहता है जिससे वह सच्ची शान्ति प्राप्त कर लेता है।

स शान्तिमाप्नोति न काम कामी। गी. २।७०

चित्त की प्रसन्नता ही से सब दुःखों का नाश हो जाता है। ऐसा साधक जो बाह्य सुख दुःखों को अपेक्षा की।

भगवन्नाम-महिमा

(लेखक—श्रीरतनलाल गुप्ता)

आज संसार में दैहिक, दैविक और भौतिक तथा आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक पाप-तापों के फलस्वरूप सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य छा रहा है। उन पाप-तापों के फलस्वरूप होनेवाले दुःखों से बचने के लिए नामजप ही एकमात्र सर्वसाध्य और सरल साधन है। नामजप के माहात्म्य का तो किसी प्रकार भी वर्णन कर देना असम्भव है। क्योंकि—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥

यदि नामी ही नामगुण को कहने में असमर्थ है तो फिर गूँगे की गुड़ की तरह हम भी इसका किस तरह वर्णन करें। परन्तु फिर भी नैषधकार श्रीहर्ष की "वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्" इस उक्ति को ध्यान में रखते हुए यथाशक्ति नाममाहात्म्य का वर्णन करूंगा।

द्वापर के परिक्षयकाल में परीक्षित् नामक पाण्डुवंशीय राजा भारतवर्ष में शासन करते थे। एक समय राजा परीक्षित् शिकार खेलने के लिये अश्वारूढ़ होकर जा रहे थे। सहसा राजा ने मार्ग में एक काले कलूटे पुरुष को देखा। वह तलवार लेकर एक गाय को काट रहा था। उससे राजा ने पूछाः—तू कौन है? जो मेरे राज्य में ऐसा पापकर्म कर रहा है? उस कृष्णवर्णवाले पुरुष ने राजा की शरण लेते हुये कहा—राजन्! मैं कलि हूँ, आपकी शरण लेता हूँ। उसके इस प्रकार प्रार्थना करने पर राजा ने फिर उसे मारने का विचार छोड़ दिया। कलियुग महान् दोषमय होते हुए भी परीक्षित ने उसे क्यों न मारा। इस प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी श्रीमद्भागवत में कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत॥

अर्थात् सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में तो परमात्मा की प्राप्ति सहस्रों वर्ष अभ्यास करते २ शीघ्रता से नहीं होती—

जनम जनम मुनि जतन कराहीं।
अन्त राम कहुँ आवत नाहीं॥

परन्तु कलियुग में केवल नामजप से ही मुक्ति सुलभ है। किसी भी भगवान् के सगुण साकार रूप का इष्ट बनाकर उसके नाम का जप तत्पर और सश्रद्ध होकर करना चाहिये। जब जापक जल से बिछुड़ी हुई मछली के समान भगवान् के दर्शन के लिये तड़पने लगता है। तब उसे शीघ्र ही भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। क्योंकि—

भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।

श्रीकृष्णचैतन्य जिन्होंने वंगप्रदेश के जन-जन के हृदय भक्तिरस की मधुधारा प्रवाहित की। वे कीर्तन करते २ नामी में एकाकार हो जाते थे। नाम जापक और नामी की यही एकता है। खैर यह तो ऊँची बात है। नाम का थोड़ा जप करने पर भी यह इच्छा होती है कि जप और करूं। ऐसा करते २ जापक तृप्त ही नहीं होता—

तुण्डे ताण्डविनीरतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये।
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्॥
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं।
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥

ऐसी दशा होनेपर भक्त सभी सांसारिक पदार्थों से परे हो जाता है। शीघ्र ही वह सारूप्य प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार के भक्तों पर देश, माता और कुल गर्व कर सकते हैं—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन। विमुक्तिमार्गे सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

॥ ॐ ॥

धार्मिक कृत्यों का रहस्य

(लेखक—श्री पं० वैजनाथजी अग्निहोत्री)

यह निर्विवाद सत्य है कि प्राणी की प्रत्येक चेष्टायें होती हैं केवल आनन्द के लिये। मनोनुकूल वैषयिक भोगों में ही इन्द्रियों को सुख मिलता है। नेत्र मनोभिलषित सुन्दर द्रव्य देखना चाहते हैं, श्रवण सुन्दर शब्द सुनना चाहते हैं, रसना सुन्दर खाद्य, पेयादि का स्वादु लेना चाहती है, नासिका सुन्दर गन्ध सूंघना चाहती है, त्वक् सुन्दर वस्तु स्पर्श करना चाहती है, इसी प्रकार हस्तपादादिक सुन्दर मनोभिलषित कार्य करना चाहते हैं, प्रत्येक प्राणी के विषय उसके मन के अनुकूल ही 'सुन्दर' होते हैं, मन के प्रतिकूल विषयों का होना उसे पसन्द नहीं आता, उनमें उसे सुख नहीं प्रतीत होता, यह प्रत्येक व्यक्ति का स्वानुभव है। कोई व्यक्ति सुन्दर नारी को देखना और भोग करने में सुख मानता है तो अन्य व्यक्ति देव दर्शन करने में और उसके सान्निध्य में सुख मानता है, इसी प्रकार एक व्यक्ति काम एवं अर्थ की ही वार्ता करने तथा प्राप्त करने में सुख मानता है तो दूसरा व्यक्ति भगवत् चरित्र सुनने एवं भगवत् प्राप्ति में ही सुख मानता है, प्रथम व्यक्ति दूसरे की वस्तुओं को पसन्द नहीं करता और द्वितीय व्यक्ति प्रथम की वस्तुओं को पसन्द नहीं करता। प्रश्न उठता है कि आखिर यह क्यों? यदि उन वस्तुओं में प्रथम व्यक्ति को सुख मिल सकता है तो द्वितीय को क्यों नहीं और जिनमें द्वितीय को सुख मिलता है उसमें प्रथम को क्यों नहीं मिलता। निश्चय ही इस शंका से यह सिद्ध हो जाता है कि वास्तव में किसी भी भोग्य पदार्थ में सुख है ही नहीं, यदि सुख होता तो प्रत्येक व्यक्ति को सुख मिलता, ऐसा नहीं कि एक व्यक्ति को तो सुख का भाव हो और दूसरे को नहीं। प्रत्येक भोग्य पदार्थ तो एक से ही हैं। किन्तु भोक्ता पुरुष के मन विभिन्न प्रकार के होने से जिसके मन के अनुकूल जो पदार्थ होता है उसमें उसे सुख मिलता है, और मन के प्रतिकूल होने से दुःख मिलता है, वास्तव में मन की अनुकूलता में ही है सुख तथा मन की प्रतिकूलता में ही है दुःख।

इसी बात को इस प्रकार से समझा जा सकता है कि एक व्यक्ति को वेश्या समागम का कुछ भी ज्ञान नहीं, अन्य व्यक्ति के संग जो वेश्यागामी है कभी उसने भी समागम किया। वेश्यागामी व्यक्ति से अब प्रायः इसी प्रकार की वार्ता भी नित्य होने लगी और वेश्यागमन में संग भी। उसे भी अब वेश्या समागम में सुख मालूम पड़ने लगा, जब कि प्रथम बार कोई विशेषता न ज्ञात हुई थी। अब तो बिना वेश्या के यहां गये उसे चैन ही नहीं आती, यदि कोई विघ्न डालता या समझाने का प्रयत्न करता तो उसे अच्छा नहीं मालूम पड़ता। जिस व्यक्ति का जीवन वेश्या गमन से पूर्व सुखकर था और वेश्यागमन को अच्छा नहीं समझता था, प्रथम बार भी कोई विशेषता नहीं ज्ञात हुई, अब वही व्यक्ति बिना वेश्या के अपना जीवन दुःखमय और अपूर्ण समझता है, आखिर यह क्या हो गया। विचार करने से मालूम होगा कि प्रथम उसका मन वेश्या गमन के प्रतिकूल था और अब अनुकूल हो गया, मन को रमण में राग—आसक्ति हो गयी जिसका परिणाम यह हुआ कि मन दुर्बल, कामासक्त होकर पराधीन हो गया, इन्द्रियों का दासत्व

स्वीकार कर लिया। मन में भोग के संस्कार अति प्रबल हो गये, मन वासनामय हो गया, जो मन स्वतंत्र था, इन्द्रियों का स्वामी था वही परतंत्र, इन्द्रियों का दास हो गया, अब केवल इन्द्रियों के अनुकूल उसकी चेष्टायें रह गयीं। रेशम का कीट अपने से ही रेशम को निकाल कर स्वयं उसमें आबद्ध हो जाता है और अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वयं ही नष्ट कर देता है, ठीक इसी प्रकार मन की भी दशा हो गयी। अब उसकी दृष्टि में शुभ, अशुभ, कोई कार्य रह ही नहीं गया, येन केन प्रकारेण इन्द्रियों के भोगों को उपलब्ध करना और उसी में सुख मानकर विमग्न रहना ही कार्य रह गया। दूषित वासनाओं से आबद्ध होना, इन्द्रियानुकूल व्यवहार करना यह प्राणी का पतन है, बन्धन है, यही मन ने कर दिया।

प्राणी का यह बन्धन, इन्द्रियों की दासता और भोग वासनामय मन यदि इस जीवन तक ही सीमित रहता तो भी चिन्ता की कोई बात न थी, आगामी जीवन तो स्वतंत्र, स्वामित्व और वास्तविक आनन्द मय राग रहित होता, किन्तु ऐसा नहीं होता. यह रागादि बन्धन का क्रम अनन्त जीवन—जन्मों तक चलता रहता है, इस चक्र का फिर न कभी आदि होता है और न अन्त हम देखते भी हैं कि आज के कार्य, आज की स्मृति, आज की भली या बुरी वासना सोकर कल उठने पर भी ज्यों की त्यों मिलती है, इसी प्रकार एक जन्म की वासना दूसरी जन्म में भी मिलती है, प्रायः यह निश्चित है जिन कार्यों की वासना मन में जीवन काल में रहती है वही मरणान्तकाल में साकार होकर प्राप्त होती है। और उसी के अनुकूल आगामी जन्म भी मिलता है, श्वान, शूकर, कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मानव या देव योनि शुभाशुभ कार्यों की वासनानुकूल ही प्राप्त होती है। यहां पर यह ध्यान रखना परम आवश्यक है कि मानव योनि ही केवल कर्म प्रधान भोग योनि है, अन्य योनियां तो मानव देह के कर्मानुसार केवल भोग य नयां ही है, उनमें केवल मानव देह के शुभा_ कर्म वासनानुसार फलों का प्राप्त होना ही सम्भव है किसी कर्म का करना नहीं। इसलिये वास्तव में मानव देह की सार्थकता इसी में है कि शुभाशुभ का ज्ञान प्राप्त करके विषयेन्द्रियों का दमन करते हुये शुभ कर्मों में ही प्रवृत्ति की जावे, ऐसा न करके इनके विपरीत करना मानव जीवन का दुरुपयोग करना है. अपना सर्वनाश करना है और अपने लिये स्वयं चिता निर्मित करना है।

मानव योनि से अन्य योनि प्राप्त करने पर तो प्रबल भोगों के वासना मय संस्कार रहते हैं और उन भोगों को संस्कारानुसार अनेक योनियों में भोगने के पश्चात् जब प्रबल संस्कार क्षीण हो जाते हैं। तथा शुभ कर्मों के संस्कार और अशुभ कर्मों के संस्कार प्रायः समान बल में रह जाते हैं। तब प्राणी पर दया करने वाले दयामय भगवान् उसे पुनः एक संयोग मानव योनि का देते हैं, जिससे अब विचार पूर्वक शुभ कर्मों में प्रवृत्त होकर इस नारकीय जीवन से अपना उद्धार करके स्वतन्त्र जीवन आनन्दमय बना सके। "इन्द्रियों का प्रवाह-मार्ग प्रायः अधोगामी ही है। एवं सहायक रूप से वैषयिक संस्कार भी है, इसी कारण से मानव प्राणी भी प्रायः इन्द्रिय-भोग की ओर ही अग्रसर होता है, ऐसी अवस्था में इसके विपरीत कार्य मानव कर ही कैसे सकता है।" सम्भव है ऐसा ही विचार करके दयालु ईश्वर ने वेद ज्ञान का स्फुरण ब्रह्मा एवं अन्य तपस्वी ऋषि, मुनियों के हृदय में समाधिकाल में किया हो। जिसमें शुभाशुभ का विवेचन, मानव के वैषयिक संस्कारानुसार उनके कर्त्तव्य और वास्तविक तत्व का कथन किया गया है। वेदों के अनुसार ही उन त्रिकालज्ञ ऋषियों ने सरल, सीधी एवं स्पष्ट भाषा में मानव के कल्याणार्थ मानव धर्म की रचना की, जिसे 'स्मृति' भी कहते हैं। प्रत्येक प्राणी के शुभाशुभ कर्मानुसार भिन्न-भिन्न

संस्कार होते हैं, इस कारण एक ही कर्म सबके लिये लाभप्रद नहीं हो सकता। जिसके जितने शुभ या अशुभ कर्मों के संस्कार हैं उसी के अनुरूप वेदों में प्रथक प्रथक धर्मों का विधान करने से ही प्राणी की उन्नति निश्चित कर ईश्वर ने मानव को पांच समूहों में प्रथक प्रथक कर दिया, ये पांच विभाग ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्त्यज के नाम से कहे जाते हैं। मानव ही नहीं पशु, पक्षी, स्थावर, जंगम आदि के सभी में य. पंच विभाग देखा जाता है, यद्यपि सभी ईश्वर के अंश है नीच या उच्च का प्रश्न ही नहीं उठता, फिर भी जिसके जितने वैषयिक रागमय कर्मों के संस्कार प्रवृत्त है वह उतना नीच है और जिसके जितने कम संस्कार या शुभ संस्कार है उतना ही वह उच्च है। उत्तम, मध्यम एवं निकृष्ट कर्मों या संस्कारों को ही सत्, रज, एवं तमोगुण कहा जाता है। ब्राह्मण में सत्व गुण प्रधान संस्कार, क्षत्रिय में सत्व एवं रजोमिश्रित गुण प्रधान, वैश्य में रजोगुण प्रधान, शूद्र में रज एवं तमोगुण प्रधान तथा अन्त्यज में तमोगुण प्रधान कर्म या संस्कार होते हैं। इन पंच समूहों में विभक्त मानव के संस्कारानुसार भिन्न भिन्न धर्मों का विधान किया गया, जिसका तात्पर्य यही कि जो जिस स्थान पर है। उसको वहीं से ऊंचा उठाया जावे, यह नहीं कि ऊंचे वाले को भी नीचे लाकर ऊपर लेजाया जाय और नीचे वाले को ऊपर से आगे बढ़ाया जाय, यदि ऐसा होता तो सभी का कल्याण कदापि सम्भव नहीं होता और धार्मिक विधान अधूरा ही रह जाता। प्रत्येक समूह या वर्ण के धार्मिक कृत्यों में एक ही भावना निहित है कि वैषयिक रागमय वासना से मन को मुक्त किया जावे, जिससे वैराग्य मय मन में अपने अंशी ईश्वर को प्राप्त करने की योग्यता उत्पन्न हो जाय। सबका लक्ष्य एक ही है मार्ग भिन्न-भिन्न।

मानव धर्म हमें बतलाता है कि यदि स्त्री, पुरुष सम्भोग काल में या बालक के गर्भ में स्थित समय में जैसी अपने मन की भावना रखेंगे वही भावना गर्भस्थ बालक में भी होगी, इसलिये स्त्री, पुरुष का मिलन केवल धर्म भावना से हो काम' भावना से नहीं। इसीलिये हमारे यहाँ गर्भाधान एक संस्कार माना गया है, जिसमें शुभ समय और शुद्ध मन की परमावश्यकता है, जिससे उत्पन्न बालक में भी शुद्ध एवं शुभ संस्कारों की ही भावना हो, कामुक भावना नहीं। इसी प्रकार पुंसवन संस्कार, मुण्डन, कर्णबंध, अन्नप्राशन एवं यज्ञोपवीतादि संस्कारों में भी यही भावना है कि बालक में शुभ संस्कारों का उदय हो और पूर्व जन्म के दूषित रागमय संस्कारों का विनाश हो। इसके बाद भी संस्कारों का क्रम तो मृत्यु पर्यन्त रहता ही है, किन्तु अब इसके साथ शुभ कर्मों की शिक्षा एवं धार्मिक कृत्यों का क्रम भी प्रारम्भ हो जाता है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यासाश्रमों का वर्णानुकूल कर्त्तव्य मिलता है। हम ईश्वर द्वारा नियुक्त देवताओं की वस्तुओं का भोग करते हैं, हमें वायु देवता ने वायु प्रदान की है जिससे हम प्राणन् क्रिया करते हैं, जल का पान करते हैं, अग्नि से समस्त वस्तुओं का पाचन करते हैं, सूर्य के द्वारा प्रकाश, जल वर्षा आदि प्राप्त करते हैं, चन्द्र से रस मिलता है, अन्न से जीवन वृद्धि एवं औषधियों से जीवन रक्षा करते हैं, इसी प्रकार माता, पिता द्वारा हम पोषित होते है, हमें संस्कारों द्वारा शुद्ध बनाते हैं, पशु से मानव और मानव से देवत्व की ओर अग्रसर करते हैं, उन तत्ववेत्ता ऋषियों से भी हम क्या नहीं पाते ? जिनके द्वारा ही हमें शुभ, अशुभ का ज्ञान, देव लोक पितृ लोक, ईश्वर साक्षात्कार या तत्व लाभ होता है। इन्हें हम क्या देते हैं ? अतः देवता, पितृ एवं ऋषियों का जो ऋण हमारे ऊपर है उसके लिये भी हमें कुछ करना ही चाहिये अन्यथा बिना ऋण भुगतान किये जो समस्त इनकी वस्तुओं का भोग करता है वह 'चोर' है और चोर की दुर्गति ही

होती है। इसीलिये इन ऋणों के उद्धार निमित्त अग्निहोत्रादि कर्म, श्राद्ध, तर्पण एवं वेद, शास्त्र का अध्ययन अनिवार्य बतलाया गया है। यद्यपि यह समस्त कर्म ऋण भार उतारने के निमित्त बतलाये गये हैं, किन्तु इन सबका फल होता है। मन से वैषयिक रागों की निवृत्ति।

नैमित्तिक कर्मों की भी कर्तव्यता बतलायी गयी है। इनमें यज्ञ, यागादि, तीर्थगमन, पर्व, स्नान इत्यादि कहे गये हैं और इनके स्वर्ग प्राप्ति, देव साक्षात्कार तथा मोक्ष फल भी बतलाये गये हैं, किसी किसी राजाओं के यज्ञों में मांस, मदिरा का भी विधान किया गया है। इन सबका तात्पर्य भी मानव मन की विभिन्नताओं को लेकर किया गया है कि यदि किसी की रुचि मांस, मदिरा सेवन की ही है तो यज्ञ निष्पन्न करके सेवन करे, उस यज्ञ के फल और यज्ञ की कर्तव्यता के आगे साधारण मांस, मदिरा का कोई महत्व नहीं। इन यज्ञों में भी स्वर्गादि फलों का कथन केवल इन कर्मों में प्रवृत्ति कराना मात्र है, वास्तविक उद्देश्य तो सभी विषय भोगों से उपरामता ही है। तात्पर्य मन की इच्छा से विषयों का सेवन केवल भोग के लिये न करें, उन यज्ञादि कर्मों का एक अंग समझ कर ही करें। इसी प्रकार तीर्थ क्षेत्रों में जाने से साधु, महात्माओं के सत्संग से भी विषयों से वैराग्य होता है। यदि किसी व्यक्ति से धर्म विरुद्ध कार्य हो जाते तो उसके लिये 'प्रायश्चित' का भी नियम रखा गया है। इस सब का निष्कर्ष यही कि वैषयिक भोग जिनमें सुखाभास होता है और जो पतन के कारण है, जिनसे मन रागमय हो गया है, उन्हें सामर्थ्य के अनुसार त्याग करते हुये सत्य आनन्द की ओर प्रगति करते जाना ही धर्म का उद्देश्य है। कर्मों की कर्तव्यता वैराग्य तक ही है। पश्चात् नहीं 'तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।' वह अर्थ एवं काम राग उत्पन्न नहीं करता जिसका मूल धर्म और फल मोक्ष हो, अतः प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है कि धर्म पूर्वक समस्त व्यवहार करे। जिससे अन्त में शाश्वत शान्ति, परमानन्द एवं सत्स्वरूप की प्राप्ति हो।
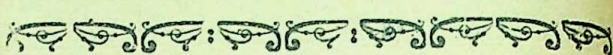
(पृष्ठ ४ का शेष)

दृष्टि से वहन करते हुये अपने अन्तःकरण में ही सुख पूर्वक रमण करते हुये प्रकाश प्राप्त कर लेते हैं वही ब्रह्मनिष्ठ साधक ब्रह्म स्वरूप होकर ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।

भिद्यते हृदय ग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टेपरावरे।

यही हृदय की अज्ञान रूपी ग्रन्थि का कट जाना ही मोक्ष है।

अज्ञान हृदय ग्रन्थिनाशो मोक्ष स्मृतः। शिव गी. १३।३१

इस प्रकार अनेक जन्मान्तर में

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेव परायणः।
सर्व पाप विशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्॥ वि. स.

स्वर्ग से तो पुण्यक्षीण होने पर पुनः पुनः जन्म धारण करना पड़ता है परन्तु सनातन ब्रह्म में लीन हो जाने पर आवागमन से मुक्ति मिल जाती है।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

इसी अमृतत्व की प्राप्ति प्रत्येक जीवधारी का प्रधान ध्येय है।
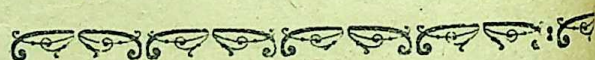
—: सूचना :—

वृन्दावन के किसी मंदिर व स्थानों से भजनाश्रम" का कोई सम्बंध नहीं है। भजनाश्रम के लिये अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी बीमा या मनीआर्डर द्वारा मंत्री श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा। प्रत्येक दान की रसीद श्रीभगवान-भजनाश्रम के नाम की छपी हुई दाता महानुभाव की सेवा में भेजी जाती है।

श्री गंगग्वालजी

(लेखक—श्री शिवनाथजी दुबे "साहित्यरत्न")

श्री गंगग्वालजी का जीवन अत्यन्त प्रेमी, सरस और सरल रहा है। ये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के भक्त थे। सरल भाव की भक्ति थी इनकी। मिथ्या भाषण ये पाप समझते थे। अपने गुरु श्री व्रजनाथजी के चरणों में इनकी पूर्ण भक्ति थी साथ ही श्रीकृष्ण के प्रति इनका अपार और अनुपम प्रेम था। व्रज रज के कण-कण में, वहां की गुल्म लतादि समस्त वस्तुओं में ये श्र कृष्ण को ही देखते थे। इसी कारण ये व्रज छोड़ कर कहीं नहीं जाते थे। सदैव व्रज में ही निवास करते थे। इनका यह दृढ़ विश्वास था कि मैं व्रज में अपने परम प्रिय श्रीकृष्ण की दया से ही रह पा रहा हूँ। अपनी शक्ति को ये सर्वथा हेय और तुच्छ समझते थे। मेरा ही नहीं, जगत का ही नहीं, अनन्त ब्रह्माण्ड में जहां कहीं कुछ भी हो रहा है या होगा सबके कर्त्ताधर्त्ता एक मात्र श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण ही सृष्टि के अनन्त रूपों में हैं। सारी लीला उन्हीं की है ऐसा ये हृदय से मानते थे। इन्होंने श्रीप्रियाजी की सखियों, व्रज की गायों तथा गांवों का नाम प्राचीन पुस्तकों में खोज खोज कर एकत्र किया था और अलग अलग इनका गायन भी किया था। इनका कण्ठ स्वर अत्यन्त मधुर था। ये जब श्री कृष्ण की स्मृति में पद गायन करते थे तब श्रोता तन्मय होकर झूमने लगते थे। हवा थिरकने लगती थी। स्वयं आनन्द शरीरी सा नृत्य करने लगता था।

एक बार घूमता हुआ भारत सम्राट अकबर व्रज में पहुँचा। मध्याह्नकाल था। 'सारंग का पद' सुनने की इच्छा हुई उसकी। आज्ञा पाते ही सेवक श्री गंगग्वालजी के पास पहुँचे। पृथ्वी के बड़े से बड़े नरेश के प्रति श्रीगंगग्वालजी की कोई आसक्ति नहीं थी। वे अकबर के पास जाना नहीं चाहते थे, किन्तु अकबर के सेवकों के हठके और बल के सामने कुछ बोल नहीं सके। चुपचाप चल दिये।

श्रीगंगग्वालजी के साथ वल्लभ नामक एक और संगीतज्ञ थे। अकबर बैठा था। सितार का तार झनझना उठा। मृदंग पर थाप पड़ी। उन स्वरों में जाने कैसी मस्ती थी, जाने कैसा आकर्षण था कि अकबर झूम उठा। ऐसा उन्मत्त कर देने वाला जादू भरा मधुर स्वर नहीं सुना था जीवन में इसने।

'आप मेरे साथ दिल्ली चलें मेरे ऊपर बड़ी कृपा होगी" पद सुनने के बाद अकबर ने निवेदन किया।

"साधुओं को राजा के समीप नहीं रहना चाहिये" श्रीगंगग्वालजी श्रीकृष्ण के ध्यान में सिर झुकाये धीरे धीरे कह गये। "राज्य परिवार के सम्पर्क में आकर साधु के पतन की आशंका रहती है। दूसरे यह व्रजभूमि, मेरे प्राण प्रिय श्रीकृष्णकी व्रजभूमि, जहां श्रीकृष्ण प्रतिक्षण विराजते हैं, जहां श्रीकृष्ण खेलते हैं, जिसे श्रीकृष्ण छोड़ना नहीं चाहते। श्रीकृष्ण को जो गोलोक से भी अत्यधिक प्यारी है, परम पावन है, मैं इसे छोड़ कर अन्यत्र जाना अपने मनसे किसी प्रकार भी नहीं चाहता।

अकबर को भारत सम्राट् होने का गर्व था। वह बलपूर्वक इन्हें दिल्ली ले गया। दिल्ली जाने पर श्री गंगग्वालजी मौन रहने लगे। इनके श्रीकृष्ण तो वे सर्वत्र ही, पर ये व्रजभूमि के लिए छटपटा रहे थे। इनका शरीर तो दिल्ली में था, किन्तु मन और प्राण व्रज रज कण में रह रहे थे।

यह समाचार पाटन नगर के राजा श्रीतूंवर हरिदासजी को मिला, तो वे बड़े दुखी हुए। वे श्रीकृष्ण के भक्त थे। श्रीगंगग्वालजी में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। सीधे अकबर के पास जाकर उन्होंने श्रीगंगग्वालजी को व्रज जाने देने के लिए आज्ञा देने की प्रार्थना की। अकबर ने उन्हें छोड़ दिया। श्रीगंगग्वालजी व्रज में पहुँचे और जीवन के अन्तिम क्षण तक वहीं रहे। श्रीकृष्ण कीर्तन करते हुए ही इन्होंने अपने नश्वर भौतिक शरीर का परित्याग किया था।

* श्री हरिः *

कीर्त्तन

(लेखक—श्री पं० राधारमणजी शुक्ल शास्त्री)

अहा ! लोकपितामह ब्रह्मा की सृष्टि रचना कैसी विचित्र है। इसमें चौरासी लक्ष योनियों का निर्माण हुआ है, जिनमें जीव अपने पूर्वजन्मार्जित कर्मफलानुसार जन्म ग्रहण करते रहते हैं। जब कभी परमात्मा की अहैतुकी कृपा से पुण्यकर्मों का फल उदय होता है, तभी जीव को मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है। सभी योनियों में केवल यही एक योनि भगवत्प्राप्त्यर्थ सोपानस्वरूप है; क्योंकि इसमें नवीन कर्मोपार्जन का अधिकार विहित है, परन्तु अन्य सभी योनियाँ तो केवल भोगयोनियाँ हैं। ऐसी दुर्लभ मनुष्ययोनि को पाकर भी जिसने अपना उद्धार नहीं कर लिया, उसे पुनः चौरासी के चक्कर में भ्रमण करना ही पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

'जिसने इस दुर्लभ मनुष्य-शरीर को पाकर भी इस भवसागर से अपना उद्धार नहीं कर लिया, वह मूर्ख कृतघ्न और आत्महत्यारा है।' अतः मनुष्य को आत्मोद्धारार्थ सर्व प्रकार से चेष्टा करनी चाहिये।

यद्यपि जीवों के निस्तार के लिए शास्त्रों में अनेक विधि उपाय वर्णित हैं, तथापि यह कलियुग का समय है। इसमें जीवन की अवधि बहुत थोड़ी है। मनुष्यों की आयु दिन प्रति दिन क्षीण होती जा रही है। त्रिताप वृद्धिंगत हैं। भोगों की प्रबल लालसा ने प्रायः सभी को विवश तथा उन्मत्त-सा बना डाला है। कामनाओं की भँवर में बुद्धि भ्रमित हो गई है। देश और उन्नति के नाम पर धर्म, अहिंसा, सत्य और मनुष्यत्व तक का सत्यानाश किया जारहा, है। कुवासनाओं का ताण्डव-नृत्य हो रहा है। इस युग में धर्म का केवल एक ही पाद बच रहा है। सुख की चाह तो सभी को लगी है, परन्तु सुख के मूल धर्म का सर्वनाश करने में तनिक भी हिचक नहीं होती। हमारी इस दुर्दशा का त्रिकालदर्शी महर्षियों तथा महापुरुष भगवद् भक्तों को पहले से हीं ज्ञान था, इसीलिए दया पर वश हो उन्होंने सरल सुसाध्य प्रयत्न बता रक्खा है। वह है — भगवन्नाम-कीर्त्तन।

भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र तत्व; रहस्य आदि का श्रद्धा-प्रेम पूर्वक उच्चारण करना कीर्त्तन कहलाता है कीर्तन के कई भेद हैं, परन्तु उनमें सबसे उत्तम वह है, जिसमें सच्चे हृदय से प्रेम विभोर होकर उच्च स्वर से भगवान को पुकारा जाय। ऐसी पुकार में इतना प्रबल आकर्षण होता है कि भगवान् प्रेमपाश में बंधे हुए शीघ्रातिशीघ्र भक्त के सम्मुख प्रकट हो जाते हैं। क्यों न हो, जब उन्हीं का प्रण है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये च न।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

'नारद! जहां मेरे भक्त मेरे नामों का कीर्तन करते हैं वह स्थान मुझे वैकुण्ठ तथा योगियों के हृदयों से भी अधिक रुचिकर है; अतः उन्हें छोड़ कर मैं कीर्तन-स्थल में

ही निवास करता हूं।' 'अर्जुन ! मैं तुमसे यह सत्य कहता हूं कि जब भक्त मेरे नामों का उच्चारण करता हुआ मेरी मूर्ति के निकट नाचता है, तब मैं उसके हाथों बिक जाता हूं।

कलियुग में कीर्तन से बढ़कर उद्धार का सहज मार्ग अन्य कोई नहीं है। पुराण में भी आया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

'कलियुग में केवल हरिनाम ही मोक्ष का साधन है। दूसरी गति नहीं है।' गोस्वामीजी ने भी कहा है—

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥

'जो गति सत्ययुग में पूजा से, त्रेता में यज्ञ से और द्वापर में योग से प्राप्त होती थी, वही कलियुग में केवल हरिनामकीर्तन से ही सुलभ है।' श्रीमद्भागवत का निम्नांकित श्लोक भी इसी के समर्थन में है—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

'सत्ययुग में श्री विष्णु के ध्यान से, त्रेता में यज्ञों द्वारा भजन करने से और द्वापर में भगवत्सेवा से जो फल प्राप्त होता था, वही फल कलियुग में केवल हरिनाम-कीर्तन से मिल जाता है।' श्रीमद्भागवत में ज्ञानीश्रेष्ठ श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित से बतलाया है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्तिह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

'परीक्षित ! यों तो कलियुग दोषों का खजाना ही है, परन्तु इसमें एक महान् गुण भी है। वह गुण यही है कि भगवान् श्रीकृष्ण के नामों का कीर्तन करने से सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और भगवत्प्राप्ति हो जाती है।'

युग प्रभाव के कारण अधिकांश लोगों का तो नाम प्रभाव पर विश्वास ही नहीं जमता तथा विश्वासियों में भी बहुतेरे लोग यह समझ कर कि 'नाम लेने से सभी पाप नष्ट हो जायेंगे' पाप करने में थोड़ा भी संकोच नहीं करते, परन्तु यह नितान्त भूल है। क्योंकि कहा है —

नाम्नो बलाद् यस्यहि पाप बुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हिशुद्धिः।

'नाम का सहारा लेकर जिसकी बुद्धि पाप में रत होती है, उसकी शुद्धि अनेक विध यम-यातना भोगने पर भी नहीं हो सकती।' अतः नाम के ओट में पाप करना सर्वथा निषिद्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि नाम में पाप नाश करने की जितनी शक्ति है, मनुष्य उतना पाप कर ही नहीं सकता। महान् से-महान् पाप भी नाम-कीर्तन से नष्ट हो जाता है —

सर्व धर्म बहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा।
मुच्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥
परदाररतो वापि परापकृतिकारकः।
संशुद्धो मुक्तिमाप्नोति हरेर्नामानुकीर्तनात्॥

'जो सभी धर्मों को तिलाञ्जलि दे चुका है तथा जिस का मन सभी प्रकार के पापों को करने में तल्लीन है, ऐसे पापी भी विष्णु भगवान के नामोच्चारण से निःसन्देह मुक्त हो जाते हैं। जो परायी स्त्रियों में आसक्त हैं, तथा दूसरे की बुराई ही करने वाले हैं, ऐसे पापी भी हरि-नाम-कीर्तन से शुद्ध होकर मुक्ति भागी हो जाते हैं।

नाम-प्रभाव वर्णन करना तो सूर्य को दीपक दिखाना है। तथापि मनुष्य को तो किसी भी अपने इष्ट नाम का अवलम्बन ग्रहण कर इस भवनिधि से अपना उद्धार कर ही लेना चाहिये क्योंकि पता नहीं यह दुर्लभ मनुष्ययोनि पुनः मिले या न मिले। अकारण कृपालु भगवान भी चेतावनी दे रहे हैं—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥

'जो जिह्वा (वाक् शक्ति) पाकर भी कीर्तनीय भगवान विष्णु का कीर्तन नहीं करता, वह मानो मोक्ष की सीढ़ी पर पहुंच कर भी उस पर चढ़ने के लिए पैर नहीं बढ़ा रहा है। उसके सदृश्य दुर्बुद्धि और कौन होगा ?'

चौरजार शिखामणि
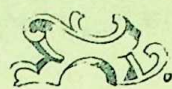
(ले० पं० श्रीगोविन्ददास 'सन्त' धर्मशास्त्री)

श्री गोपालसहस्त्रनाम नामक स्तोत्र के ३७ वें श्लोक में भगवान् के एक हजार नामों में ६७४ वां एक नाम "चौरजार शिखामणिः" यह भी लिखा है। इसका शब्दार्थ इस प्रकार है कि भगवान् चौर और जारों के शिखामणि अर्थात् शिरमोर एवं शिरताज हैं।

इस नाम को देखकर कतिपय महानुभाव यह कह बैठते हैं, कि भगवान् का यह कैसा नाम है। क्या वे चौर और जारों के शिखामणि, शिरमोर एवं शिरताज हैं ?

इसका उत्तर यह हो सकता है कि यह चराचरात्मक सम्पूर्ण जगत् भगवान से ही पैदा हुआ है अतः भगवान् ही इस जगत् के माता पिता, स्वामी, शिरमोर एवं शिरताज हैं। जब ऐसा ही है तो क्या वे चौर और जारों के शिरताज नहीं होंगे ? क्यों नहीं होंगे, अवश्य होंगे। चौर और जार भी तो भगवान की रची हुई सृष्टि में ही रहते हैं अतः भगवान् चौर और जारों के भी शिरताज हैं।

कैसा भी गन्दा नाला क्यों न हो, उसका जल बह कर यदि गङ्गाजी में चला जाता है तो वह गङ्गाजल ही कहलाता है। पवित्र अथवा अपवित्र कैसी भी वस्तु क्यों न हो अग्नि में डालने पर वह उसे जला ही देगा। गीले रूप में कैसा भी मैला अथवा साफ पदार्थ क्यों न हो, सूर्य की किरणें उसपर पड़ते ही वे उसे सुखा ही डालेंगी।

समरथ को नहिं दोष गुसाँई।
रवि, पावक, सुरसरि की नाँई॥

इसी प्रकार गुण अवगुण अथवा कैसे भी शब्द क्यों न हो भगवान् की तरफ तो जाने पर उनमें अलौकिकता आ ही जावेगी।

इतने पर भी यदि संतोष नहीं हुआ हो तो और सुनिये। अच्छा जब चौर चौरी करने के लिये जाते हैं तो वे बाहर धरे हुये सामान को, अथवा कमजोर दिवार, किंवाँड, अथवा ताले आदि को तोड़ फोड़ कर उसके भीतर धरे हुये सामान को चुरा कर ले जाते हैं। पर कहीं मजबूत पहरा, दिवार, किवांड़ और ताला आदि में रखा हुआ सामान हो तो वहां उन बेचारों की दाल नहीं गलती। लाचार होकर वापिस लौट आते हैं।

अब हमारे भगवान् किस प्रकार चौरों के शिरताज हैं, जरा इस बात को भी सुनिये।

नारायणो नाम नरो नराणां,
प्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम्॥
अनेक जन्मार्जित पाप पुञ्जं।
हरत्यशेषं स्मरणेन पुंसाम्॥

इस संसार में नारायण नामका नर सब नरों में प्रसिद्ध चौर कहा जाता है कारण कि वह मनुष्य के शरीर रूपी किले के एक परकोटे के भीतर ही नहीं अपितु रस, असृक्, अस्थि, मांस, मेधा, मज्जा और शुक्र इन सात परकोटों के भीतर हृदय रूप तिजोरी में एक जन्म के ही नहीं किन्तु अनेक जन्मों के मन द्वारा संचित किए हुए मानसिक पाप समूहों को भक्त जनों द्वारा अपने, स्मरण मात्र से चुरा लेते हैं।

इस प्रकार उनको चौर शिखामणि कहें तो भी कोई आपत्ति नहीं। बतलाइये हैं किसी संसार के चौर में ऐसी शक्ति।

अब वे जारों के शिरताज भी किस प्रकार से हैं जरा इस बात को भी सुनिए।

रमते भगवान्नित्यं रमया योग मायया।
सापि सृजति भूतानि तेन जार शिखामणिः॥

भगवान् अपनी योग माया रूप प्रकृति देवी के साथ नित्य विहार करते रहते हैं और वह भी अनन्त प्राणियों को उत्पन्न करती रहती है। इस प्रकार भगवान का यह (प्रकृति पुरुष रूप) विहार। नित्य चलता रहता है वे जरा भी नहीं थकते।

अब बतलाइए क्या किसी सांसारिक जार में ऐसी शक्ति है जो नित्य प्रति इस प्रकार निरन्तर विहार कर सके। अतः उनको जार शिखामणि कहा तो भी कोई दोष नहीं।

ये तो कवियों के पाण्डित्य पूर्ण शब्दों का चमत्कार हैं। अतः भावुक भक्त जनों को ऐसे शब्दों पर भ्रम नहीं करना चाहिए।

बोलिए-भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की जय।

श्री भगवन्नाम जप कीर्तन ही कल्याण का एकमात्र साधन है

परमपूज्यपाद १०८ श्री पीयूषमुनिजी महाराज के महत्त्वपूर्ण सदुपदेश

(लेखक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा)

अभी पिलखुवा हमारे स्थान पर भारत के सुप्रसिद्ध कीर्तनकार व कथावाचक पूज्यपाद १०८ श्री पीयूष मुनीजी महाराज (भूतपूर्व पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी) पधारे थे तभी आपने यह सदुपदेश दिये थे जो यहां पर दे रहे हैं। इसमें जो गलती रह गई हो वह हमारी ही समझनी चाहिये पूज्य पाद मुनिजी महाराज की नहीं।

१—सर्व प्रथम जगत में नाम ही पदार्थ है। सारा विश्व जो है नाम रूपात्मक है इसमें भी नाम ही प्रधान है। ब्रह्म नाम ही कहा जाता है रूप से परे है वह ब्रह्म जगत को रचने के लिये ईश्वर नाम प्राप्त कर लेता है और जगत में अपना नाम जीवात्मा रखकर इस जगत की रचना करता है। हर वस्तु हर पदार्थ नाम से ही चमकती है। नाम के बिना कोई पदार्थ ठहर नहीं सकता। इसलिये पूज्यपाद गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज ने नाम को भगवान से भी बढ़कर माना है पूज्य गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं—

कहूं कहां लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥
राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

नाम ही इस जीव के कल्याण का स्थान है। इसलिये सर्वप्रथम नाम की समस्त शास्त्रों में महिमा और आदि में मंगलाचरण के रूप में दिये हैं। ॐ अ, ऊ म इन तीन अक्षरों का मिश्रण और श्रुतियों का सार पदार्थ भी नाम ही है।

\+ + + +

२—जैसे कामी पुरुषों को सुन्दरी कामी के नाम से कामोद्रेक होता है इसलिये काम को भी स्मर कहा है किसी का नाम स्मरण करने मात्र से ही जैसे काम चमकता है इसी प्रकार से भगवान श्री शंकर एवं शक्ति, श्रीनारायण, श्री सीताराम इत्यादिक नामों से मनुष्यों के सभी ताप दूर होकर उसका कल्याण हो जाता है।

\+ + + +

३—जैसे जम्भीरी अथवा नीम्बू का नाम लेने मात्र से ही जिह्वा सरस हो जाती है ठीक इसी प्रकार से अच्छे और बुरे नाम का हर प्राणी पर प्रभाव पड़ता है। नाम को जपते हुये जड़ भील आदि भी सद्गति को प्राप्त कर गये हैं। भीलनी को केवल महामन्त्र श्रीरामनाम ही मिला था जिससे उसने वह सद्गति प्राप्त की कि जो भगवान श्रीराम को भी पीछे कर गई। क्योंकि पंपासर में भगवान श्रीराम के चरण पड़ने पर भी कृमी दूर नहीं हुये पर भीलनी के चरण स्पर्श करते ही जल अमृत के समान होगया। इसलिये श्री रामनाम की महिमा अवर्णनीय है।

\+ + + +

४—नाम केवल पारलौकिक सिद्धियों को ही देने वाला हो ऐसा नहीं है। लोक में अनेक आधि व्याधियों का नाश करने वाला भी ऋषियों ने माना है। माला के ऊपर चलता हुवा श्रीराम का नाम एवं श्री गोपालजी का नाम तद्रूप बना देता है। जिससे उस लकड़ी की बाँसुरी बजानेवाले को भी सारथ्य कर्म करना पड़ता है। यह अर्जुन के

वह नाम कौन ?

(आचार्य्य श्री० सत्य नारायणसिंहजी वर्मा)
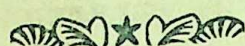
मन रे ! तू मेरी बात मान । है वही नाम, है वही नाम ॥

अवढर दानी देवाधि देव, जिस महा मंत्र का जाप करें।
काशी में मरणोन्मुख जनको, तारक दे, भव—भव ताप हरें ॥

वह नाम कौन ? श्री राम-राम । मन मान-मान यह वही नाम ॥

वह काल कूट विषका प्याला, ले नाम होठ से लगा लिया ।
पर धन्य नाम जिसके प्रभाव से, विष पियूष का काम किया ॥

था नाम कौन ? श्री राम-राम । है वही नाम, है वही नाम ॥

जो ढुंढिराज थे लम्बोदर, करिवदन वही गणराज हुए।
जिसके प्रताप से सिद्धिसदन, मंगलदाता सिरताज हुए ॥

था नाम कौन ? श्री राम-राम । मन ! 'वर्मा' रे, यह वही नाम ॥

———

उस नाम की महिमा है कि जिसको सोते समय अर्जुन प्रतिश्वास गोपाल गोपाल जपता रहता था ।

\+ + + +

५—महारानी श्री द्रौपदीजी को जब कोई रूप भूप, राजा बचाने वाला नहीं था उस समय आर्त-स्वर में 'गोविन्द द्वारिकावासिन' आधीना होकर श्री महारानीजी ने पुकारा तब उस नाम की झंकार झंकृत होती हुई संसार की दीवारों से टकरा कर आकाश में बिखरी वाणी से मिश्रित होती हुई द्वारिका में पहुँच कर भगवान श्रीकृष्ण के कानों में करुणा की प्रतिध्वनि करती हुई उन्हें चैन से न बैठने देकर नंगे पाँवों हस्तिनापुर में दौड़ा कर लाने वाली नाम की ही अपार शक्ति थी। इसलिये नाम की महिमा को कदापि लिखने लगे जैसे पुष्पदन्त ने महिमन स्तोत्र में का है कि समुद की तो स्याही हो और पृथ्वी का लिखने में पटा हो और कल्पद्रुम की लेखनी बनाई जाय और साक्षात् श्री सरस्वतीजी लिखने बैठे तो भी हे शंकर तुम्हारे नाम की महिमा लिखने में वह सारे साधन तुच्छ हो जाते हैं नाम की बड़ी अद्भुत महिमा है । इसलिये सब श्री भगवन्नाम जप कीर्तन कर अपना मनुष्य जन्म सफल करना चाहिये । बोलो—

राजा राम राम राम, राजा राम राम राम
राधेश्याम श्याम श्याम, राधेश्याम श्याम श्याम

कर्मयोगी की मानसिक स्थिति

[लेखक—पं० श्रीरामजी शर्मा आचार्य सम्पादक अखण्ड ज्योति]

निस्पृह होकर अनासक्त मन से संसार के कल्याण के लिये कर्म करते रहना कर्मयोगी का लक्षण है। ऐसे कर्मयोगी दो प्रकार के होते हैं एक तो वह जो गृही होकर कर्मयोग की साधना करते हैं दूसरे वे जो गृह त्याग कर कर्मयोग की साधना करते हैं। घर में रहो, चाहे घर छोड़ दो, संसार के कल्याण के लिये कर्म अवश्य करते रहना चाहिये। भगवान के लिये कर्म, योग कल्याण के लिये कर्म यह ध्येय रखना और इस पर चलना कर्मयोगी का यही साधन है।

गृही एवं गृह त्यागी योगी के दो रूप होते हैं परन्तु इनमें कोई अन्तर नहीं है। कर्मयोगी को लोक कल्याण के लिये जब गृह त्याग की आवश्यकता होती है तब वह गृह त्यागी हो जाता है और जब गृहस्थ जीवन में रहकर लोक कल्याण की अधिक सम्भावना रहती है तब वह गृही होकर रहता है। गृही होना और गृह त्यागना उसकी लोक सेवा या लोक कल्याण के अंग होते हैं। मुख्य उद्देश्य तो लोक कल्याण ही होता है। फिर भी गृह त्याग की अपेक्षा लोक कल्याण साधन में गृहस्थ होने का अधिक महत्व है।

गृहस्थ का त्याग करने पर मनुष्य आम लोगों की श्रेणी से ऊपर उठ जाता है। जिसके कारण लोग उसे अपने समाज का न समझ कर विजातीय ही समझते हैं। इसलिये जन समाज की जो साधारण समस्यायें होती हैं वह उन्हें सक्रिय रूप से सुलझाने में कोई आदर्श उपस्थित नहीं करता। कर्मयोग का जीवन तो आदर्श जीवन होता है और लोक कल्याण के लिये उसे ऐसा जीवन बनाने और बिताने के लिये उसे इस प्रकार के जीवन को अंगीकार करना पड़ता है। इसलिये गृह त्याग की अपेक्षा जो गृहस्थ होकर कर्मयोग का पालन करते हैं वे आदर्श कर्मयोगी होते हैं। गृहस्थ जीवन में रहकर व्यक्ति जीवन के संघर्ष में प्रत्यक्ष भाग लेता है और उन संघर्षों के प्रभाव से ऊपर उठकर कर्मयोग की प्रतिष्ठा करता है। गृहत्यागी संघर्ष के सम्पर्क में नहीं आता इसलिये उससे ऊपर उठा हुआ दीखता है। सम्पर्क में आने पर जो अविचलित रहे वही संघर्ष में आये हुये व्यक्तियों को अविचलित बनाने में अपना आदर्श उपस्थित कर सकता है और आम लोगों पर उसका प्रभाव भी पड़ सकता है।

कर्मयोगी अपनी जरा सी गलती का भी प्रायश्चित करता है। गलती को छिपाने की सर्वसाधारण की सी उसकी आदत नहीं होती। जब वह अपनी गलती को सुधारने की प्रवृत्ति रखता है तब उसे दूसरे की गलती सहन कैसे हो सकती है। अतः वह दूसरों से भी उसका प्रायश्चित कराता है। ऐसे प्रायश्चित कठोर भी होते हैं परन्तु मन पर उनके संस्कार न पड़ें इसलिये कठोरता का भी व्यवहार करता दिखाई देता हुआ अन्तर में अत्यन्त कोमल वृत्ति का होता है। पड़ने वाले संस्कारों की उपेक्षा न कर वह अपनी सहिष्णुता का परिचय देता है।

अपने साथ किये हुये व्यक्तियों के असद् व्यवहार को स्मरण रखने का उसका स्वभाव नहीं होता है, क्योंकि उस व्यक्ति को तात्त्विक दृष्टि मिली रहने से वह उस व्यक्ति के प्रति रोष धारण नहीं करता, उसके सद्व्यवहार में वह उसकी मानसिक स्थिति और समाजगत स्थिति का दर्शन

करके वह उससे उसे ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है।

इसी प्रकार पापी के प्रति उसके हृदय में घृणा का समावेश नहीं रहता। घृणा के स्थान को प्रेम घेरे रहता है परन्तु पाप के प्रति वह सतत जागरूक रहता है और समूलोच्छेदन के लिये उसकी तत्परता बराबर क्रियाशील रहती है। अपराधी और पापी होना व्यक्तियों का स्वभाव नहीं होता बल्कि समाजगत स्थितियां मानव को नचाया करती है। और उन्हीं कारण वह ऐसे कार्य कर बैठता है। जिनको उसे नहीं करना चाहिये। यद्यपि आरम्भ में उसके न करने के सम्बन्ध में उसमें क्षोभ रहती है परन्तु स्थितियों से मुक्ति न पाने के कारण धीरे २ क्षोभ कम होता जाता है तथा पाप और अपराध उसमें घर करते जाते हैं। कर्मयोगी उसके वास्तिवक कारण से अवगत रहता है। इसलिये उसके मन में किन्हीं ऐसी प्रवृत्तियों का उदय नहीं होता जो तामसिक या राजसिक हों।

क्रोध आदि कुछ वृत्तियां तो कर्मयोगी में दिखाई देती है वे तो सिर्फ ऊपर ही ऊपर रहती है, उनका उसके अन्तर पर कोई प्रभाव नहीं रहता वे वृत्तियां समाज-संस्कार के लिये आवश्यक होती हैं। समाजगत अपराध तथा पापों के संस्कारों को हटाने के लिये उन सब की आवश्यकता होती है।

संसार के दुख द्वन्दों के प्रभाव से वह व्यक्ति मुक्त रहता है, यद्यपि सांसारिक जनों की तरह दुख. सुख, चिन्ता, विपत्तियां उसे घेरे रहती हैं, परन्तु मन और भावनाओं को ऊपर रखने के कारण वे इनके प्रभाव से चंचल नहीं हो पाती अचंचल बनने का साधना ही वास्तव में कर्म योग का साधन है।

हठ योग आदि योगों का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं होता। ये योग संयमी और सुपुष्ठ बनाते हैं, संयमी जीवन की प्रत्येक प्रकार के योग की आवश्यकता होती है! उसी प्रकार हठ योग के साधनों को समझना चाहिये।

तात्पर्य यही है कि जो व्यक्ति संघर्ष से घबड़ाता नहीं, बल्कि संघर्षकार अपने को सहिष्णु एवं निष्पाप बनाने की तैयारी करता है तो वह निश्चय ही योगी है। यह योग की वृत्ति यदि एकांगी है व्यक्तिगत शक्ति तक सीमित है, व्यक्ति से पृथक समाज की ओर उसका ध्यान नहीं तो वह योग की पूर्ण अवस्था नहीं है। योग की पूर्णावस्था तो कर्म योग में ही प्रतिष्ठित है।

दानदाताओं को सूचना

सर्व सज्जनों को सूचना दी जाती है कि श्री भगवान-भजनाश्रम को जो दान मनीआर्डर बीमा द्वारा प्राप्त होता है उसकी रसीद उसी दिन डाक द्वारा दाता महानुभाव की सेवा में भेज दी जाती है, अगर किन्हीं दाता महानुभाव को अपने दान की छपी हुई रसीद श्री भगवान भजनाश्रम की प्राप्त नहीं हुई है तो उन्हें तुरन्त सूचना देनी चाहिये एवं भविष्य में कभी किन्हीं दान दाता को अपने दान की रक़म की रसीद प्राप्त नहीं हो तो तुरन्त हमें सूचना देनी चाहिये, इसमें बिल्कुल विलम्ब नहीं करना चाहिये।

कृपया पत्र आदि एवं मनीआर्डर बीमा निम्न पते पर भेजने की कृपा करें

मंत्री श्री भगवान-भजनाश्रम मु. पो. बृन्दावन (मथुरा)

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में पूर्व आचार्य श्री महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्धसन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्च के लगते हैं।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

संप्रदाय शुकदेव मुनि चरण दास गुरु द्वार। परम धर्म मत भागवत भक्ति अनन्य विचार

* श्रीहरि नाम माला *

[महात्मा श्री श्यामचरणदासजी कृत]

कहा, कहि तोहिं पुकारु हे ! करतार हमारे।
नाम अनन्त अन्त नहीं जाको, बहुगुण रूप तिहारे ॥
अजर, अमर, अविगत, अविनाशी, अलख, निरंजन, स्वामी।
पुरुष-पुरातन, पुरुषोत्तम, प्रभु, पूरण-अन्तर्यामी, ॥
कृष्ण, कन्हैया, विष्णु, नरायण, ज्योतिरूप, विधाता,।
अपरम्पार, मुकुन्द, मुरारी, दीनबन्धु, व्रजनाथा, ॥
यादवपति, जगदीश, चतुर्भुज, निर्भय, सर्वप्रकाशी,।
पारब्रह्म, प्राणन के दाता, सबठां घट घट बाशी, ॥
निर्विकार, परमेश्वर, गिरिधर, माधव, गोविन्द प्यारा,।
कमलनयन, केशव, मधुसूदन, सबों में, सब से न्यारा ॥
हृषीकेश, मुरलीधर, मोहन, ॐ, अखिल अयोनी,।
भगवत, वासुदेव, भगवाना, ज्ञानी, ध्यानी, मौनी, ॥
दीनानाथ, गोपाल, हरि, हर, गरुड़ध्वज, घनश्यामा,।
भक्ति वछल, अरु देवकीनन्दन, करता सब विधिकामा. ॥
आदिप्रधान, माधुरी मूरति, धरणीधर, बलवीरा,।
नन्दनदन, अरु यशुदानन्दन, सुन्दर श्याम शरीरा, ॥
परशुराम, नरसिंह, विश्वंभर, अचल, अखण्ड, अरूपी।
ईश, अगोचर, और जगतगुरु, परमानन्द, बहुरुपी, ॥
करुणामय, कल्याण, अनन्ता, दयासिन्धु, बनवारी,।
धारण शंखचक्र, रुकमणिपति, आनन्दकन्द, बिहारी, ॥
परम दयाल, मनोहर, नरहरि, कृपानिधि, फलदाता,।
कंसनिकन्दन, रावणगंजन, जगपति, लक्ष्मीनाथा, ॥
जगन्नाथ, अरु बद्रीनाथा, निर्गुण, सर्गुणधारी,।
दामोदर, रघुवर, सीतापति, रामा, कुंजबिहारी, ॥
दुष्टदलन, सन्तन के रक्षक, सकल सृष्टि के साईं,।
दुःखहरण के कौतुक अनगिन शेष पार नहिं पाईं ॥
सौ अरु आठ नाम की माला जो नर मुख उच्चारै।
अपने कुल की सारी पीढ़ी इक अरु सौ को तारै ॥
गुरु शुकदेव मंत्र निज दीन्हा रामनाम ततसारा।
चरणदास निश्चय से जपकर उतरो भवजलपारा ॥

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित व
...गोपाल मानसिंह का संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान, भजनाश्रम वृन्दावन (मथुरा) से प्रका...

1982
अंक ५

विषय सूची

बैसाख संवत् २००६

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जा[ते] हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस [में] लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अं[क] भेजा जासकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवा[बी] कार्ड या टिकट भेजने चाहियें पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लि[ख] कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक:- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओं से १॥≡) एक प्रति का

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन मई सन् १९५२ | अंक ५

—: दर्शन की भीख :—

हे मुरलीधर घनश्याम बदन क्यों अपना आप छिपाते हो।
इस बिके हुए दिल को माधव क्यों बार-बार अजमाते हो ॥१॥
है इसमें ताब नहीं बाकी, अब और कहीं भी जाने की।
इस मुरझाये टूटे दिलको क्यों बार-बार ठुकराते हो ॥२॥
है प्रेम भरा या पाप भरा, पावन या पतित, पतित पावन।
ले लिया मोल जब एक बार क्यों अपनाते सकुचाते हो ॥३॥
मैं 'भिक्षु' आप दाता मेरे, खाली न द्वार से जाऊंगा।
दर्शन की भीख मुझे देदो भगवन क्यों देर लगाते हो ॥४॥

बिखरे मोती
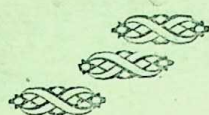
(लेखक—एक 'हँस")
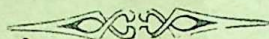
(१) यह संसार एक अजायबघर है। तुम इसे देखकर ललचाना मत। यहां की सारी वस्तुएँ सरकारी हैं तुम केवल उनके द्रष्टा बने रहो।

(२) यदि मन ललचावे तो उसकी बात मत सुनो। यह मन तो तुम्हारा नौकर है। उसे तुम अपना स्वामी मत समझो।

(३) तुम ऐसा मत समझो कि मेरे सांसारिक सम्बन्धी मुझ से बहुत प्रेम करते हैं यह प्रेम तो बरसाती नाले के समान है, जो कभी तो स्वार्थ के कारण उमड़ने लगता है और कभी ढूंढे भी नहीं मिलता। फिर तो प्रेम रूप जल की जगह दुःख के समान बालू ही रह जाता है।

(४) यदि कहो कि वह आनन्द के समान जल कहाँ है, तो याद रक्खो, वह सुख का स्रोत तुम्हारे अन्तःकरण में ही बह रहा है। यदि तुम मोह को त्याग कर उस स्रोत की खोज करोगे तो सदा के लिए सुखी हो जाओगे।

(५) यदि शान्ति चाहते हो तो चार घण्टे मौन रह कर परमात्मा का चिन्तन किया करो।

(६) किसी प्रसंग में कोई व्यर्थ बात कहने से पीछे पछताना पड़ता है इसलिये सोच विचार कर बोलो।

(७) ऐसी बोली बोलने का अभ्यास करो जिसमें प्रेम की वृद्धि हो और द्वेष की अग्नि शान्त हो जाय।

(८) यदि तुम दूसरों के दोष देखने छोड़ दोगे तो अवश्य तुम्हारा अन्तःकरण स्वच्छ हो जायगा।

(९) तुम अपने दोष और दूसरों के गुण देखने वाले बन जाओ तो फिर भगवान के मिलने में देरी न लगेगी।

(१०) जब अपनी बुराईयों की ओर दृष्टि जाने लगती है तो मन का मैल साफ होने लगता है। फिर जैसे-जैसे मन का मैल साफ होने लगता है वैसे-वैसे ही अपना रूप दिखाई देने लगता है।

(११) लोग भले ही तुम्हें मूर्ख समझें तथापि तुम बिना पूछे हर्गिज किसी को कोई सलाह मत दो। हां, यदि तुम से कोई पूछे तो अवश्य जैसा जैसा तुम उचित समझो, अपना विचार प्रकट कर दो। सम्भव है, उससे किसी का कुछ हित हो जाय।

(१२) जीवन नाना प्रकार की इच्छाओं के कारण ही जन्म मरण के चक्कर में पड़ गया है। यदि मन सांसारिक भोगों की ओर से मर जायगा तो जन्म मरण का चक्कर भी समाप्त हो जायगा। यदि इन भोगों की ओर से चित ऊब जाय और परम सुख की इच्छा हो जाय तो फिर कल्याण होने में देरी नहीं लगती।

(१३) जब तराजू के दोनों पलड़े बराबर आ जाते हैं तो तोल का काम समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जो पुरुष व्यवहार और परमार्थ को बराबर निभाता है उसका काम समाप्त हो जाता है। लोक में ठीक तौलने वाला सच्चा आदमी कहा जाता है और सुखी भी रहता है। उसी प्रकार परमार्थ और व्यवहार को यथावत निभाने वाला सत्पुरुष कहलाता है एवं वह स्वयं सुखी रहता है और दूसरों को भी सुख पहुँचाता है।

(१४) जब सोना तौलते हैं तो तराजू के बीच के काँटे पर दृष्टि जमाते हैं। इसी प्रकार यदि जिज्ञासु समस्त लौकिक एवं पारलौकिक कर्त्तव्यों

की पूर्ति करते समय अपनी मनोवृत्ति को एकाग्र रखें तो उसे आत्म ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(१५) यदि तुम पवित्र और सुखी जीवन बिताना चाहते हो तो आज से सारे व्यसनों को छोड़ कर केवल भगवान् की शरण लो।

(१६) भगवान् के सभी नाम कल्याणकारी हैं, किन्तु आवश्यकता है उनका प्रेम और आदर से जप करने की।

(१७) यदि पुरुष मन सहित इन्द्रियों को भोगों से हटाकर सब प्रकार की इच्छाएँ त्याग कर स्वभावतः प्राप्त भोगों को आसक्ति रहित होकर भोगे तो उसे संयमी ही कहा जायगा।

(१८) यदि गर्मी, सर्दी, हानि-लाभ, जीवन-मरण इन सब द्वन्द्वों में समान भाव रहने लगे तो संयमी की पूर्णता समझनी चाहिये।

(१९) तुम्हें कितने ही कष्टों का सामना करना पड़े, किन्तु यदि तुम उन्हें शान्ति चित से सहन कर लेते हो तो तुम संतोष के समान धन प्राप्त कर सकते हो।

(२०) मौन रहने से बड़ा लाभ है। ऐसा करने से मनुष्य बहुत सी बुराइयों से बच जाता है। मौन के साथ भगवन्नाम जपने से बड़ा हित हो सकता है।

(२१) सम, सन्तोष, विचार और सत्संग-ये चारों मोक्ष के द्वारपाल हैं। यदि इनमें से किसी एक का भी सहारा ले लिया जाय तो धीरे-धीरे चारों से ही मेल हो जायगा। फिर मुक्ति होने में कुछ भी विलम्ब न लगेगा।

(२२) उच्च अधिकारियों का आदेश पाते ही वीर सैनिकों को कर्त्तव्य पर तुल जाना चाहिये। कारण पूछने पर उत्तर प्रत्युत्तकारी सिपाही बहुधा पराजय की परिखा में पड़ता है। यह अभ्यास राष्ट्र और व्यक्तित्व विनाशक समझा जाता है। दूरदर्शी पुरुष अनुशासन में विलम्ब नहीं सह सकता।

(२३) दीपक की ज्योति को देखकर पतंग मोहित हो जाता है। हजारों पतंग दीपक की लौ में पड़ कर जल रहे हैं, इस बात को वह देखता है। परन्तु रुप की आसक्ति उसे दीपक की तरफ जबर-दस्ती खैंच लेती है, बेचारा दीपक में जल कर प्राण खो देता है।

(२४) मन का प्रभाव शरीर पर होता है मन में क्लेश होने से शरीर दुर्बल हो जाता है। मन और शरीर का बड़ा गहन सम्बन्ध है। जैसे भद्दी शक्ल का मनुष्य दूसरों के अन्दर दया और प्रेम नहीं उत्पन्न कर सकता ऐसे ही मलिन मन का मनुष्य भी अन्य मनुष्यों में दया और प्रेम नहीं पैदा कर सकता।

(२५) उदार आशय और गम्भीर विचार वाले महात्मा पुरुषों का क्या कहना है, उनके लिये तो पृथ्वी ही कुटुम्ब है। सबके प्रति उनका समान व्यवहार होता है। उनकी दृष्टि में सभी तुल्य हैं। उनकी सम्पत्ति, उनकी विशेष विभूति, उनका अमृत मय ज्ञानोपदेश सबके लिये होता है। परोपकार प्रियता सन्तों का निसर्ग सिद्ध धर्म है।

(२६) अगर तुम में अपनी भूल स्वीकार करने की शक्ति होगी तो लोग खुशी खुशी तुम्हारे सद्गुणों की दाद देंगे।

जय गौर (प्रार्थना)

(रचियता आचार्य श्री मदनमोहनजी गोस्वामी वैष्णव दर्शन तीर्थ, भागवत रत्न)

जय गौर हरे जय गौर हरे जय जय जय जय श्री गौर हरे ॥ टेक ॥

कीर्तन कारी नदिया बिहारी प्रेम प्रदाता गौर हरे। भक्ति अपार परम उदारा अति सुकुमारा गौर हरे ॥१॥
रूप रसीला नयन विशाला परम कृपाला गौर हरे। दीन दयाला पतितन पाला करत निहाला गौर हरे ॥२॥
सब सुख सागर सब गुण आगर रूप उजागर गौर हरे। शान्ति निशाकर प्रेम प्रभाकर शील सुधाकर गौर हरे ॥३॥
हम हैं पापी अति अनुतापी पार लगाओ गौर हरे। पतितन पर तुम्हरी करुणा है देर न लाओ गौर हरे ॥४॥

॥ श्री राधेकृष्णाय नमः ॥

जगत गुरु महात्मा स्वामी चरणदासजी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र

(श्री प्रहलाददासजी भार्गव, अजमेर)

जगत गुरु महात्मा स्वामी चरणदासजी महाराज का जन्म सम्वत् १७६० भादों सुदी तीज मंगलवार को डहरा (अलवर रियासत) में हुआ था। बचपन में आपको रंजीत कहा करते थे। आपके पिताजी का नाम मुरलीधर व आपकी माता का नाम कुन्जों था। आपका जन्म भार्गव वंश में हुआ था। बचपन से ही आपको परमात्मा से अत्यन्त स्नेह था और निष्काम प्रेमी साधु महात्माओं के सत्संग का प्रेम था। सत्संग में यह सुध पाई कि बगैर कामिल गुरु किये हुये परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते हैं। इस कारण आपने २-३ माह कामिल गुरु की तलाश की। जब पूर्ण गुरु शुक्रतार पर व्यास पुत्र सुखदेव मुनि मिले तब आपने उनसे योग्य, ज्ञान भक्ति अच्छी तरह से सीखा। शुक्रतार से रवाना होकर आप देहली आये। वहां गुफा बनाकर १४ वर्ष तक अष्टांग योग किया। ब्रह्म ज्ञान का साधन किया और भक्ति मार्ग धारण किया। संसार में ईश्वर भक्ति मार्ग को खूब फैलाया। इसके अतिरिक्त आप ब्रह्मचारी भी थे। आप के पिताजी अलवर रियासत में २ गांव के माफीदार थे। आपने हजारों को योग व ज्ञान सिखाया और हजारों को ईश्वर का सच्चा प्रेमी भक्त बनाया। आपने चारों धाम, सातों पुरी जाकर जगह २ पर परमात्मा की भक्ति का प्रचार अपने शिष्यों द्वारा फैलाया। आपने अपनी रुहानी ताकत से लाखों को फायदा पहुंचाया आपका जनता के साथ बहुत प्रेम का बर्ताव था। आपकी बनाई हुई एक वाणी भक्तिसागर अब भी मौजूद है जिसमें परमात्मा के मिलने का मार्ग ज्ञान, योग व-भक्ति के नियम अच्छी तरह से अंकित किये हैं जिससे बहुत से आदमी अब भी लाभ उठाते हैं।

जैसा कि निम्नलिखित कविता से जाहिर हैः—

दयावन्त दाता उपकारी, जिनके सम अस्तुत और गारी।
ना कोई मित्ता ना कोई वैरी, तिनके ना कुछ मेरी तेरी॥
भूखा आवे भोजन खावें, नागे को वस्त्र पहिनावें।
और सभी से मीठा बोलें, जिज्ञासी सो चर्चा खोलें॥
जो कोई आवे इच्छाधारी, कहे कि मेरी कन्या क्वारी।
वाको गुप्त द्रव्य दे टारें, और दुखियन को दुख निवारें॥
जो जैसी आसा कर आवे, सो निरास कबहू नहीं जावे।
बहुत लोग दर्शन को आवें, दुख लावें सुख ले घर जावें॥
बहुतक रोगी इनपे आये, कही कि जावो रोग नसाये।
जो कोई बिना चाकरी आयो, देई चाकरी बचन सुनायो॥
बन्द पड़े का मानूष आया, बचन कहा जा ताहि छुड़ाया।
सब दुख मेटन सब सुख दायक, चरणदास गुरु सब कुछ लायक॥
जो कोई हर के प्रेमी आवें, कृपा करके तपत बुझावें।
ज्ञान भक्ति और योग की, जिसको होवे चाह।
प्यार करें, मीठे बचन, तिन्हें बतावें राह।
आवे जो दर्शन कोई काजे, दर्शन करते दुविधा भाजें।
ऐसे ही रंजीत गुसाईं, जिनकी महिमा कही न जाई।

महात्मास्वामी चरणदासजी महाराज के जीवन चरित्र के हालात बहुत ज्यादा है जिसके बयान करने के लिये अर्सा चाहिये इसलिये थोड़े से हालात आप सज्जनों के सामने पेश किये गये।

(कृष्णदेव)

एक परम विरक्त परमपूज्य उदासीन संत के सदुपदेश

[नाम प्रकाशित करने की आज्ञा नहीं]

(प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा)

अभी कुछ दिन हुये तब पिलखुवा हमारे स्थान पर एक परम विरक्त उदासीन संत पधारे थे जो बहुत उच्च कोटिके महात्मा थे। हमने यह उपदेश लिख लिये थे जो पाठकों के सामने रख रहे हैं! आशा है पाठक इनसे लाभ उठायेंगे।

(१) इस घोर कलिकालमें एक मात्र श्री भगवन्नाम ही नौका है जिस पर चढ़कर हम इस भवसागरसे सहज ही तर सकते हैं। जो श्री भगवन्नाम के महत्व को नहीं मानते हैं उन्हें क्या कहा जाय ? पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराज ने लिखा है-

नाम प्रताप प्रगट कलिमाहिं ॥

उन्होंने अन्तरशः अनुभव किया है। एक स्वर से भारत के सभी पूज्यसंतों ने, पूज्यमहात्माओं ने भक्तों ने घोषणा करदी है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौनास्तेव नास्तेव नास्तेव गतिरन्यथा ॥

फिर भी जो श्री भगवन्नाम नहीं लेते, श्री भगवन्नाम कीर्तन नहीं करते, श्री भगवन्नाम जप नहीं करते उनसे बढ़कर फिर और कौन नीच होगा ?

\+ + + +

(२) आहार शुद्धि के द्वारा ही विचार की शुद्धि होती है इसको सभी महानुभावों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। आज सर्वसाधारण में इसकी मर्यादा नहीं दिखलाई पड़ती है। अबतो हिन्दू होटल का ऐसा सार्वजनिक प्रयोग हो रहा है कि जिसमें द्विजातियों से लेकर अन्त्यज तक का प्रवेश सहज सुलभ हो गया है किन्तु यह बहुत बड़ा धार्मिक और नैतिक पतन है। हमारे यहाँ सदा से ही द्विजातियों का यह नियम रहा है कि एक दूसरे का छुवा हुवा भी ग्रहण नहीं करते थे क्या यह घृणा का प्रचारक था ? नहीं कदापि भी नहीं। हमारे यहाँ अन्न दोष, क्रिया दोष, स्थान दोष, संसर्ग दोष, माना गया है उसमें संरक्षण का यह प्रयोग मात्र था। कहावतभी है कि 'जैसा खावे अन्न, वैसा बने मन' और 'जैसा पीवे पानी वैसी बोले बानी' क्या इस लोकोक्ति का कुछ भी अर्थ नहीं है! महाभारत में अन्न दोष की कथा प्रसिद्ध है। आज जो सर्वत्र वर्ण विपर्य दिखलाई पड़ रहा है इसका मूल कारण अन्नदोष है। एक सात्विक उच्चवर्ण के व्यक्ति के हाथ से भोजन ग्रहण करने में जो मानसिक स्थिति रहती है क्या वही निम्न कोटि के मुसलमान और अन्त्यज आदि के हाथों से खाने पर मनकी स्थिति रह सकती है ? आज तो सर्वत्रभ्रष्टाचार का बोल बाला है इसका मूल कारण है आचार का अभाव। जिसे हमारे यहाँ 'आचारः प्रथमोधर्मः' कहा गया था। देश, काल पात्र की परिस्थिति से ऊपर उठकर जो अपने स्वधर्म का संरक्षण करता है वही सार्वभौम महावर्त कहलाता है। आज एकता के नाम पर इस अनेकता का सर्वत्र नंगा नाच हो रहा है। एकता आहार से नहीं होती बल्कि विचार से होती है। हमारे ही शरीरमें पंच विषय पंच प्रकार से उपयोगी हैं तो इस विश्व ब्रह्माण्ड के अन्दर विविध विषय क्यों न उपयोगी होगा ? यही तो 'यतपिण्डेतत् ब्रह्माण्डे' का समन्वय सिद्धान्त है। हम एक व्यक्तिके द्वारा ही समष्टि जगत को समझ सकते हैं। क्या शरीरके दसों इन्द्रियों को एक रूप में देदेने से शरीर की यात्रा चल सकती है ? इसी तरह चतुष्टय वर्णाश्रमधर्म

को एक कर देने से क्या विश्व का कल्याण सम्भव है ? हमारे लिये तो 'महाजनो ये न गतः सपन्था' ही प्रशस्त पथ है । आज हम विदेशी और विधर्मियों की नकल करके भ्रष्टाचारी बन रहे हैं और जहाँ हम जल भर कर अपने हाथ से पीते थे वहाँ दूसरे का झूँठा वर्तन अपने मुँह से लगा रहे हैं और यह हो रहा है सब एकता के नाम पर। आज की पाशविकता मानवता को कुचलने के लिये कटिबद्ध है। जहाँ हमें गोभक्षक मुसलमानों से जरा जरा सी बातों में परहेज रखना आवश्यक था वहीं आज बेटी रोटी एक करने पर तुले हुये हैं इसका जो दुष्परिणाम हो रहा है वह आज हाथों हाथ मिल रहा है। कहा गया है कि 'ज्यों ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता ही गया' यह सब हिन्दु मुसलिम एकता के लिये किया जा रहा है किन्तु फूट का विस्फोट सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। जब आज भाई-भाई में, घर-घरमें फूट दिखलाई पड़ती है फिर हिन्दु मुसलमानों में बेटी रोटी एक कर देने से एकता स्थापित हो जायगी यह केवल दुराशामात्र है। जो ऐसा कर चुके हैं या कर रहे हैं, या जो करने के लिये कटिबद्ध हैं वह जरा हृदय पर हाथ रखकर सोचें क्या उनका पथ निर्भ्रान्त है ? क्या उनका यह पथ निरंकुश है ?

\+ \+ \+ ÷

(३) यह भारतवर्ष भगवान की अवतार भूमि है। भगवानने यहाँ पर विविध रूपों में २४ अवतार धारण किये हैं। साथ ही यह तपोभूमि भी है यहां के पुण्य क्षेत्र श्री नैमिषारण्य में ८८ हज़ार सिद्ध महात्माओं ने तपश्चर्या की है। ऐसी पुण्य स्थली में वे ही लोग नित्य निवास कर सकते हैं और सुख से जीवन यापन कर सकते हैं कि जो श्री भगवद्भक्त हों, और तपोनिष्ठ हों चाहे वह भले ही सद्गृहस्थ हों या सद्संत हों ? इस पूज्य पद्धति के विरुद्ध जो किञ्चित भी अनधिकार चेष्टा करेगा वह अक्षम्य अपराधी मान्य होगा। क्या आज रावण, कंस, हिरण्यकशिपु वेण का कहीं भी अस्तित्व दिखलाई पड़ता है किन्तु आज विभीषण, प्रह्लाद, ध्रुव के चारु चरित्र से चतुर्दिक दिग्दिगान्त आलोकित होरहा है। यह भारतीय सिद्धान्त सदा से महामान्य रहा है और अन्ततः मान्य रहेगा। चाहे आज जड़वाद के जड़ता से इसे नहीं महत्व दें किन्तु इस में हमारी ही क्षति है और हमारा ही पतन है और हमारा ही सर्वनाश है।

× × × ×

(४) भारतवर्ष धर्म-प्राण देश है। जो धर्म की खिल्ली उड़ाते हुये धर्म ध्वजी पुरुषों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं वह सावधान हो जांय और भगवान श्री मनु की इस अमरवाणी को न भूलें।

धर्मएव हतोहन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

और धर्म प्रिय बन्धुवों से तो यही कहूँगा कि सदा सर्वदा और सर्वथा 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' वह इस भगवद् वाणी की पुनरावृत्ति करते हुये प्राण प्रण से धर्म की बलि वेदी पर अपने आपको उत्सर्ग करदें यही उनका मानवधर्म है और ईश्वरीय आदेश का आज्ञा पालन है और ऋषि ऋण की मुक्ति का महामंत्र है।

—: कीर्त्तन :—

कैसा सुन्दर प्यारा नाम, हरे कृष्ण हरे राम। कैसा सुन्दर प्यारा नाम, राधे कृष्ण सीताराम।
कैसा सुन्दर प्यारा नाम, निताई गौर राधेश्याम। कैसा सुन्दर प्यारा नाम, राधा मोहन रसमय धाम।
कैसा सुन्दर प्यारा नाम, पतित पावन श्यामा श्याम। कैसा सुन्दर प्यारा नाम, बाँके बिहारी हैं घनश्याम।
कैसा सुन्दर प्यारा नाम, गोपिका वल्लभ पूरण काम। कैसा सुन्दर प्यारा नाम, कृष्ण से गौर भये गुणधाम।

दिव्य धाम के पथपर

(ले०—अवधकिशोर श्रीवैष्णव, वेदान्ताल, साहित्य-धुरीण)

संसार की गति और नश्वरता इसकी दुःख परायणता सिद्ध कर देती है। फिर भी अज्ञानी मनुष्य हम आगे बढ़ें और हम सबसे आगे बढ़ जाय ऐसी लौकिक उन्नति की अभिलाषा में अजरामरवत् तन-मन से लग जाते हैं, यही नहीं तुच्छ भौतिक वासना की पूर्ति के लिये जघन्य से जघन्य नीचातिनीच कर्म करके मनुष्यत्व को कलङ्कित करने में भी नहीं हिचकते, तथा यमयातना भोगने का भय भूलकर मनमानी कर लेने में ही कृतार्थ समझते हैं। ऐसे ही लोगों की क्षणिक सफलता पर गर्व करते देखकर श्रुति भगवति ने कहा है कि—

> अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं,
> कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
> यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्ते-
> नातुराः क्षीण लोकाश्च्यवन्ते ॥
> (मुण्डक १-२-९)

"अविद्या (अज्ञान) में भली भांति फंसे हुए लोग संसार में हम सुखी हैं, हम कृतार्थ हैं ऐसा बाल बुद्धि (मंद बुद्धि) वाले समझते हैं, यथार्थतः वे रहते हैं परम दुखी वे परन्तु भोगों का अन्तिम दुखद परिणाम न समझकर मोहादिक रोग द्वेष में फंसकर आतुर मनुष्य अन्त में नीचे गिर जाते हैं।" प्रभु कृपा से जो इस तत्त्व को समझ जाते वे तत्त्व ज्ञानी प्रभु के प्यारे भक्त सांसारिक मोह तोड़कर प्रभु के दिव्य धाम का पुण्यतम मार्ग पकड़ लेते हैं और दुःख से तर जाते हैं। "येनाहं नामृतीस्यां किमहं तेन कुर्याम्" "जिसको पाकर हम (अमर) कृतार्थ न हो जायं उसको लेकर हम क्या करें ?" ऐसी सद्भावना वाले महा भागवत श्री सद्गुरुदेव के शरण जाकर उस अमर तत्त्व का उपदेश ग्रहण करते हैं। श्री गुरुदेव की कृपा द्वारा प्राप्त तप (हरि-गुरु-सन्त सेवा की दृढ प्रीति) तथा श्रद्धा (प्रभु के नाम-रूप-लीला-धाम में अविचल भक्ति) का अवलम्ब ग्रहण कर वे सूर्यद्वार का भेदन करते हुए अमृत धाम के निवासी बन जाते हैं।

> तपः श्रद्धे ये त्युपवसन्त्यरण्ये,
> शान्ता विद्वांसो भैक्षाचर्यां चरन्तः।
> सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति,
> यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥
> (मुण्डक. १-२-११)

"तप और श्रद्धा, (सेवा और प्रेम) धन प्राप्त कर शान्त चित्त विद्वान् एकान्त देश में वस कर भिक्षा वृत्ति पर निर्वाह कर लेता है, लौकिक दृष्टि से दुःख भोगने वाला वह प्रभु का प्यारा अन्तमें विशुद्धात्मा बनकर उस अमर धाम का आनन्द लूटता है जहां अव्ययात्मा पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु सदैव विराजते हैं।" मुमुक्षुओं की अभिलाषा अमर होती है इसलिये वे अमोघ संकल्प सत्य संकल्प कहलाते हैं, यदि कुछ कामना करने का अभ्यास नहीं छूटता है तो शुभ सङ्कल्प सत्य--शिव और सुन्दर संकल्प ही क्यों न करें ? "तन्मे शिव संकल्पमस्तु" ही तो मुमुक्षुओं की मूल्यवान मांग है। "सत्यं-शिवं-सुन्दरं" बन जाना ही तो उनका एक ध्येय हो जाता है। एक बार संसार की मलिन ममता त्याग देने पर तो अखिल विश्व के समेत विश्वनाथ भगवान् मोक्ष कामी का अपना सर्वस्व धन होजाते हैं। इसीलिये श्रुति भगवति का कथन है कि—

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्ध,
सत्वः कामयते यॉंश्च लोकान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां-
स्तस्पादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥
(मुण्डक ३-१-१०)

विशुद्ध सत्व मुक्तात्मा जिस जिस लोकों की इच्छा करता है केवल इच्छा मात्र से ही वह उन-उन लोकों को प्राप्त कर लेता है। इसलिए आत्मतत्वज्ञ प्रभु के प्यारे भक्तों की पूजा परमैश्वर्य पाने की कामना वालों को सदैव करनी चाहिए।

सभी आगे बढ़ना चाहते हैं, हम भी चाहते हैं कि आगे बढ़ते ही चले जायँ और वहां तक पहुंच जायं कि जिसके आगे फिर गन्तव्य कुछ रह ही न जाय तो एक वार पिछली भूमि को अन्तिम प्रणाम कर लेना पड़ेगा। आगे बढ़ने का प्रयास करने पर भी पिछली वस्तुओं का मोह न छोड़ा तो कभी न कभी लौटकर पीछे आना पड़ेगा, यह ध्रुव सिद्धान्त है। चलो, वीरों की भांति प्राणों का मोह त्याग कर अपना पराया भुलाकर आगे बढ़ो, यदि विजयी बने तो उस सार्वभौम सत्ता को पाकर कृतार्थ हो जायँगे, यदि कुछ त्रुटि रह गयी तो कुछ आगे ही बढ़ेंगे, जितना मार्ग कट जाय उतना ही उत्तम है। "बहूना जन्मनामन्ते" में से कुछ तो घटेगा ही परन्तु यह काम कायर कपूतों का नहीं है, स्मरण रहे— "नायनात्माबलहीने न लभ्यः" यह आत्मकृपा प्रभु की दया निर्बलों के भाग्य में लिखी ही नहीं है, उसको प्राप्त करनेके लिये तो जाग्रत पुरुष ही भाग्य निर्माण करता है—

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।
(कठोपनिषद् १-३-१४)

उठो, जागो, अपने कर्तव्य में लग जाओ, बड़ा कठिन मार्ग है तलवार की धार पर दौड़ना है, जरा भी असावधानी हुई तो ऐसा गिरोगे कि कहीं ठिकाना न लगेगा, इसलिये अब सजग हो जाओ। औंघाये हुए नींदमें उटपटांग मार्ग पकड़ लिया तो घायल होजाओगे, मर मिटोगे। यह मानव देह बारबार नहीं मिलता, सावधान होकर अपना मार्ग पकड़लो असत्य से सत्य, अध्रुव से ध्रुव, क्षय से अक्षय, परिमित से अपरिमित, तथा सान्त से अनन्त की ओर आगे बढ़ो।" जो अविनाशी को त्याग कर नाशवना पदार्थों की ममता में लपटाता है उसका नित्यसुख नष्ट ही हो जाता है। अनित्य तो नष्ट है ही।" इस तत्व को जान लेने पर मनुष्य प्राकृत सुखों को ठुकरा कर 'दिव्य धाम के पथ पर'* प्रयाण कर देता है।

उस दिव्यधाम को महाविभूति, त्रिपाद् विभूति के नाम से वेद-शास्त्र तथा सन्तजन पुकारते हैं। उस धाम की प्राप्ति का अधिकार केवल प्रभु कृपा से ही किसी भाग्यभाजन को प्राप्त होता है।

नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेनलभ्यस्तस्यैष विवृणोति तनूं स्वाम्
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥
(कठोपनिषद् १-२-२२-२३)

'यह आत्मा बहुत बोलने वाले, कुशल कथाकार वक्ता, उपदेशक किंवा साहित्यिक लेखक को नहीं मिलता है केवल ऊपर का कोरा ज्ञान छांटने से प्रभु नहीं मिल जाता है। भीतर का वह परम प्रकाशक अत्यन्त मेधावी विद्वान बन जाने से भी प्रकट नहीं होता, रातदिन पोथी, पुराण सुनते रहने से भी वह तत्व अनायास हाथ नहीं लग जाता

(क्रमशः

* 'दिव्य धाम के पथ पर' सुन्दर पुस्तक केवल चार आना में पुस्तक भंडार लहेरियासराय जि० दरभंगा पतेसे प्राप्त होगा।

भरत का रामप्रेम

(लेखक—पं० श्री॰ गोविन्दजी दुबे 'साहित्यरत्न')

भरतु चरित करि नेमु, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय रामपद प्रेमु, अवसि होइ भवरस बिरति॥

जिन प्रभुके पावन नाम का एकोच्चारण समस्त कलि कलुषोंको, समूल क्षय करदेता है, जिसकी अहैतुकी अनुकम्पा के आश्रयभूत भगवान् मरीचिमाली अपनी सहस्रदीधित रश्मियों द्वारा समस्त वसुन्धरा को अखण्ड-रूप से प्रकाश देते हैं, कुमुदिनी-वल्लभ, हिंमांशु अपनी शीतल, शुभ्र एवं निर्मल किरणों द्वारा जगत् को आनन्द और वनस्पतियों को रस प्रदान करते हैं, माया नर्त्तकी जिस सूत्रधार की भृकुटी विलास के सहारे संसार का उद्भव, पालन एवं संहार करती है एवं जिसकी इच्छा के बिना जो किंचित् भी अपने पथसे विचलित नहीं हो सकती ऐसे स्वयं प्रभु जिस महापुरुष का स्मरण करें, जिसकी प्रशंसा करें, भला, उसके भाग्य की कौन सराहना कर सकता है।

भरत सरिस को रामसनेही।
जगु ज (राम रामु जपु जेही॥

महाभागवत भरत ऐसे ही पुण्यपुरुषों में से थे भरत का मन-मधुप सदैव ही भगवान् राम के पद-कमल में आलिप्त रहता था उसे अन्य किसी वस्तु की आकांक्षा थी नहीं। भरत के हृदय में भगवान राम के प्रति अगाध अनुराग था, अटूट श्रद्धा थी, अनन्य विश्वास था, यही कारण था कि भरत के भावों के सामने सबकी बुद्धि चकराती थी, उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य से प्रभावित समस्त समाज मंत्र-मुग्ध की भांति उनके मुखारविन्द की ओर निहारती रहती थी परन्तु किसी का बोलने का साहस नहीं होता था "सकल बिलोकत भरत मुख, बनइ न ऊतरु देत"। 'अरथ अमित अति आखर थोरे, की कहावत भी भरत की वाणी में घटित होती थी।

कैकेयी द्वारा निर्वासित नररुप में अवतरित जगदीश्वर भगवान् राम के वियोग में चक्रचूड़ामणि महाराज दशरथने स्वर्गयात्रा की। महर्षि वशिष्ट ने दो चतुर अनुचरों को अपने मातुलगृह में गए हुए भरत को सानुज बुलाने के लिए कैकेय देश भेजा, गुरु आज्ञा द्वारा प्रेरित चतुर अनुचर वायुगामी श्रेष्ठ घोड़ों को रथमें जोतकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थावित हुए। भरत उस समय रात्रि में आनेवाले दुःस्वप्नों के परिणाम पर विचार कर रहे थे, जिसमें उनके हृदय में अपने प्रियतम के मंगल की भावना सन्निहित थी।

हृदय कोमल भावों का भण्डार है, मन अपनी स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा यत्र तत्र सर्वत्र भागता रहता है, जिसमें नाना प्रकार की कल्पनाओं के पूले बँधे होते हैं, यह बात हम जैसे संसारी जीवोंके विषय में कही जा सकती है परन्तु भरत जैसे महापुरुष जो कि रामपद यश के मत्त चंचरीक हैं उनके हृदय में अन्य अनर्गल विचारों को स्थान कहां? ऐसे कुसमयमें जब कि दुःस्वप्न उन्हें चिंतित कर रहे हैं वे अपने हृदय में भगवान् आशुतोष से राम-जानकी की कुशलता की कामना कर रहे हैं—

मांगत हृदय महेश मनाई।
कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

दूत पहुंचे और गुरु आज्ञा का शुभ सन्देश सुनाकर पीछे पांव उसी रथ में बिठाकर अयोध्या ले आते हैं, जिस दिन भरत अपने मातृगृह गए थे उस दिन की और आज की स्थिति में उन्हें बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है, वह

अयोध्या जो कि भगवान् राम का संयोग पाकर कृतकृत्यता का अनुभव करती थी, सरकार राघवेन्द्र जिसे वैकुण्ठ से भी अधिक मानकर जिसकी प्रशंसा करते थे वही आज अवलंकृत विधवा की भाँति शोभा,-शून्या, खिन्न-वदना दिखाई देरही है, जिस अयोध्या में जगत् अधिष्ठात्री प्रकृति स्वयं अपनी सहचरियों के साथ निवास करती थी उसकी यह स्थिति थी --

लागत अवध भयावनि भारी।
मानहुँ कालरात्रि अंधियारी ॥

सन्ध्या समय था, भगवान् पद्मिनी-वल्लभ अपनी अनुरागमयी रक्तरंजित रश्मियों को समेटकर जगत् को विश्राम देने की सदिच्छा से अस्ताचल रूपी गुहा में छिप चुके थे कमलवृन्द मलीन हुए प्रभात होने की अभिलाषा में सम्पुटित थे, उस समय भरत ने अवध में प्रवेश किया, सर्व प्रथम वे अपनी जन्मदात्री जननी के भवन में पहुंचे, माता उस समय अत्यन्त प्रसन्न थी, अपने लाल का स्वागत करने को माता ने आरती का थाल सजाकर दरवाजे पर से लिवाकर भीतर ले जाती है अपने विचारों के अनुसार उसने वह कार्य किया था जिसे कोई नहीं कर सकता था इसलिए वह प्रसन्न थी परन्तु वास्तविक बात वैसी नहीं थी, वह तो समस्त जगत् को दुःख प्रदायिनी थी, भरत ने भी उसकी-अज्ञान–जनित प्रसन्नता का सम्मान किया नहीं पारिवारिक मलीनता एवं पूर्व अपशकुनों ने उनके हृदय में एक सामंजस्य उपस्थित कर रखा था जिस कारण वे माता से पूछते हैं।

कहु कहँ तात कहां सब माता।
कहँ सियराम लखन प्रिय भ्राता ॥

कैकेयीने अपनी कठोर करनी का सांगोपांग वर्णन किया उस महात्यागी के सामने। कैकेयी की करनी थी महात्यागी को रागी बनाने की; रामप्रेमी को विषय-प्रेमी बनाने की इसी-लिये तो वह इस प्रकार प्रसन्न थी, परन्तु सच्चे रामप्रेमी को यह बात सहन कहां? उन्होंने लोक व्यवहार के विपरीत आचरित कैकेयी की कठोर शब्दों में भर्त्सना की, अपमान किया, पश्चात्ताप किया, खरी खोटी बातें सुनाकर और मन्थरा को इस उपद्रव का मूल समझकर अनुज द्वारा दण्डित कराकर आप राममाता कौशल्या के समीप पहुंचे।

कौशल्या की उस समय बड़ी विचारणीय दशा थी। उस समय उस पर दुःख का सागर उमड़ पड़ा था एक तो रामवियोग और दूसरा वैधव्य का दुःख वह म्लानमना विवर्ण-वदना, विषादिनी दुखित हो रही थी। माता की इस स्थिति ने भरत के हृदय को प्रेमोत्पादक बनाया, वे अत्यन्त व्यथित हुये, माता को कुछ समय पश्चात् जब धीरज हुआ, जब उन्हें चेतना हुई तब उन्होंने भरत को समझाया, जिससे उनका दुःख कुछ कम हुआ और वे माता के सामने अपने मन की बातें करने लग गये।

प्रायः यह देखा गया है कि जो मनुष्य जैसा होता है उसी प्रकार वह दूसरे को भी समझता है, हृदय-चक्षुओं पर जिस रंग का चश्मा लगा रहता है उसी रंग का उसे समस्त संसार दृष्टिगत होता है, अपनी भावना ही उसे संसार के व्यवहार के योग्य बनाती है, भरत के हृदय में भी इस भाव का प्रादुर्भाव हुआ और अवध-निवासियों के सन्देह को मिटाने के लिये उन्होंने कुछ शपथें खाईं जो कि रामप्रेम का भूषण नहीं मानी जा सकतीं।

जे अघ मातु पिता गुरु मारे।
गाइ गोठ महिसुर पुर जारे ॥
× × ×
तिन्हकी गति मोहि संकर देऊ।
जौं जननि यह जानउं भेऊ ॥

माता ने भरत को समझाया और भरत ने माता को इस प्रकार परस्पर भावों का आदान-प्रदान होते हुये रात्रि का समय व्यतीत होने लगा भगवान् मरीचिमाली संसार

को प्रकाश देने के हेतु उदयाचल के समीप आ उपस्थित थे। सबने नित्यकर्म किया, भरत ने महर्षि वशिष्ठ से मिलकर प्रभात की मांगलिक वेला में पुन्य-सलिला भगवती सरजू के उत्तरीय कूल पर पिता का शव ले जाकर रखा। सुगन्धित चन्दनों के अनेकों भारों से आगत काष्ट द्वारा सुन्दर चिता का निर्माण किया, अग्नि संस्कार किया एवं शास्त्रानुमोदित गुरुदेव की आज्ञानुसार भरत ने पिता का सब अन्त्येष्टि संस्कार किया। अन्नदान, भूमिदान, गजदान, गोदान, वस्त्रदान आदि संस्कारों ने भरत को सपरिवार शुद्ध किया।

सूत्रधार प्रभु का विधान ही कुछ ऐसा है जिसमें पाप, पुण्य, सुख-दुःख, हानि-लाभ, यश-अपयश गाड़ी के चाक के अरे की भांति एक के बाद एक क्रमशः आते ही रहते हैं कल तक जो अयोध्यान प्रसन्न थी स्वयं प्रकृति जिस अयोध्या में अधिष्ठात्री देवी होकर निवास करती थी वही विरहणी विधवा की भांति किसी तरह अपने दिन गिन रही थी। अवधनिवासी कल तक राम के संयोग में दिन दूने रात चौगुने आनन्द का अनुभव करते थे वे ही आज तुषार गिरित कमल वन के समान मलीन दिखाई देते थे। महर्षि वशिष्ट रघुवंश के कुल पुरोहित होते हुये राजनीतिज्ञ, धार्मिक एवं आस्तिक थे आजतक अयोध्या के राज्य की बागडोर उनके हाथों में ही थी परन्तु उन्होंने विचार किया कि इस राज्य का अधिकारी आ गया है तब नगर के श्रेष्ठ सज्जनों को, माताओं को एवं मंत्रियों को राज सभामें एकत्रित करके प्रस्ताव रखा कि:—

राम राजपदु तुमकहँ दीन्हा।
पिता बचन फुर चाहिअ कीन्हा॥

+ + +

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना।
करहु तात पितु बचन प्रमाना॥

प्रस्ताव समर्थन हुआ मंत्रियों द्वारा और माता कौशल्या ने उसका अनुमोदन किया।

भगवच्छरणागत जीव अथवा मुक्त जीव कभी भी शास्त्राज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। गुणातीत होने पर भी शरीर अवशेष रहने के कारण उसके अन्तःकरण में प्रकाश, प्रवृति आदि कुछ कार्य स्वभावसे होतेही रहते हैं। भरत भगवान् राम के शरणापन्न थे। बड़ों के सम्मान में कैकेयी के अतिरिक्त भरत ने किसी अन्य की भर्त्सना नहीं की। माता से इस प्रकार कहना भी स्नेहाधिक्य था कोई अन्य कारण नहीं। इस प्रकार समस्त सभासदों की सम्मति सुनकर एवं सबका हृदय से सत्कार करते हुए आपने अपनी रामप्रेम रंजित वाणी में अपने हृदयगत भावों को प्रकट किया। अपना निश्चय, धारणा विश्वास, हृदय की वास्तविक स्थिति एवं संवेदना को उन्होंने पश्चात्ताप के रूप में सबके सामने स्पष्ट कहा। अपने को राजा होने के अयोग्य उन्होंने लौकिक एवं पारलौकिक, नीति, एवं धर्म, स्वार्थ एवं परमार्थ आदि अनेकों उक्तियों द्वारा बतलाया। वे कहते हैं कि यदि आप बलपूर्वक मुझे अयोध्या का राजा बनावेंगे तो बड़ा भारी पाप होगा, क्या? इस राज्य के वास्तविक अधिकारी रामजी ही हैं वे ही भूपति हैं इसलिए पृथ्वी मेरी माता के समान हुई क्योंकि भगवान् राम को मैं पिता के समान मानता हूं ऐसी स्थिति में अब यदि मैं राजा होता हूँ तो माता के साथ व्यभिचार करने के परिणाम-स्वरूप महान् पाप होगा जिसके भार से बोझिल माता वसुन्धरा रसातल को प्रयाण कर जावेगी अतएव मेरा निश्चय है कि—

कहौं सांच सब सुनि पतियाहू।
चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहि राजु देइपहु जबहीं।
रसा रसातल जाइअ तबहीं॥

(क्रमशः)

अनन्त सुख की प्राप्ति कैसे हो ?

(लेखक—श्री० उदयकरण 'सुमन, प्रभाकर, रायसिंहनगर)

मानव स्वभाव से ही सुखाकांक्षी है। वह सुख-सरोवर में गले तक पैठकर आनन्दोर्मियों में ही खो जाना चाहता है। यूं तो सम्पूर्ण प्राणी जगत सुखावलम्बी है। सुख प्राप्ति का निरन्तर प्रयत्न ही उसका जीवन है। जीवन का एक मात्र लक्ष्य ही सुख है। फिर भी शेष जगत की अपेक्षा मनुष्य में सम्वेदन शक्ति अधिक है। अतः उतनी ही बड़ी मात्रा में वह सुखाकांक्षी है। अन्य प्राणियों की उपेक्षा वह सुख प्राप्ति का प्रयत्न भी अधिक करता है।

शेष जगत के शेष प्राणियों की उपेक्षा, उसमें बुद्धित्व की भी अधिकता है। मनुष्य में बुद्धित्व की अधिकतम मात्रा का होना ही, उसे दूसरे प्राणियों से अलग करता है। यूं तो मनुष्य की अन्य जीवों से आकृति भी भिन्न है। भाषा भी भिन्न है। किन्तु भिन्नाकृति पर भाषा को, दूसरे जीवों से अलग होने का कारण मान लिया जावे यह समुचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि प्रत्येक प्रकार के जीव वर्ग की आकृति एवं भाषा, दूसरे जीव वर्ग से भिन्न है। तब यह मान ही लेना होगा कि मनुष्य में बुद्धितत्व की प्रधानता ही उसके सर्वश्रेष्ठ होने का एकमात्र कारण है। बुद्धि के द्वारा वह कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। इसीलिए तो "नारायण" के बाद "नर" का अस्तित्व है।

मनुष्य वास्तविक सुख से दूर ही रहा है !

बुद्धि के द्वारा सुख अधिकतम मात्रा में, सहज ही में प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु फिर भी, कुछ अपवादों को छोड़कर, मनुष्य सुखाभास ही कर पाया है। क्षणिक सुखों के पीछे ही वह भटकता रहा है। इसका एक मात्र कारण है कि उसने इहलौकिक बुद्धि के द्वारा, भौतिक सुखों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। भौतिक सुखों से परमानन्द तो उपलब्ध होता नहीं परमानन्द से विहीनसुख क्षणिक है। और है साथ ही साथ लालसा एवं कामना का जन्मदाता जिससे अतृप्ति पनपती है। अतृप्ति दुख का कारण है। अतः दूसरे शब्दों में यह कहना ही ठीक होगा कि आज का मनुष्य भौतिक-सुख-समृद्धि की मृगतृष्णा के पीछे भटकता हुआ सुख से दुख की ओर, सत्य से असत्य की, तथ्य से अतथ्य की ओर, मानवता से दानवता की ओर, आचार से व्यवचार की ओर, कर्तव्य से अकर्तव्य की ओर, उत्थान से पतन की ओर, प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से अग्रसर हो गया है।

"क्या यह पतन की पराकाष्ठा नहीं"

उपरोक्त कथन की पुष्टि के लिए यह कहना अनुचित न होगा कि आज संसार में जितनी भौतिक सुख समृद्धि हुई है उतना ही दुख उग्र रूप से पनपा है पर कल्याण की भावना का तो एक प्रकार से लोप ही होगया है। कदाचित यही तो कारण है कि आज संसार में एक महा युद्ध के बाद दूसरे महा युद्ध के आसार दृष्टिगत होते हैं। समुचा विश्व दुखाक्रान्त हो उठा है। जगजीवन बोझिल होगया है। यह है हुआ मनुष्य का सामुहिक पतन।

व्यक्तिगत पतन में भी मनुष्य पीछे नहीं है। अश्रद्धा, अविश्वास, शोषण, अनाचार अत्याचार, बलात्कार इत्यादि कुवृत्तियाँ भी मनुष्य ने बपौती के रूप में अपनाली हैं। आज वेश्यालय इस बात के सूचक हैं कि मनु

मानसिक एवं चारित्रिक रूप से कितना पतित होगया है। उसकी बुद्धि मानव जीवन की सर्वोत्तम विशेषता कितनी निरर्थक एवं बेकार सिद्ध हुई है। आवश्यकता तो इस बात की थी कि मनुष्य अपने बुद्धिबल के द्वारा, देवत्व प्राप्त करता। परमानन्द की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करता हुआ-कर्तव्यशील रहता। स्व-पर कल्याण की भावना के द्वारा स्वयं सुखी रहता, दूसरों को सुखी बनाता। स्वयं जीता, दूसरों को जीने देता। ऐसा करने वाला ही तो परम सुखी है। उसे ही तो सच्चा जीवनानन्द प्राप्त है।

भगवत् भक्ति ही परमानन्द की कसौटी है ॥

लेकिन ऐसा कब होता है। जब मनुष्य भगवत् अनुराग तड़ाग में, पारलौकिक बुद्धि का अवलम्ब लेकर, विवेक वीचियों से अठखेलियाँ करता हुआ, जन जीवन को सहल बनाने में सहयोग प्रदान करता है। मैं तो भगवत् भक्ति या अनुराग को ही आनन्द की वास्तविक कसौटी समझता हूँ। भगवत् अनुराग में ही सच्चा सुख निहित है। भगवत् भक्ति ही परमानन्द देने वाली है।

यह तो महान मूर्खता है ॥

यह तो निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य सुखाकांक्षी है। फिर वास्तविक सुख से वंचित रहना, अथवा उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास न करना, मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता! यह तो वही बात हुई कि मुक्ता-मणियों का इच्छुक गहरे पानी न पैठकर, घोंघों को ही चुनता रहे तो वह मूर्खही कहलायेगा। घोंघों एवं सीपियों को मुक्ता मान लेना तो और भी वज्र मूर्खता है। भौतिक सुख को परमानन्द समझ लेने वाले भी तो उतने ही बड़े मूर्ख हैं।

किसी भी पथिक का एक मात्र चरम लक्ष्य है-मंजिल पर पहुँचना। पथ विस्मरण हो जाना कदाचित स्वभाविक है। पथ को जानते हुए या मार्ग दर्शक के रहते हुए भी मार्ग पर न चलना, कदाचित पथिक का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। उसी प्रकार सुख रूपी मंजिल पर पहुँचने वाले मनुष्य रूपी पथिक को मार्ग निर्देशन करने के लिए हमारे ऋषियों ने जो तात्विक निष्कर्ष निकाल-शास्त्र निर्माण कर दिये हैं। वे युगयुगों तक समस्त ब्रह्माण्ड का पथ प्रदर्शन करने की शक्ति रखते हैं। ऐसी दशा में किसी का भी भटकना, उसकी मूर्खता ही है।

"सुख का चरमलक्ष्य क्या है--मोक्ष"

सुख की चरम सीमा है-मोक्ष। मोक्ष का चरमलक्ष्य है स्वयं भगवान से साक्षात्कार। भगवान से साक्षात्कार तब होता है जब हृदयमें उत्कट भगवत् प्रेम की निर्झरणी प्रवाहित हो रही हो! प्रेम की निर्झरणी प्रवाहित होती है तब, जब ज्ञान के विमल प्रकाश से, हृदय का अन्धकार नष्ट होगया हो। ज्ञान का अभ्युदय होता है संयम एवं आचार से। संयम एवं आचार का प्रथम सोपान है-भगवत् भजन-हरिकीर्तन!

भगवत् नामोच्चारण की महिमा अपार एवं अनन्त है। आज के कलियुग में-तो, भगवान् प्राप्ति का सर्वोत्तम सहज और सुगम उपाय इस से बढ़कर दूसरा कोई नहीं। भागवत् में भी कहा है—

कृते यद्ध्यायतो, विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात् ॥

हरि कीर्तन से भगवान के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। जिससे मनुष्य संसार के समूचे झंझालों से ऊपर उठकर भगवान की गोद में शरण प्राप्त करता है। जहां अनन्त सुख निवास करता है। जिसे पाकर मनुष्य की चिराकांक्षा पूर्ण होती है। अतः सुखाकांक्षी मनुष्य को चाहिये कि वह दूसरे सुखों से मुखमोड़कर वास्तविक सुख को पाने के लिए हरि का गुण गान करता हुआ—हरि चरणों पर ही जीवन समर्पण करदें।

नाम ग्रहण तथा विविध प्रसंग

(लेखक—पं० श्रीराजनारायणजी द्विवेदी)

भगवान् विष्णु का नाम मन्त्रके समान सोलह हैं। प्रसंगवश ग्रहण करना अत्युत्तम होगा। जैसे—

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम्
शयने पद्मनाभंच विवाहे च प्रजापतिम् ॥ १ ॥
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम्।
नारायणं तनु त्यागे श्रीधरं प्रिय संगमे ॥ २ ॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं संकटे मधुसूदनम्।
कानने नरसिंह च पावके जल शायिनम् ॥ ३ ॥
जलमध्ये वराहं च पर्वते रघुनन्दनम्।
गमने वामनं चैव सर्व कार्येषु माधवम् ॥ ४ ॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्व पाप विनिर्मुक्तो विष्णु लोके महीयते ॥ ५ ॥

अर्थात् दवा खाने के समय विष्णु भगवान् का नाम लेना चाहिये। भोजन करना चाहिए— जय जनार्दन कहकर। जय पद्मनाभ ऐसा कहकर शयन करना चाहिए, विवाह के समय प्रजापति का स्मरण करना ठीक है। लड़ाई-झगड़ा के मौका पर जै चक्रधर उच्चारण करना चाहिए। परदेश जाने में त्रिविक्रम नाम लेकर यात्रा करनी चाहिए।

शरीर त्यागके समय 'नारायण नारायण' ऐसी घोषणा करनी चाहिये, और प्रेमीसे भेंट होने पर श्रीधर ऐसा कहना चाहिये। दुःस्वप्न देखने पर' गोविन्द-गोविन्द' नाम लेने से सुस्वप्न हो जाता है। संकट में पड़ने पर मधुसूदन कहना चाहिये। जंगल में पड़ने पर जै नरसिंह कहना चाहिए। आग लगने पर या आग से भय होने पर जल शायी भगवान का नाम लेना अच्छा है। जल में जाने पर अथवा जलसे भय होने पर वराह भगवान का स्मरण करना चाहिये, और पहाड़पर रघुनन्दनजी कहना खूब अच्छा है। यात्रा-समय वामन भगवान का नाम और साधारणतया सब कामों में 'कृष्णमाधव-कृष्णमाधव' ऐसा कीर्तन करना मंगल दायक है।

पंचोपचार-दशोपचार तथा षोडशोपचार पूजा-एवं देवताओं की आरती और प्रणाम विधिः—पंचोपचार पूजा—गन्ध, पुष्प, धूप-दीप तथा नैवेद्य। दसोपचार—पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान,पुनःस्नान गन्ध-पुष्प धूप दीप और नैवेद्य।

षोड़शोपचार—आसन, स्वागत, अर्घ्य-आचमनीयमधु-पर्क-स्नान-वस्त्राभरण-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप नैवेद्य-आचमनीय तांबूल-स्तोत्र और नमस्कार।

देवताओं की आरती की वस्तुएं—

प्रथम दीपमाला (पंच प्रदीप) तब अर्घ्यपात्र से तब धौत वस्त्र से तब देवानुकूल आम-विल्व या पीपल के पल्लव से अथवा फूलों से। उसके बाद प्रणिपात नमस्कार करना चाहिए। कर्पूर-धूप-चंवर-शंख प्रभृति से भी क्रमशः आरति की जाती है।

आरति-विधि—देवता के पैर में चार बार, नाभि में दो बार, मुखमंडल की ओर तीन बार, उसके बाद समस्त शरीर के चारों ओर सात बार नियम है।

प्रणाम विधि—विष्णु भगवान को अपने वाम भाग की ओर करके प्रणाम दण्डवतादि करे। शंकरजी को दाहिने करके और गुरु को सामने रखकर प्रणाम करना चाहिए नहीं तो इसके विपरीत होने से प्रणाम निष्फल हो जाता है।

(शेष पृष्ठ १६ पर)

श्रीकृष्ण नाम की महिमा

(लेखक—श्री० रामलालजी)

श्रीकृष्ण का नाम सम्पूर्ण, अविकल विष्णु के अप्रतिम, चिन्मय तथा रसमय सौन्दर्य माधुर्य का शब्द प्रतीक है, अक्षरांकन है। इस परम पवित्र नामके पीछे वेदोंकी ऋचाओं ने नेति निराकार और निरूपम से सम्बन्ध विच्छेद कर वृन्दावन के अधिपति नन्दनन्दन के करमें अपने अहिवात का सिन्दूर सौंप दिया, सुहागिन श्रुति ने कालिन्दी के चंचल अंचल पर, ज्योत्सना के श्याम अंग पर रासेश्वरी की मादक मधुमनी वंशी पर, वंशीवट की रजत सैकत शय्या के रमण पर, गोपी प्रेम के गीतामृत पर, रास के अपरिसीम सागर-मन्थन पर सात स्वरों का यज्ञ किया। कृष्ण नाम के स्तवन के लिये ब्रह्मा ने वाणी, शिव ने गणेश की सृष्टि की। व्यास, नारद, शाण्डिल्य, भीष्म, यम, सनक, सनन्दन आदि भागवतों की वाणी ने ज्ञान की गंगा और भक्ति की कालिन्दी तथा प्रेम की सरस्वती के संगम पर वैराग्य ले लिया, वह कृष्ण नाम की स्तुति में पूर्णकाम न हो सकी हो, उसकी लालसा अधूरी ही रह गयी, उसकी अतृप्ति की जवानी स्थायी ही रह गयी। कृष्ण नाम-स्तवन के हिमालय के अरुणोदय कालीन शिखर पर पहुँचते पहुँचते वेदों के परबने झड़ गये, महाकाव्य के दोनों चरण रामायण और महाभारत दौड़ते-दौड़ते, गिरते पड़ते उतरते चढ़ते थक गये, उपनिषद, पुराण और शास्त्र की गति स्थगित हो गई वेदान्त सूत्र के दर्शन कार की भागवती कथा के अंग अंग शिथिल हो गये पर उसकी अनन्तता का बोध कल्पनातीत ही नहीं, नेति नेति से भी परे होता गया। महा भागवत भीष्म से आतंकित कौन्तेय के लिये कृष्ण की आत्मकथा, गीता का दान भी उनके नाम की महिमा का बखान नहीं कर सका।

कृष्ण नाम सर्वथा अनन्त, अनादि और अगम है। कृष्ण का गोपवेष विष्णु रूप में कालिदास के काव्य में उतर आया। भारतीय इतिहास के स्वर्णकाल में मेघदूत के रचयिता ने कहा, बादल के रूप का वर्णन किया, घनश्याम का काव्य-अभिषेक किया

'रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता
द्वल्मीकाग्रात प्रभवतिधनुःखण्डमाखण्डलस्य,
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते,
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णो।'

बौद्धधर्म की महायान साधना ने सनातन वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान में महान योग दिया, तान्त्रिक उपासना पद्धति ने उत्तर और दक्षिण भारत में भगवदभक्ति की श्रीवृद्धि में प्रोत्साहन दिया, बिल्वमंगल, कनुभट्ट, जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास ने विष्णु के कृष्ण रूप की माधुरी की पताका फहरायी, अयोध्या ने राम और वृन्दावन ने कृष्णध्वनि की। गामी के शीतल चरण पर धरना देने वाले चण्डीदास ने, मिथिला के राजमहल में राधा-कृष्ण की किशोर लीला गाने वाले कवि शेखर ने अपने सरस पदों से कृष्णके वैराग्य अवतार चैतन्य महाप्रभु का कंठ सहस कर दिया, वे झूम-झूम कर कृष्ण नामकी माधुरी का जनता में वितरण करने लगे, उनके कथन 'कृष्ण लीला एइ अति गूढ़तर' का रूप सनातन, जीव गोस्वामी, कृष्णदास कविराज विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि ने श्री भागवत के माध्यम से गूढ़ भाष्य किया, समस्त भारत हरिभक्ति रसामृत सिन्धु, उज्ज्वल नीलमणि कृष्णभावनामृत, चैतन्य चरितामृत आदिके साहित्य सुधासागर में स्नानकर कृष्णनाम की जय बोल उठा। कृष्णनाम भेदाभेद दर्शन की सीमा में भी रहस्यात्मक ही बना रहा। महाप्रभु वल्लभाचार्य

और गोसाईं विट्ठलनाथ के अष्ट छाप वाले रसिकों ने, सूर, परमानन्द, नन्ददास, कृष्णदास, कुम्भनदास, गोविन्ददास, छीत और चतुर्भुजदास तथा उनके परम्परानुगामियों ने भक्ति का सागर मथ डाला पर कृष्ण नाम की परख पूर्ण रूप से न हो सकी रसखान और घनानन्द ने सरसता के बाजार में अपने काव्यको नीलाम पर चढ़ाकर नामरस की वारुणी पीने की चेष्टा की पर उनकी वाणी को भी सुजान के लिये अन्त तक तड़पना पड़ा, सुजान के सन्देश के लिये घनानन्द तरसते ही रहगये, रसखान बार-बार अनेक रूप में व्रज में आने की कामना करते ही चले गये। निम्बार्क के माधुर्य ऐश्वर्य से प्रमत्त वृन्दावन को रसिक व्यास ने रसका दान किया पर रसिक चक्र चूड़ामणि श्यामसुन्दर के निकुंजकेलि दर्शन के लिये उनके प्राण विकल ही रहे, रसिक शिरोमणि हितहरिवंश ने राधासुधानिधि की पूर्णाहुति में कैंकर्यदान मांगा। अखिल रसामृत सिंधुकी नाम-माधुरी उनके अधर पर आजीवन डोलती रही पर उनको भी यही कहना पड़ा कृष्ण नामकी महिमा का बखान करने के लिये जन्म-जन्मों तक राधा का कैंकर्य मांगना पड़ा।

> तस्या अपार रससार विलास मूर्ते
> रानन्दकन्द परमाद्भुत सौम्य लक्ष्म्याः,
> ब्रह्मादि दुर्गमगतेर्वृषभानु जायाः
> कैंकर्यमेव मम जन्मनि जन्मनि स्यात्।

निधुवनके विहारीलाल के रसमर्मज्ञ रसिकशेखर हरिदास ने भी नाम रस का ही पूर्ण आस्वादन किया। कृष्ण नामकी माधुरी ने साहित्य को भी पूर्ण प्रभावित किया। महाकवि देव से लेकर मतिराम, पद्माकर, भारतेन्दु तथा 'हरि औध' तक की काव्य परम्परा के पोषकों ने कृष्णकी ही लीला कथा गायी। श्रीकृष्ण का नाम स्तवन देश, काल से परे है। कृष्ण का नाम भगवान के पूर्ण पुरुषोत्तमत्व का विजय-केतन है, सर्वथा रस मय लीलामय और चिन्मय तथा दिव्य है।

(शेष पृष्ठ १४ का)

प्रदक्षिणा विधि—स्त्री देवता को एक बार, सूर्य भगवान को सात बार, गणेशजी को तीन बार, विष्णु भगवान् को चार बार और शिव को आधी प्रदक्षिणा होनी चाहिए।

प्रस्तुत भजन को तीन ताला स्वर में भोरको (प्रातःकाल) गाना चाहिए—

(राग भैरवी—तीन ताल)

भज मन रामचरन सुख दाई ॥ ध्रु०॥
जिहि चरनन से निकसी सुरसरी शंकर जटा समाई।
जटासंकरी नाम परो है, त्रिभुवन तारन आई॥भज.
जिन चरननकी चरन पादुका भरत रह्यो लवलाई।
सोइ चरन केवट धोइ लीने तव हरि नाव चलाई। भज
सोइ चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई।
सोइ चरन गौतम ऋषि नारी परसि परम पदपाई॥भज.
दंडक बन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई।
सोई प्रभु त्रिलोक के स्वामी कनक मृगा संग धाई॥भज.
कपि सुग्रीव बंधु-भय व्याकुल तिम जय छत्र फिराई॥
रिपुको अनुज बिभीषन निसिचर परसत लंका पाई॥भ
सिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेष सहस्र मुखगाई।
तुलसिदास मारुत-सुत की प्रभु निज मुख करत बड़ाई

यह पद व्यक्तिगत या सामूहिक दोनों प्रकार से गेय होना चाहिए। प्रतिदिन के लिए नियम होना उत्तम है। नियमित प्रार्थना करने से दिन सुखमय बीतता है और भगवान् राम में अनुराग उत्पन्न होता है।

दृश्य जगत को क्षण भंगुर कहते हुए, 'प्रसाद' कृत बौद्ध भिक्षु की उक्ति है—

> न धरो कहकर इसको अपना।
> यह दो दिनका है सपना॥ न धरो०
> वैभव का बरसाती नाला, भरा पहाड़ी झरना
> बहो बहावो नहिं अन्यको, जिससे पड़े कलपना॥नधरो
> दुखियों का कुछ आँसू पोंछलो पड़ेन आहें भरना
> लोभ छोड़कर हो उदार, बस एक उसी को जपना
> ॥ न धरो०

धर्म के दश लक्षण

विद्वद्वर पूज्यपाद पण्डित श्री गोविन्ददासजी 'सन्त' के सदुपदेश

(प्रेषकः—श्री कन्हैयालाल माथुर)

मन्त्री—श्री चित्रगुप्त सतसंग मण्डल, प्रभु भवन मिट्ठनलाल का चौक, पुरानी मण्डी, अजमेर।

स्थानीय श्री चित्र गुप्त सत्संग मंडल प्रभु भवन मिट्ठनलाल चोक, पुरानी मण्डी, अजमेर में कई दिन तक लगातार धर्म के इन दश लक्षणों पर पूज्यपाद पं० श्री गोविन्ददासजी 'सन्त' के प्रवचन हुए थे। उन प्रवचनों को सभी सनातन धर्मानुयायी महानुभावों के लाभार्थ हमने यहां क्रमशः देनेका विचार किया है।

धर्म के दश लक्षणों की व्याख्या के पहिले धर्म क्या है. इस बात को समझाया जा रहा है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

धृति (धैर्य) क्षमा, दम, (मन को वश करना) अस्तेय, (चोरी न करना) शौच, (पवित्रता) इन्द्रिय निग्रह; (इन्द्रियों को वश करना) धी, (श्रेष्ट बुद्धि) विद्या, (अध्यात्म विद्या) सत्य और अक्रोध (क्रोध न करना) धर्म के ये दश लक्षण हैं।

उपर्युक्त इन दश लक्षणों वाले धर्म को सामान्य धर्म कहते हैं। धर्म के इन दश लक्षणों का पालन करना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है, अतः इनको मानव धर्म भी कहते हैं।

उपक्रम—इन लक्षणों को समझने के पहिले यदि हम यह समझ लें कि धर्म क्या वस्तु है और उससे हमारा क्या सम्बन्ध है। देश और समाज के लिए धर्म की कितनी आवश्यकता है। जब हम इस बात को समझ जायेंगे तो (धर्म में हमारा प्रेम होने के कारण) धर्मके दश लक्षणों की जानकारी के लिये अत्यन्त रुचि होगी और उनके समझने में सुगमता भी। अतः सबसे पहले यहां धर्म क्या वस्तु है इस बात पर विचार किया जाता है।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति और लक्षण—

धर्म शब्द 'धृ' धारण पोषणयोः इस धातु से बना है, जिसका अर्थ धारण करना अथवा पोषण (पालन) करना होता है।

अथवा 'धरतीति धर्मः', 'ध्रियतेऽसौधर्मः' इसका भी यही अर्थ होता है कि जो धारण करे उसका नाम धर्म है।

या स्पष्ट शब्दों में यों समझ लीजिए कि जिसके नाश होने से वस्तु का नाश हो जावे उसको धर्म कहते हैं।

दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जिसको जड़ चैतन्य (स्थावर जंगम) आदि संसार धारण करे उसका नाम धर्म है। महर्षि वेदव्यास लिखते हैं कि—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

इसमें धारणा शक्ति है! प्रजा इसको धारण करती है। धारणा को लिए हुए होने से इसका नाम धर्म है।

आज कल कतिपय महानुभाव यह कहा करते हैं कि इन धर्म के ठेकेदारोंने धर्म-धर्म चिल्लाकर भारत को गारत कर दिया। यह धर्म ही उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाता है। इसीने विविध जातियों में संघर्ष पैदाकर के जातियों को लड़ा दिया।

खूब मजे की बात है, जो धर्म संसार का उन्नतिकारक, और प्राणी मात्र का हितैषी है वही आज इन महानुभावों की दृष्टि में भारत को गारत करने वाला तथा उन्नति में बाधक एवं जातियों में संघर्ष पैदा करके उनको परस्पर में लड़ाने वाला बन गया। सच है; 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' जब दुर्दिन आते हैं तब बुद्धि भी विपरीत हो ही जाती है।

भारत के प्रवीण दार्शनिक महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन के आरम्भ में लिखा है कि—

यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः

जिससे इस संसारमें अभ्युदय (उन्नति) और परलोक में निश्रेयस (कल्याण) की प्राप्ति हो उसे धर्म कहते हैं।

अब बतलाइए कि जिन त्रिकालज्ञ महर्षियों ने ऋतम्भरा बुद्धि द्वारा प्रत्येक पदार्थको भली भांति समझ कर उसका निरूपण किया है, उनके कथन को ठीक माने या सर्वथा दर्शन ज्ञान शून्य इन महानुभावों के कथन को। इसका निर्णय हम पाठकों पर ही छोड़ देते हैं।

कई लोग धर्म शब्द का अर्थ रिलीजन अथवा मजहब करते हैं, पर ये दोनों हीं अर्थ धर्म के अर्थ को प्रकाशित नहीं करते। धर्म और रिलीजन एवं मज़हब में बड़ा अन्तर है।

(१) रिलीजन किसी मनुष्य का चलाया हुआ होता है और धर्म प्रकृति सिद्ध है।

(२) रिलीजन मनुष्यों में ही होता है और धर्म मनुष्य पशु, पत्ती, जड़, चैतन्य सभी में रहता है।

(३) रिलीजन के रहने से कोई क्षति नहीं, किन्तु धर्म के न रहने से धर्मी का नाश हो जाता है।

उदाहरण के लिए अग्नि को ही लीजिए जैसे—अग्नि में दो धर्म विद्यमान हैं, एक उष्णता और दूसरा प्रकाश। जब तक ये दोनों धर्म अग्नि में विद्यमान हैं तबतक अग्नि अग्नि कहलाता है। यदि ये दोनों धर्म अग्नि में से निकल जाँय तो अग्नि-अग्नि न रहकर राख कहलाता है। सभी मनुष्यों में दो प्रकार के धर्म रहते हैं। कुछ शारीरिक धर्म और कुछ मनुष्यता के धर्म। यदि मनुष्य में से मनुष्यत्व धर्म नष्ट हो जाय तो फिर वह मनुष्य न रहकर बिना सींग और पूंछ का निपट पशु कहलाता है। इस पर राजर्षि श्री भर्तृहरि ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है—

आहार निद्रा भय मैथुनंच
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये शारीरिक धर्म मनुष्यों के और पशुओं के समान हैं कारण कि ये धर्म शरीरों के हैं। उनके भी शरीर है और इनके भी शरीर है, इस कारण दोनोंके ये धर्म समान है। मनुष्यों में और पशुओं में अन्तर है तो केवल इतना ही है कि मनुष्य में मनुष्यत्व धर्म रहता है। जिस मनुष्य में यह धर्म नहीं है, वह मनुष्य-मनुष्य नहीं है, किन्तु बिना सींग पूंछ के एक प्रकार से खासा पशु के समान है।

जिस प्रकार मनुष्य धर्म के निकल जाने से मनुष्यत्व का नाश हो जाता है, उसी प्रकार चलना, फिरना, खाना सोना, बैठना, उठना आदि शारीरिक धर्मों के मिटने से शरीर का नाश हो जाता है। तभी तो मनुजी ने लिखा है कि —

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

मारा हुआ धर्म मनुष्य को मार डालता है और रक्षित धर्म मनुष्य की रक्षा करता है। अतः सिद्ध हो गया धर्मी की सत्ता तभी तक है जब तक उसमें उसका धर्म है यह बात रिलीजन आदि में नहीं पाई जाती।

संसार के सभी भौतिक पदार्थ नाशवान एवं क्षण-भंगुर है। इनका सम्बन्ध भी भौतिक देह के साथ ही है। जीव तो अकेला ही आया है और अकेला ही जायगा। न कुछ साथ लाया है और न ले जायगा। मनुजी लिखते हैं कि—

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठ लोष्ठ समं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥

परिवार के लोग मृतक शरीर को लकड़ी और पत्थर की भांति फेंक कर पीठ दिखाकर अपने घर को चले जाते हैं। उस समय केवल धर्म ही साथ जाता है।

आत्मनो न सहायार्थं पिता माता च तिष्ठति।
न पुत्र दारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम्॥

पिता, माता, पुत्र, स्त्री और जाति वाले ये परलोक में सहायता नहीं करते। केवल एक धर्म ही सहायक होता है।

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोनु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥

प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है। अकेला ही मरता है और अकेला ही पुण्य-पाप भोग करता है। गरुड़ पुराण में भी बताया है कि —

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे,
नारी गृह द्वारि जनाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे,
धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

धन भूमि में, पशु–पशुशाला में, स्त्री घर के दरवाजे तक, भाई बन्धु श्मशान तक, और देह चिता में जलकर खाक बन जायगा। परलोक में तो इस जीव के साथ एक धर्म ही जाता है।

धर्म तो संसार की प्रिय वस्तु है। आज भी हम किसी मनुष्य से यह कह दें कि तुम बड़े धर्मात्मा हो, तो वह फूलकर कुप्पा हो जायगा। और यही कहेगा कि यह सब आप ही के चरणों की कृपा है। यदि हम किसीसे यों कह दें कि तुम बड़े पापी हो, तो सुनते ही उसकी आंखें लाल लाल हो जायगी और आश्चर्य नहीं यह भी कह बैठे कि आप और आपके बाप दादे ऐसे होंगे मैं क्यों।

धर्म संसार को ही नहीं अपितु ईश्वर को भी प्रिय है। जिस समय धर्म पर आपत्ति आती है, वह बैकुण्ठ में रहने वाला एक वैकुण्ठ ही क्या चाहे वह वैकुण्ठ में हो, चाहे गोलोक में, चाहे सातवें आसमान पर चाहे सर्व व्यापक हो, किन्तु धर्म रक्षा के लिए उसको फौरन कूदकर निराकार से नराकार बनना ही पड़ता है। श्रीमद्भगवद् गीता में भी भगवान स्वयं श्रीमुख से उपदेश करते हुए अर्जुन से कहते हैं कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं अवतार धारण करता हूं। भक्तों की रक्षा करने के लिए, दुष्टों का संहार करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूं।

धर्म प्राण भारतीय वीरों ने धर्म के लिए क्या-क्या संकट नहीं सहन किए। देखिए —

शिवि दधीचि हरिचन्द नरेशा।
सहेउ धर्म हित कोटि कलेशा॥
रंति देव बल भूप सुजाना।
धर्म धरेउ सहि संकट नाना॥

महाराणा प्रताप, छत्रपति वीर शिवाजी, वीर हकीकत राय आदि अनेकों महानुभाव धर्म रक्षा के लिए अनेकों कष्ट झेलकर संसार में यश कमा चुके हैं। आज उन्हीं की कृपा से हमारे कन्धे पर यज्ञोपवीत और शिर पर शिखा नजर

(शेष पृष्ठ २४ पर देखिये)

कहानी

साधूजन और लोकहित

(लेखकः—वाणी-भूषण श्री राजेन्द्रमोहनजी कटारा, साहित्यालंकार)

नारायण ! नारायण !!

कौन है बाबा ?

नारायण !

कुछ मुँह से तो कहो, क्या चाहिये ?

नारायण ! नारायण !!

झुँझला कर तामसीदास ने कहा, मुनीमजी तुम्हीं पूछो।

"बाबा क्यों व्यर्थ अपना समय नष्ट करते हो" मुनीम हिम्मतसिंह ने समीप जाकर पूछा।

"मुझे कोई इच्छा नहीं, तुम अपना काम करो" साधु ने कहा।

"तब अपना रास्ता नापो यहाँ बौहनी क्यों खोटी करते हो" हिम्मतसिंह ने आवेश पूर्ण भाषा में कहा।

नारायण ! नारायण !!

"कोई बात भी या यों ही। नारायण क्या कोई गीत है ?" हिम्मतसिंह बोला।

"इसमें तुम्हारा क्या व्यय होता है ?" साधु ने कहा।

क्या बोलते हैं, मुनीमजी ? सेठ ने पूछा।

"कुछ कहते न सुनते हैं, सबेरे ही सबेरे द्वार घेर कर खड़े हैं" हिम्मतसिंह ने उत्तर दिया।

"क्या मुसीबत है, हट्टे कट्टे मुस्तन्डे काम नहीं होता, मुफ्त की उड़ाने को फिरते हैं" सेठ बड़बड़ाने लगा।

"सेठजी मुझे क्या आज्ञा है ?" हिम्मतसिंह ने पूछा।

'बैठ कर अपना काम करो, मत सिरखप्पी करो, सुबह से लेकर शाम तक ऐसे हरामखाऊ न जाने कितने आते हैं, आखिर मुफ्त की खाने के सिवाय और इनके पास काम ही क्या है", सेठ ने क्रोध में कहा।

नारायण २ कहते हुए साधु बाबा वहीं बैठ गये। थोड़ी देर के पश्चात् हिम्मतसिंह ने मुड़कर देखा तो साधु को बैठा पाया। साधु की इस क्रिया से हिम्मतसिंह को आवेश आगया और बिना सेठ की आज्ञा लिये सहसा ही उठ कर साधु के समीप जा पहुँचा तथा क्रोधयुक्त कर्कश स्वर में कड़ी डाट दे डाली। किन्तु इस सबका साधु के ऊपर प्रभाव ही क्या पड़ता। वह वहां से टस से मस न हुए और ज्यों के त्यों ध्यान मुद्रा में बैठे रहे।

"आदमी हो या कठपुतली" हिम्मत ने कहा।

"तुमने जो भी समझा हो" साधु ने हंस कर उत्तर दिया।

इस अवहेलना पूर्ण उत्तर से हिम्मत का पारा ऊंचे से ऊंचा चढ़ गया और वह न जाने क्या २ बकने लगा। परन्तु साधु बाबा ने जैसे सुना ही कुछ नहीं। साधु की यह मुद्रा और व्यवहार हिम्मतसिंह से सहन न हुआ और वह तत्काल सेठजी के समीप जाकर कुछ बड़बड़ाता हुआ बैठ गया। सेठ को यह बहुत अखरी तथा हिम्मतसिंह को कड़ी दृष्टि से देखते हुए कहा "क्यों साधु गया ?"

"नहीं, सेठजी अभी नहीं"

"तब कहां है ?"

"द्वार के निकट सहन में बैठ गया है"

"क्यों तुमने उसे टाला नहीं ?"

"मेरे सभी प्रयत्न असफल रहे, सेठजी"

"यह बला सुबह ही कहां से आगई, हिम्मत"

'अपने आप चला जायगा चिन्ता क्या है सुबह से शाम तक इस प्रकार के कितने नहीं आते और चले जाते हैं, सेठजी"

"यह तो ठीक है, परन्तु इसकी भांति कोई धरना तो नहीं देता, हिम्मत"

"बैठा रहेगा हम से क्या लेता है अपने आप झक मार कर उठ जायगा, सेठजी"

"इस प्रकार दरवाज़ा घेर कर बैठा रहना भी तो बुरा लगता है और सो भी सवेरे ही सवेरे"

"अजी साहब ! जब कुछ कहता नहीं सुनता नहीं तो क्या हो सक्ता है ? आप ही बतायें"

"एक बार फिर प्रयत्न कर देखो इस बार सम्भव है कुछ रहस्य खुल जाय; समझ में नहीं आता चाहता क्या है ? हिम्मत"

"आप तो व्यर्थ आकुल हो रहे हैं; ऐसे लफंगों के पास काम ही क्या है सिवाय इसके कि किसी बड़े द्वार को ढूंढ लिया और जा धरना दिया।"

इस प्रकार साधु, मालिक और मुनीम की वे सभी बातें सुन रहे थे किन्तु किसी का भी कोई विचार न कर मन ही मन उनके अभिमान और परआत्मा अपवाद पर हँसता रहा, साथ ही ज्यों ज्यों वे दोनों ऐसी २ बातें करते गये साधु की मनोवृत्ति उन्हें ही उचित मार्ग पर लाने के सम्बन्ध में दृढ़ होती गई और निश्चय कर लिया कि इन धन मदोन्मत्त जीवों को ही सत्य के मार्ग पर लाकर रहूँगा। प्रतिज्ञा, अटल होगई प्रण, दृढ़ बन गया अब इस समय से साधु का वह कार्य, सत्याग्रह का स्वरूप हो चला। सेठ ने भी देखा कि साधु परमशान्त मुद्रा में द्वार पर किसी विचार को लेकर डट गया है तो मन में कुछ खीझ सी उत्पन्न हुई और साथ ही साधु के द्वारा अपना अपमानसा भी प्रतीत हुआ। बस फिर क्या था अहंकार की ज्वाला में साधु हठ ने घी का काम किया और सेठ का क्रोध ज्वालामुखी की भाँति भड़क उठा। तत्काल ही हाथ में छड़ी उठाये साधु के समीप आ पहुंचा।

क्या चाहिये ? हरामखोर से दस बार पूछा किन्तु मुँह से सीधे बात नहीं करता। बोल ! नहीं तो चमड़ी उड़ा दूँगा"

साधु बाबा को सेठ के उक्त शब्दों पर न कोई रोष ही हुआ और न कौतूहल, वरन् स्वाभाविक ही एक हलकी सी मुस्कराहट होठों पर झलकने लगी। वास्तव में संतजी को सेठ से लेना देना क्या था। वे तो सहसा ही इधर आ निकले और देखा कि धन मद में मतवाले वैभव की विकट पाश में जकड़े हुये इस प्राणी का परिणाम दुखद होगा बस केवल परहित भावना ने बरबस उनकी अबाध गति में अन्तर डाल दिया और वे उसके कल्याण करने पर तुल गये। संतों का तो धर्म ही लोक कल्याण करना होता है। गोस्वामीजी के शब्दों में

संत विटप सरिता गिरी धरनी।
पर हित हेतु सबन्ह की करनी॥

संत को अपने लिये क्या चाहिये ? केवल शरीर रक्षा केलिये उतना भोजन जितने में शरीर कर्तव्य परायण बना रहे तथा लोक मर्यादा हितार्थ गुप्तांगों के लिये उपयुक्त आवरण। इसमें भी यदि कहीं उनकी निन्दा या स्तुति होती है तो उसके लिये न किसी प्रकार का हर्ष और न विषाद।

सेठ से साधु की यह अवहेलना पूर्ण हँसी सहन न हुई और वह आग बबूला होकर छड़ी ऊपर उठाये आगे बढ़ गया। चाहता था कि अभी २ दस बीस छड़ियां उस अस्थिपंजर पर जड़ा कर अपने क्रोध को शान्त करले किन्तु देखा कि सामने से एक बड़ा विशालकाय सांड सांय २ करता एवं दहाड़ मारता सींग नीचे किये, चला आरहा है। उस समय सेठको यही प्रतीत हुआ मानो एक ही ठोकर में यमपुर का मार्ग दिखा देगा। अब तो सेठ

को अपने प्राण बचाने की सूझ हुई। न जाने क्रोध की धधकती हुई वह ज्वाला कहां चली गई। लाखों रुपयों का माल तोंद में डालकर डकारें लेने वाले सेठ का वह बल, जो क्षण भर पूर्व फूटा ही पड़ता था जाने किधर कपूर की भांति उड़ गया। सांड को सीधा अपनी ओर आता देख सेठ को भागते ही बना और बहुत कुछ संभालते २ भी धोती तो बिगड़ ही गई। किन्तु फिर भी साहस को तो यहां तक बनाये रहा कि गिरते पड़ते चलियो बचइयो करते कहीं जूता कहीं पगड़ी, कमरे में तो घुस ही गया और किवाडों को भी कांपते २ जैसे तैसे बन्द कर सका। इतने पर भी अपनी बहादुरी को स्थिर रखते हुये दोनों हाथों तथा तोंद को किवाड़ों से अड़ाये खड़ा रहा। विचार यह रहा कि कहीं किवाड़ खुल न जायें! सारा शरीर पानी २ होगया।

तभी तक सांड ने भी किवाड़ों के समीप ही आकर एक दो बार और दहाड़ें दीं। बस अबतो सेठ की आंखें ही बन्द हो गईं। उसने समझ लिया कि जीवन लीला समय से पूर्व ही समाप्त होगई। शरीर में काटो तो रक्त का नाम तक न रहा था। बहुत कुछ साहस से काम लिया परन्तु साहस बेचारा कहां तक चलता जब हाथ पैर ही जवाब दे बैठे। उधर तोंद ने भी अबतक के सैंकड़ों मन मेवा मिठाई आदि बहुमूल्य पदार्थ जो पचा रखे थे एक साथ ही ज्वालामुखी के लावा की भांति निकाल फेंकना आरम्भ कर दिया। रुकना कहते किसे हैं। परिणाम यह हुआ कि शारीरिक शिथिलता के कारण खड़ा रहना भी सम्भव न रहा और अन्त में गिर ही तो पड़ा।

सेठ की यह दशा थी तब मुनीम हिम्मतसिंह की हिम्मत तो न जाने कहां किसी कमरे में टूटी फूटी चारपाई के नीचे भाग को सुशोभित कर रही थी। इधर एक बार सेठ की आंखें स्वाभाविक ही खुलीं और किवाड़ की दरार में से बाहर को दृष्टि जा ही जा पड़ी तो देखा कि वही विकराल रूप धा सांड खड़ा २ साधू बाबा के वाम पार्श्व भाग चाट रहा है और आंखें उन्मीलित सी हैं साथ साधु बाबा उसी स्वाभाविक मुस्कराहट के सा शान्त भाव जैसे के तैसे ही बैठे हैं। न साधु समीप भय है और न सांड के समीप रोष है थोड़ी ही देर में सेठ ने यह भी देखा कि पहि काले नाग के समान फुंकार मारता हुआ आ वाला वह सांड मत्त गयंद की मंद गति से मार्ग पर चला जा रहा है।

सेठ ने ठन्डी सासें लीं दम जुड़ाया फिर बार २ किवाड़ों की दरार में से बहुत देर त झांक २ कर देखता रहा। जब सांड आंखों ओझल हो गया तब कुछ चैन की सांस लेकर किवाड़ को धीरे २ खोला। कपड़ों को संभाल हुये मुनीम को पुकारा। उधर से मुनीम ने भी देखा कि आपत्ति के बादल टल गये तो शीघ्र सेठके समीप आ धमका।

"उफ! बड़ी भारी विपत्ति आगई, बड़ी कु हुई; सेठ साहब! किसी प्रकार बात रह ही गई

"तुम कहां थे हिम्मत"?

"मैं तो आपके समीप ही था सेठजी"

"और तूने कुछ देखा भी"।

"मैंने सब कुछ देखा सेठजी"

"वह क्या?"

"यही कि आप अभी तक कांप रहे हैं, रहे हैं; और धोती को दिखा कर, जरा इसे डालिये सेठजी"

"हां हां क्या हुआ कुछ ख··· र······हां क्या?"

थोड़ी बहुत ही हुई है फिर भी बदल ले ठीक है"

"परन्तु हिम्मत! वह काल रुपी सां साधु के निकट किस प्रकार खड़ा था तुमने था"?

(शेष पृष्ठ २४

-:: भगवद्विमुख प्राणी का मनुष्य जन्म निष्फल है ::-

(लेखकः—पं० श्री गोविन्ददास 'सन्त' धर्मशास्त्री)

श्रीमद्भागवतमें द्वितीय स्कन्ध के तृतीय अध्याय में (श्लोक संख्या १७ से २४ पर्यन्त) श्री वेद व्यासजी महाराज ने लिखा है कि—

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तम श्लोकवार्तया ॥

जिसका समय भगवान् उत्तम श्लोक के गुणानुवाद में व्यतीत होता है उस मनुष्य को छोड़कर शेष सभी मनुष्यों की आयु को भगवान् सूर्य उदय और अस्त होकर वृथा ही क्षीण करते हैं।

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति किंग्रामे पशवोऽपरे ॥

यदि कहो कि भगवद्भजन न करने वाले मनुष्यों की तरह भगवद्भजन न करने वाले भी तो जीवित रहते ही हैं, तो कहते हैं कि वृक्ष क्या जीते नहीं हैं? यदि कहो कि उनके समान श्वांस भी लेते ही हैं तो कहते हैं कि-लुहार की धौंकनी क्या श्वास नहीं लेती? यदि कहो कि उनके समान खाते पीते भी तो हैं; तो कहते हैं कि अन्य ग्राम्य पशु क्या भोजन और मल मूत्र त्याग नहीं करते? फिर मनुष्य और उनमें अन्तर ही क्या रहा।

श्वविड्वराहोष्ट्र खरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥

जिसके श्रवण पथ में श्रीविष्णु भगवान् के नाम ने कभी प्रवेश ही नहीं किया, उस नर-पशु को कुत्ता, ग्राम्य शूकर, ऊँट और गधे के समान ही कहा है।

बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये,
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत,
न चोपगायत्युरुगाय गाथाः ॥

शौनक ऋषि कहते हैं कि हे सूतजी! मनुष्य के जो कान कभी भगवान् श्रीकृष्ण की कथा नहीं सुनते वे बिल के समान हैं तथा जो जिह्वा हरि कथा का गान नहीं करती वह मेंढ़क की जीभ के समान व्यर्थ है।

भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट-
मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां,
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥

जिसका शिर कभी मुकुन्द के आगे नहीं झुका वह पट्टे और मुकुट से सुशोभित होने पर भी भार रूप ही है; तथा जो हाथ कभी हरि की सेवा नहीं करते वे सुवर्ण कंकण विभूषित होने पर भी मुर्दे के हाथों के समान है।

हरि नाम का उच्चारण करते ही द्रवीभूत नहीं होता वह हृदय वज्र के समान कठोर है। जब हृदय द्रवीभूत होता है उस समय नेत्रों से अश्रु प्रवाह और शरीर में रोमाञ्च होने लगता है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने भी कहा है कि—

लाभ कि कछु हरि भगति समाना।
जेहि गांवहि श्रुति संत पुराना ॥
हानि कि जग एहि सम कछु भाई।
भजिय न रामहि नर तनु पाई ॥
सोइ पावन सोइ सुभग शरीरा।
जो तनु पाइ भजिय रघुवीरा ॥

और भी कहा है—

जिस घर में हरि का जिक्र न हो,
वह घर उजाड़ हो लूट पड़े।
जिस मुख से जो हरि को न भजा,
वह रसना मुख से टूट पड़े ॥

राम नाम के आलसी भोजन के होशियार।
तुलसी ऐसे जीव को बार बार धिक्कार ॥
वारि मथे बरु होई घृत सिकताते बरु तैल।
बिन हरि भजन न भव तरहि यह सिद्धान्त अपेल ॥
शूकर कूकर करत हैं खान पान रस भोग।
तुलसी वृथा न खोइये नर तन भजन के जोग ॥
धन यौवन यो जायंगे जेहि विधि उड़त कपूर।
मूरख मन हरिनाम भज क्यों चाटत जगधूर ॥

इत्यादि बातों से यही सिद्ध होता है कि मनुष्य जन्म पाकर जिसने भगवान् का भजन नहीं किया उसका मनुष्य जन्म निष्फल है।

(पृष्ठ १६ का शेष)

आती है। उन्हीं की दया का फल है जो आज शिवालयों और मठ मन्दिरों में नगाड़े, शंख, और भेरी आदि की आवाज सुनाई देती है। उन्हीं के परिश्रम का विकाश है कि जो आज हम बड़े--बड़े मंचों पर बैठकर कथा पुराणादि का कीर्तन करते और स्टेज पर व्याख्यान फटकारते हैं। धर्म की रक्षा के लिए हमारे पूर्वजों ने राज सिंहासन छोड़ घास की रोटियां खाई, बन-बन भटके, प्राणों की परवाह न कर हंसते हुए फाँसी पर लटके, दिवार में चुन दिये गये, किन्तु धर्म की सत्ता भूतल पर रक्खी। हिन्दु वा सूर्य महाराणा प्रताप का तो यह दृढ़ सिद्धान्त था कि—

जो दृढ राखे धर्म को तेहि राखे करतार।

अब आप समझ गये होंगे कि धर्म क्या वस्तु है और उससे हमारा कितना संबन्ध है; अतः हम सबको भी हमारे पूर्वजों की तरह हमेशा धर्म पर कटिबद्ध रहना चाहिये। बोलिए सनातन धर्म की जय।

(पृष्ठ २२ का शेष)

"सेठ साहब पहुँचे हुये साधुओं का तो लक्षण ही यह है कि उनके सामने शेर भी मोम हो जाय"

"तब तो साधु पहुँचे हुये हैं हिम्मत"?

"इसमें क्या सन्देह है सेठजी"

इतना कहते हुये सेठजी ने दौड़ कर साधु के चरण पकड़ लिये और क्षमा याचना करते हुये अपने कल्याण का मार्ग जानना चाहा। साधु बाबा ने भी सेठ को जिज्ञासु समझ कर सत् उपदेश दिया तथा अपना मार्ग लिया। सेठ देखते का देखता ही रह या परन्तु तब तक सेठ का कल्याण हो चुका था।

भजन

भजन श्याम सुन्दर का करते रहोगे।
तो संसार सागर से तरते रहोगे॥
कृपानाथ बेशक मिलेंगे किसी दिन।
जो सत्संग पथ से गुजरते रहोगे॥
चढ़ोगे हृदय पर सभी के सदा तुम।
जो अभिमान गिरि से उतरते रहोगे॥
न होगा कभी क्लेश मन को तुम्हारे।
जो अपनी बड़ाई से डरते रहोगे॥
छलक ही पड़ेगा दया-सिन्धु का दिल।
जो गर नाम "हरि" का सुमरते रहोगे॥

(२)

रे मन मूरख कब तक जग में,
जीवन व्यर्थ वितावेगा॥
राम नाम नहिं गायेगा तो,
अन्त समय पछतायेगा॥
जिस जग में तूं आया है,
यह एक मुसाफिरखाना है॥
सिर्फ रात भर रुक कर,
इसमें सुबह सफर कर जाना है॥
इस झूंठी दुनियांदारी से क्या,
आश मोक्ष के फल की है॥
तुझको क्या है खबर जिन्दगी की,
तेरी कितने पल की है॥
जम के दूत घेर जब लेंगे,
तब क्या धर्म कमायेगा॥
राम नाम नहिं गायेगा तो,
अन्त समय पछतायेगा॥
पहुंच गुरु के पास ज्ञान के,
दीपक का उजियाला ले।
कंठी पहन कंठ में जपकी,
कर सुमिरण की माला ले॥
गर तूने यह नहीं किया तो,
आंखों से आंसु बहायेगा॥
राम नाम नहिं गायेगा तो,
अन्त समय पछतायेगा॥

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में पूर्व आचार्य श्री महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्धसन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २=) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

श्री सर्वेश्वर--संकीर्तन

जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। भज मन निश दिन आठों याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। राधा माधव राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। दाउजी के भैय्या राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। कृष्ण कन्हैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। मुरली बजैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। धेनु चरैय्या राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। नाग नथैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। कंस बधैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। रास रचैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। चीर बढैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। वसन हरैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। नन्द के छैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। छाक लुटैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। ब्रज के बचैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। मखन चुरैया राधेश्याम ॥
जय सर्वेश्वर जय सुखधाम। 'सन्त' बचैया राधेश्याम ॥

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगज, अजमेर में मुद्रित
गौरगोपाल मानसिंहजीका संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान, भजनाश्रम वृन्दावन [मथुरा] से प्र[illegible]

अंक ६

विषय सूची

ज्येष्ठ संवत् २००६

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहियें पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक :- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओं से १।|≡) एक प्रति का ≡

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन जून सन् १९५२ | अंक ६

राम नाम महिमा

दो बेर द्वारिका तीन बेर त्रिवेणी,
चार बेर काशी के अंक नहायेते ।
पांच बेर नीमसार छ बेर गंगा,
सात बेर पुष्कर के आचमन करायेते ॥
रामनाथ बैजनाथ बद्री औ केदारनाथ,
दसों दिशा धायेते ।
जेते फल होत कोटि तीर्थ स्नान किये,
तेते फल होत एक राम नाम गायेते ॥

—:*:—

॥ ॐ ॥

परमार्थ का द्वितीय सोपान —

तप

(लेखक—श्री वैजनाथजी अग्निहोत्री)

पूर्व के दो लेखों में बतलाया जा चुका है कि विषयोपभोग और उसकी वासना के वश प्राणी निरन्तर पतन की ओर अग्रसर होता हुआ विनष्ट हो जाता है। अपने वर्णाश्रमानुकूल नियत कर्मों के करने से विषयों से विरक्ति होकर उसका मार्ग ही परिवर्तित हो जाता है। जो कल तक विषय भोगों का अनुगमन करता हुआ उनके लिये लालायित रहता था, आज वही वैषयिक भोग उसे कष्ट कर प्रतीत होते हैं। अब उसे भोजन, शृङ्गारादि, में अरुचि रहने लगती है और चाहता है इनसे दूर भागना। अब विषयों की ओर प्रगति नहीं रही, वह निश्चल हो गया है। यही स्थिति वैराग्य की है। मानो कोई व्यक्ति पूर्ण वेग से जारहा है पश्चिम की ओर, सहसा ज्ञात होता है आगे तो महान गर्त है और अन्य कोई मार्ग भी नहीं। ऐसी स्थिति में उसे वहीं स्थित रहने के लिये बाध्य होना पड़ता है। यही स्थिति वैराग्यवान पुरुष की है, कि वह वैषयिक भोगों के मार्ग पर अब नहीं बढ़ सकता। कुछ काल के लिये उसी स्थिति में रहने के लिये बाध्य होना पड़ता है। किन्तु यह स्थिति अधिक काल तक रहने वाली नहीं, या तो उसे आगे बढ़ना पड़ेगा या अन्य दिशा की ओर मुड़ना अनिवार्य होगा।

वैराग्यवान् पुरुष की इस समय मानसिक स्थिति विलक्षण होती है, वह कुछ भी निश्चय नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में उसे आवश्यकता होती है किसी मार्ग-दर्शक की। भाग्यवशात् योग्य मार्गदर्शक मिलने पर वह उसकी मानसिक स्थिति का अध्ययन कर उचित मार्ग का निर्देश कर देता है। इस स्थिति वाले पुरुष के भी कई [भेद] होते हैं। किसी में भोगों के संस्कार अति [प्रबल] होते हैं. किसी में मध्यम तो किसी में न्यून। [यही] बात वैराग्य तथा बुद्धि के सम्बन्ध में भी कही [जा] सकती है। उत्तम, मध्यम एवं निम्न कोटि [के] वैराग्य तथा तीव्र, मन्द एवं साधारण बुद्धि भे[द से] वैराग्यवान् व्यक्ति तीन कोटि में विभाजित हो [जाते] हैं। न्यून वैषयिक संस्कार, उत्तम वैराग्य एवं [तीव्र] बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये 'ज्ञान-मार्ग' श्रेय[स्कर] होता है। मध्यम वैषयिक संस्कार, मध्यम वै[राग्य] एवं मन्द बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये 'भक्ति[-मार्ग'] श्रेयस्कर तथा अति प्रबल वैषयिक संस्कार, [निम्न] कोटि का वैराग्य एवं लौकिक बुद्धि वाले पु[रुष के] लिये श्रेयस्कर मार्ग होता है 'तप'। तीनों स[्वतन्त्र] और भिन्न मार्ग होते हुए भी तीनों का पर्यव[सान] एक ही तत्व में है। तपशील व्यक्ति को अ[न्त में] भक्ति-मार्ग में आना पड़ेगा, इसी प्रकार भक्[त को] भी अन्त में ज्ञान-मार्ग में आना पड़ेगा, बिना [इसके] आत्यन्तिक कल्याण नहीं।

विषयासक्त व्यक्ति के लिये वैराग्यवान् [हो] परमार्थ के प्रथम सोपान में अग्रसर होना है [।] इसका द्वितीय सोपान है 'तप'। प्रस्तुत ले[ख में] इसी द्वितीय सोपान तप पर कुछ विचार [किया] जा रहा है। साधारणतया नित्य, नैमित्तिकादि [कर्म] तप ही हैं, इसी प्रकार भक्ति एवं ज्ञान की [प्रार]म्भिक अवस्था भी तप ही है। बिना तप के [व्यक्ति] न तो भक्ति में अग्रसर हो सकता है और न [ज्ञान] में। तप व्यक्ति को मल हीन, वासना रहित [एवं] स्वर्ण-सा बना देता है। भगवान् ने गीता [में]

लाया है कि तप बुद्धिमान मनुष्यों को पवित्र करने वाला है। भगवान ने तप के लिये तो यहां तक कहा है कि तपस्वियों का तप मैं ईश्वर हूँ 'तपश्चास्मि तपस्विषु'। भगवान मनु का कहना है 'तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्। तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते॥' अर्थात् तप एवं आत्म ज्ञान ब्राह्मणों के लिये उत्कृष्ट मोक्ष के साधन हैं, तप से पाप (दूषित वैषयिक संस्कार) का नाश तथा ज्ञान से मोक्ष होता है। तप से वह महान शक्ति उपार्जित की जा सकती है कि जिसके प्रभाव से मनुष्य क्या देव, दानव तक वश किये जा सकते हैं। भगवान ब्रह्मा में सृष्टि रचना-सामर्थ्य तप से उत्पन्न होता है। संकल्प में अपार शक्ति भी तप से ही होती है। तथा शाप या वरदान का प्रभाव भी तप का ही परिणाम है। ईश्वर साक्षात्कार भी तप से ही होता है। तात्पर्य बिना तपस्या के पुरुष अभ्युदय या निःश्रेयस की ओर अग्रसर हो ही नहीं सकता।

प्राणी जो मन से मनन करता है, वही वाणी द्वारा व्यक्त करता है और उसी को कार्य रुप में शरीर से परिणत करता है। इस प्रकार मन के भाव ही वाणी द्वारा व्यक्त होकर वही स्थूल रूप शरीर के द्वारा हो जाते हैं, तात्पर्य सब स्थूल पदार्थों का कारण है 'मन'। उदाहरणार्थ किसी ने मन से स्त्री की कामना की, उसी कामना को वाणी द्वारा विदित किया और शरीर द्वारा स्त्री का भोग किया। इन तीनों मन, वाणी एवं शरीर, वाणी और शरीर के कार्यों का कारण है मन। यदि मन में कोई इच्छा न हो तो वाणी द्वारा उसका कथन भी न हो और न शरीर द्वारा कोई कार्य ही। इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि मन के आधीन वाणी और शरीर हैं, यदि मन कोई कामना न करे तो वे दोनों कुछ भी नहीं कर सकते। इसीलिये मन शुद्धि पर ही सब कुछ निर्भर है। अब यहां पर प्रश्न होता है कि यदि मन पर ही सब कुछ निर्भर है तो मन को विषय भोगों की ओर न जाने दे, शरीर और वाणी द्वारा तप की कोई आवश्यकता नहीं, केवल मन के तपशील हो जाने से दोनों स्वतः ठीक हो जावेंगे। प्रश्न यद्यपि ठीक प्रतीत होता है, किन्तु जो मन प्रथम कामना में स्वतन्त्र था वह वाणी एवं शरीर को विषयानुरक्त करके अब उनके आधीन हो चुका है। जब जिस ओर शरीरेन्द्रिय जाना चाहती हैं मन उनका रज्जु बन्धन के समान अनुगमन करता है। इस कारण प्रथम शरीरेन्द्रिय से मन को स्वाधीन करके फिर मनोनुकूल शरीरेन्द्रिय को प्रवृत्त किया जा सकता है। यही कारण है कि तप केवल मन से ही नहीं किन्तु वाणी और शरीर से भी करना होता है।

जिस प्रकार धर्म के दो भेद हैं, वैसे ही तप के भी दो भेद किये जा सकते हैं—सामान्य और विशेष। भगवान ने गीता में इन तपों पर किंचित प्रकाश डाला है। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि शरीर और इन्द्रियों के आधीन मन हो चुका है। इसी कारण भगवान प्रथम तप शरीर का ही बतलाते हैं 'देव द्विज गुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।' अर्थात् देवता, ब्राह्मण, गुरु और बुद्धिमान, ज्ञानी इनकी सेवा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर से निष्पन्न होने के कारण शारीरिक तप हैं। यहाँ पर ध्यान देना चाहिये कि भगवान ने शारीरिक तप में देव, द्विजादि पूजन और शौचादि का कथन कर तप क्यों कहा? विचार करने से ज्ञात होता है विषयेन्द्रियों का दास अपने से श्रेष्ठ किसी को नहीं समझता वह समझता है 'ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी' मैं समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हूँ, इस लिये मैं ईश्वर हूँ, भोगी हूँ, सब प्रकार से सिद्ध हूँ, मैं बड़ा बलवान और सुखी हूँ। जब यह भावना है तब वह किसी अन्य की सेवा न करके स्वयं सेवा कराना चाहता है और सबको अपने से

हेय समझता है। इस देहाभिमान को निवृत्त कर के सबके प्रति सेवा भाव को लाना ही भगवान का उद्देश्य है, जिससे भोगों से शरीर विरक्त होकर बुद्धिमानों के संसर्ग से सद्गुणों का विकास हो। विषयी पुरुष का व्यवहार 'न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषुविद्यते' अपवित्रता, अनाचार और मिथ्यात्व का होता है। इसी को दूर करने के लिये पवित्रतादि का विधान शारीरिक तप में भगवान करते हैं। विषय भोगों को ही सर्वस्व मानने वाला व्यक्ति कहता है कि जैसे हम असत्य से पूर्ण हैं, वैसे ही यह समस्त संसार भी असत्य-वादी और प्रतिष्ठा रहित है एवं कोई जगत् का निर्माणकर्ता ईश्वर भी नहीं है। काम से प्रेरित स्त्री-पुरुषों का संयोग हो जाने से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ है, इस जगत् का कारण काम ही है, दूसरा और क्या हो सकता है? 'असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्। अपरस्परसंभूतं किमन्यत्काम हेतुकम् ॥' इन दूषित वाक्य प्रलापों का निवारण करने के लिये वाणी सम्बन्धी तप कहते हैं 'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वा-ध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥' अर्थात् जो वाक्य दुःखकर न हों, सत्य, प्रिय और हितकारक हों, तात्पर्य इस लोक तथा परलोक में सर्वत्र हित करने वाले हों तथा स्वाध्याय-शास्त्रों का अभ्यास करना-वाणी का तप है। इसी प्रकार मन की शान्ति, स्वच्छता, सौम्यता-मन की शान्ति वृत्ति, मन का संयम; सब ओर से सामान्य भाव से मन का निरोध, और व्यवहार काल में दूसरे से छल-कपट से रहित होना, यह मानसिक तप कहलाता है 'मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥' विषयी व्यक्ति के मन में कभी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का तांता बंधा रहने से कभी शान्ति नहीं होती, पाखण्ड, मान और मद से युक्त मन वाले, अशुद्धा-चारी, अज्ञान से मिथ्या आग्रहों को ग्रहण कर व्यवहार करने वाले होते हैं कामनाश्रित दुष्पूरंदम्भमानमदान्विताः। मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥' इसी प्रकार से कभी समाप्त न होने वाली चिन्ताओं के आश्रित रहने से कभी शान्ति विषयी व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकती। इसी कारण मानसिक तप में मनोनिग्रह, सौम्यता, मनः प्रसादादि का विधान भगवान ने किया। सबका निष्कर्ष यही कि मनुष्य का व्यवहार सदाचार सम्पन्न हो। चाहे वह मन से हो, वाणी या शरीर से हो। कल्पनाओं के दुर्ग निर्मित न कर निश्चिन्त रहे, सत्य, प्रिय भाषण करे, सरलता, शुद्धता, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन का निर्माण कर अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहकर मरणधर्मा से अमरत्व की ओर प्रगति करे। यह स्वाभाविक या सामान्य तप है।

सामान्य तप में किसी वर्णाश्रम का व्यवधान नहीं है, किन्तु विशेष तप में भिन्नता है। सामान्य तप का विशेष तप सहायक है। विशेष तप में व्रत एवं ऋतुओं से शरीर का शोषण करे, भोजन कन्द, मूल, फल एवं पत्रादि का करके मन को निर्बल कर दे। निवास स्थान नगर एवं ग्राम-कानन में ही रखे। वस्त्र के स्थान पर वल्कल धारण करे या तृण, पर्ण और मृग-चर्मादि का सेवन करे। केश, रोम, नख, श्मश्रु और शरीर के को बढ़ने दे, दन्तधावन न करे, जल में घुस त्रिकाल स्नान करे। भूमि पर शयन करे। तप वृद्धि के लिये ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि से शरीर तप्त करे, वर्षा में छाया रहित स्थान में रह वर्षा का सेचन करे, हेमन्त में गीले वस्त्र धारण करे 'ग्रीष्मे पंचतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः आर्द्रवासास्तु हेमन्त क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥' चान्द्रायण आदिक व्रतों को करे। तात्पर्य यही विषयों का जहां दर्शन ही न हो ऐसे निर्मित घर में निवास करे। शरीर को इतना कष्ट सहिष्णु, श्रम विहीन एवं अशक्त बना ले कि इन्द्रियाँ स्वाभाविक शिथिल होकर विषय भोगों से विरत रहें।

शुद्ध सात्विक फलादि केवल शरीर धारण निमित्त होने से मन भी वैसा ही शुद्ध सात्विक निर्मित होता है, जिससे किसी प्रकार का विषय चिन्तन होना सम्भव ही नहीं रहता। वाणी तो ऐसी अवस्था में सर्वथा मूक हो ही जाती है। ऐसी स्थिति में तप के संग ईश्वर-ध्यान अथवा ब्रह्मत्व के लिये उपनिषदों का मनन अवश्य करे। जिस समय इन तपों की ओर दृष्टि जाती है तो बरबस ध्यान जगन्माता पार्वती के तप की ओर आकृष्ट हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास तप का वर्णन करते हैं 'सम्वत् सहस मूल फल खाये। शाक खाय सत वर्ष गंवाये॥ कछु दिन भोजन वारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा॥ बेल-पात महि परे सुखाई। तीन सहस सम्वत् सो खाई॥ पुनि परिहरेउ सुखानेउ पर्णा। उमा नाम तब भयउ अपर्णा॥ देखि उमहि तप खीण शरीरा। ... ., आदि से। इसी प्रकार भरत, रावण, कुम्भकर्णादि एवं भागीरथ आदि अनेकों गाथाओं का चित्र सहसा उपस्थित हो जाता है। भगवान् कृष्ण का कहना है 'यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसंमहत्। कामायाल्पीयसेयुंज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः॥' तात्पर्य जो कोई इस अति कष्ट साध्य मोक्ष-फलदायक तप को क्षुद्र फलों (सांसारिक या स्वर्गिक आदि) की कामना से करता है, उससे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा।

इन तपों के सम्बन्ध में एक बात का ध्यान आवश्यकीय है और वह है श्रद्धा। क्योंकि बिना श्रद्धा का किया हुआ हवन, दान, तपा हुआ तप तथा अन्य नमस्कारादि जो भी कर्म है, वह सब हे पार्थ! असत् है, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि वह न तो इस लोक में सुखदायक होता है और न मृत्यु के पश्चात् फल वाला ही।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥' इस कारण प्रत्येक कर्म में श्रद्धा आस्तिक्य बुद्धि तथा शास्त्र विधि की आवश्यकता है। प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्व, रज, एवं तम। इन तीनों गुणों के न्यूनाधिक मिश्रण से गुणों के अनेक भेद हो जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य में, मनुष्य ही क्यों प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु में इन तीन गुणों का होना अनिवार्य है! व्यक्ति के गुणानुसार उसके समस्त कर्म होते हैं, चाहे वह कर्म लौकिक हों या पारलौकिक। इन गुणानुसार तप के भी प्रमुख तीन भेद हो जाते हैं, अर्थात् मनुष्यों द्वारा करने पर सात्विकादि भेद से तप तीन प्रकार के हो जाते हैं। जो फलाकांक्षा रहित, समाहितचित्त पुरुषों द्वारा उत्तम श्रद्धापूर्वक किया जाता है, ऐसे उस तप को सात्विक कहते हैं। जो तप सत्कार, मान एवं पूजा के लिये किया जाता है, अर्थात् मेरी प्रशंसा प्रणामादि तथा अर्चन, भोजन आदि हो इस भावना से किया जाता है और जो दम्भ से किया जाता है. वह तप राजसी, अनिश्चित फल वाला एवं अनित्य कहा गया है 'श्रद्धयापरया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः। अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते॥ सत्कारमानपूजार्थं तपोदम्भेन चैवयत्। क्रियते तदिहप्रोक्तं राजसं चलमध्रुवं॥' 'मूढग्राहेणात्मनो-यत्पीड़या क्रियते तपः। परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥' अर्थात् जो तप मूढ़ता—अज्ञानपूर्वक निश्चय से, शरीर को पीड़ा पहुँचा कर या दूसरे का अपकार करने के लिये किया जाता है, वह तप तामसी कहा गया है। उत्तमोत्तम तप तो वह है जिसमें आने वाले सुख दुःखों का स्वागत करे, जाने वाले का निवारण न करे, जैसे प्राप्त हो वैसे सहन करे 'आगतो स्वागतं कुर्यात् अगच्छन्तं न निवारयेत्। यथा प्राप्तं सहेत सर्वं सा तपस्योत्तमोत्तमाः॥' इस सम्पूर्ण विवेचन का तात्पर्य यही कि शुद्ध सात्विक गुणों से युक्त एवं श्रद्धापूर्वक तप करने से पुरुष का कल्याण निश्चित है।

यहाँ एक निवेदन और भी कर देना उचित है, कि किसी भी साधन में प्रवृत्त होने पर बिना

(शेष पृष्ठ ८ पर)

भक्त भिखारी ठाकुर "हजाम"

(ले० राजनारायण द्विवेदी)

स्वनाम धन्य भिखारी ठाकुर जाति के हजाम हैं। घर है कुतबपुर जिला छपरा। स्वरचित पचांश में पता देते हैं—कहत भिखारी नाई, घर वा कुतुबपुर में भाई जेकर नाम भइल बाटे बहुत दूर॥ भिखारी ठाकुर गायक हैं, और हैं नाथ के गरोहिया। पर इनके निकट जाकर कोई बात करे तो मन करेगा कि रात दिन इनके सम्पर्क में रहे और इनकी मीठी मीठी बात सुनते रहें। इनकी बात इतनी अति मधुर सरस और चमत्कार पूर्ण होती है कि सुनाने वाला आत्म विभोर हो जाता है। विनयी इतने हैं कि जाति अवस्था तथा रंग का बिना विचार किये ही जिस किसीके सामने कर बद्ध प्रार्थना करते हुए जिज्ञासा करते हैं—हे पृथ्वी नाथ ! हे कृपा निधान। आपका शुभागमन कहां से हुआ; आप हमें दर्शन देने के लिए किस ओर से कष्ट किये—इत्यादि प्रश्नावलियाँ फुलझड़ी की तरह झड़ने लगेंगी। आतिथ्य के निमित्त जल-जलपान फौरन प्रस्तुत समझें।

ये पढ़े लिखे नहीं हैं, पर उपदेश देने में निपुण कलाकार हैं। इनके भजनों का पूरा पूरा रेकार्ड हो चुका है। नाटक करते और नाटक का विषय रहता है समाज सुधार देश सेवा और राम भक्ति का प्रचार। ये कविता करते हैं और उस कविता में इनकी विराट भावना का पूर्ण सामंजस्य रहता है। ये अपनी भावना को प्रश्रय देते हैं। इनके व्याख्यान तथा गीत में जादू का सा असर है। कोई भी इनके सर्वांगपूर्ण नाच को देख ले, गाना को सुन ले तो वह मंच पर ही मुग्ध हो जाएगा। भिखारी अपने गाने के साथ लोगों के मुख पर आने लगते हैं। ठाकुर स्वयं कहते हैं:—इनको लोग कहां कहां स्मरण करते हैं—

केहु जपत वा गाय चरावत,
केहु जपत बनिहारी में।
केहु जपत वा हम ना देखनीं,
ऊपर भइल बुढ़ारी में।
भोजन करत में बालक सुमरित,
भात दाल ले थारी में।
केहु जपत वा चाउर तउलत,
केहु जपत मनिहारी में।
केहु जपत वा, सेम साग में,
भंटा तुरत कोड़ारी में।
केहु जपत वा आर गाछ पर,
केहु जपत बसवारी में।
केहु जपत वा परिहथ धइ ले,
जातेत खेत व धारी में।
केहु जपतवा हयदल पप दल,
मन्दिर केहु अटारी में।
केहु जपतवा जतरा कह ले,
बइठल रेल सवारी में।
केहु जपतवा लोग फंस,
बलसि टिकुली चोली सारी में।
केहु जपत वा दरसन कई नी,
पाप गइल गोनसारी में।

बलिया, छपरा और आरा के तो बच्चे तक गुण गान करते हैं। भिखारी को हृदय मिला है वस्तु स्थिति के निकट पहुंचने के लिए। तन मिला है जन-सम्पर्क में रहने के लिए। ये हैं मक्खन की तरह मुलायम, दर्पण की तरह स्वच्छ और शांत। अभिमान शून्यता इनकी अपनी विशेषता है। आज से वर्षों पहले इनके मन में समाया कि

रामजी का नाम जप कैसे हो। और देव दुर्लभ इस देह की सार्थकता का महत्व कैसे अनुगुण रहे। तर्क की कसौटी पर इन्होंने मन को अनर्थों की जड़ माना। अनुरागी मन माया में रहते हुए माया का विषय न बन जाय इस आशंका से मन को अवध बिहारी के चरणों लगाना उचित समझा। अतः मन तुलसी कृत रामायण में लगा रामायण खोले···! उन्हीं के शब्दों में खोलि पोथी देखली चौपाई।

और फुलवारी के जगह बुझाईल।
तुलसी कृत में मन लपटाईल॥
निजपुर में करि के रम ली ला,
नाथ के तब वन्द ली सिल सिला।

रामायण पढ़ने से इनको प्रेरणा मिली और इनका रूपक चल निकला। नाच की मंडली बनी उसमें रामजी का ब्याह प्रसंग से संबंधित स्वांग होने लगा। परिछावन इन्हें विशेष रुचिकर है।

अवध से अइलन चित चोर बा,
हे सखि चल वर परि छे।
बाल वृद्ध युवती उठि धउरत,
करि करिके आपुस में शोर बा॥ हे०
साजि के सिंगार सब गहना पहिरल,
नीमन लंहगा पढोरवा।
दही अछत गुर दउरा में धरि लेहु,
भरि लेहु से नुर सिन्होरवा। हे०
अवध के लोग खखुआइल अइलन,
खाये खातिर केरा परोरवा।
कहत भिखारी दुलहिन जोग दुलहा,
सांवर, सहवनिया गोरवा॥ हे०

इनके नाच का स्वांग भक्ति रस से ओत प्रोत रहता है। दर्जनों नर्तक हैं जो राम का विवाहोत्सव नाटक करते हैं। इस नाटक के आचार्य हैं भिखारी ठाकुर। इनका ध्येय है राम नाम का प्रचार। परन्तु जीवन निर्वाह भी तो आवश्यक है। अतः काम करते हुए नाम हो इनके हृदय की प्रचण्ड आवाज है। भक्त हृदय चाहता है कि काम के साथ साथ नाम धुन भी बना रहे। कहीं भी रहकर नाम·· भजन में होशियार रहना चाहिए। मृत्यु का तो ठिकाना नहीं। क्या जाने कहां धर दबावें। मन को संबोधन—"राम कहु राम कहु राम कहु मनवा, राम के कहे से बनि जहें सब कामवा' पूर्ववर्ती कवियों ने भी जो भक्त हैं घोषणा की है; जैसे—मलूक—'राम कहो राम कहो राम कहो बावरे"। सूर—जो तू राम नाम चित धरतो—। सुन्दर—"बैठत राम हि उठत रामहि बोलत रामहिं राम रहो है—तुलसी—राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे···. उसी तरह भिखारी ने—राम राम कहवाने की जोरदार अपील की है। उन्हीं के शब्दों में—

(अ) राम राम राम राम राम राम रटना।
राम राम०
राम राम कह कह कहके,
उद्यम खटना।
छपरा में रह चाहे आरा
चाहे पटना। राम राम०
राम राम चटनी के
सब कुछ में चाटना।
कहत भिखारी राम
नाम से न हटना। राम राम०

(आ) राम राम बोल बिहान
भइल तोता। राम राम०
भोजन शयन करत रात बीतल,
कब ले लुकइब अलोता। राम राम०
गंगा किनारे भीर भइलवा,
सब केहु मारतवा गोता। राम राम०
फूल बेल पत्र सहित जल ढरकत
हर हर हर बंम होता। राम राम०
कहत भिखारी निगम होइ गइल,
बोल नात बन जा श्रोता। राम राम०

(६) राम राम राम कह राम राम राम।
राम राम भोर कह राम राम शाम ॥
राम राम बारह बजे तीन गो मुकाम।
राम राम चलत में खाड़ा में राम ॥
राम राम बैठत में हो के निसकाम।
स्वांसा में राम राम सुतला में राम ॥
भोजन में राम राम रोजन कह राम।
राम कह कहे भिखारी हजाम ॥

भिखारी ठाकुर का कहना है कि हे भाई। रात बीत गई और नाम नहीं लिया! भगवान् से छिपकर कब तक रहोगे। वे तो सब जगह हैं। वे फिक्र मत सोवो। राम राम जपो। पुनश्च उनकी उक्ति है कि—मैं यह नहीं कहता कि तू बेकाम के बनो! अरे भाई जी जै जै सियाराम बोल उठो। और अपने रोजगार के लिए कठिन परिश्रम भी करते रहो। घर पर रहो या परदेश में रहो जप करते रहो। राम नाम की चटनी चाटते रहो। समय का तालिका में कहते हैं कि—राम राम भोर में, राम राम शाम और बारह बजे इन तीन मुकामों में तो हर्गिज भूल मत करो। ऐसा राम राम कहो कि स्वप्नावस्था में भी राम राम की ध्वनि होती रहे। सच में भिखारी ठाकुर वैष्णव हैं। इनका स्वभाव और व्यवहार भक्ति रस से तर है। हृदय विराट भावना की झांकी है, जनता की रुचि का पारखी है।

(शेष पृष्ठ ५ का)

घबड़ाये, अनिश्चित काल तक साधन करते रहना चाहिये। प्राणी के इतने प्रबल संस्कार अनन्त जन्मों का फल है, इनके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि एक वर्ष या एक जन्म में ही विनष्ट हो सकेंगे, अतः मुमुक्षु पुरुषों को आलस्य रहित साधनों में प्रवृत्त होना चाहिये 'पावनानि मनीषिणः' में भगवान ने मनीषी शब्द से फलकांक्षा रहित पुरुष की ओर संकेत किया है। तात्पर्य किसी भी कामना को हृदय में स्थान न देकर तप करने वाले पुरुष को पाप—अनेक जन्मों के दूषित वैषयिक संस्कार नष्ट होकर, शुद्ध, पवित्र कांचनमय हृदय बन जाता है।

दानदाताओं को सूचना

सर्व सज्जनों को सूचना दी जाती है कि श्री भगवान-भजनाश्रम को जो दान मनीआर्डर बीमा द्वारा प्राप्त होता है उसकी रसीद उसी दिन डाक द्वारा दाता महानुभाव की सेवा में भेज दी जाती है अगर किन्हीं दाता महानुभाव को अपने दान की छपी हुई रसीद श्री भगवान भजनाश्रम की प्राप्त नहीं हुई है तो उन्हें तुरन्त सूचना देनी चाहिये एवं भविष्य में कभी किन्हीं दान दाता को अपने दान की रकम की रसीद प्राप्त नहीं हो तो तुरन्त हमें सूचना देनी चाहिये इसमें बिल्कुल विलम्ब नहीं करना चाहिये।

कृपया पत्र आदि एवं मनीआर्डर बीमा निम्न पते पर भेजने की कृपा करें

मंत्री श्री भगवान-भजनाश्रम मु. पो. बृन्दावन (मथुरा)

दिव्य धाम के पथपर

(ले०—अवधकिशोर श्रीवैष्णव, वेदान्तरत्न, साहित्य-धुरीण)

(गतांक से आगे)

यह परम धन तो प्रभु कृपाकर जिसको देता है वही प्राप्त उसको कर सकता है, दूसरा कोई मार्ग (उपाय) प्राप्त करने का है ही नहीं। वह जिसपर ढर जाता है उसीके सामने अपना रहस्य प्रकट कर देता है।" "बड़ा साहसी, परिश्रमी, दुश्चरित्र, अशान्त मनवाला, चञ्चल कितना भी बड़ा ज्ञानी क्यों न हो जाय उसको प्राप्त नहीं कर सकता है, परन्तु उसके विपरीत जो कृपा धन पा चुके हैं वे—

ते वै विदन्त्यति तरन्ति च देवमायां—
स्त्री-शूद्र-हूण, शबरा अपि पापजीवाः।
(श्रीमद्भागवत)

\+ \+ \+ \+

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

तथा—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्॥
(गीता, १२।७)

"स्त्री, हूण, शबर, खश आदि पापी जीव भी उनके शरण जाकर उनकी कृपा के प्रभाव से देवमाया का स्वरूप जान लेते हैं और उसको तर भी जाते हैं।" "मेरी दुरत्यय माया जो मेरे शरण आते हैं वे ही तर सकते हैं। जो मेरे चरणों में चित्त लगाये हुए हैं उनको मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार सागर से पार कर देता हूं।" आदि वचनों से अज्ञेय तत्व का ज्ञान, अप्राप्य की प्राप्ति और दुस्तर का तरण भगवत कृपा पात्रों के लिये परम सुलभ सिद्ध हो जाता है। श्रीमद्वाल्मीकिरामायणमें—

लोकासान्तानिकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः।
यच्चयंगतं किञ्चित्त्वामेवमनुचिन्तयन्॥
प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति भक्त्वातत्सन्तानेषु निवत्स्यन्ति॥
(उत्तरकांड ११०।१८,१९)

जो तिर्यक् योनिमें गये हुए भी आपका ही अहर्निश स्मरण करते हैं, सर्वतोभावेन आपको ही भजते हैं और आपका ही मन में सदा चिन्तन करते हुए प्राणों का परित्याग करते हैं, वे भी सान्तानिक लोक में जाकर निवास करेंगे।" इन वचनों से भगवान् का स्मरण करने वालों को ही प्रभु के धाम का निवासी बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है, यह बात श्री ब्रह्माजी ने कही है। सान्तानिक नाम प्रभु के दिव्य धाम साकेत का ही पर्याय (दूसरा नाम) है।

उपर्युक्त अवतरणोंके सिवा और सैकड़ों प्रमाण आगे ग्रन्थ में मिलेंगे, यह मोक्ष धाम प्राप्त करना ही मुमुक्षुओं का एकमात्र ध्येय होना चाहिये। आजका संसार अशान्ति की ज्वालामें जल रहा है, वह भूल गया है सर्वजगदाधार श्रीरामजीकी जो शरणागति स्वीकार करते हैं "तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्" उनको ही अविचल नित्य सुख प्राप्त होता है, जो मैं-मैं, तू-तू की मारा मारी से पिंड छुड़ाकर 'दिव्यधाम के पथ पर चलता रहेगा, वही वहां तक पहुंचेगा दूसरों को तो दुःखसागर में ही गोते लगाने पड़ेंगे।

आज हम "जिमि हरिशरण न एकौ बाधा" भूलकर स्वतन्त्र बनना चाहते हैं, इसलिये हमारे हृदय से पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय की ईश्वरीय भावना का लोप होगया है और हम एक भाई का गला घोंट कर, एक देश या जाति का, एक पार्टी या समाज का विनाश कर अपने आपको सुखी बनाने के फेर में यमयातना जैसा घोर दुःख एवं काम, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या की आगमें धधकते रहते हैं।

आओ! प्यारे आत्माओ! आओ! तुम हमारे भाई हो, उस अनन्त वैभव के पूर्ण अधिकारी हो, हम सब मिल कर दिव्य धामके पथ पर प्रयाण करें, इन सब बाधाओं से मुक्त होकर उस जगह चले जायँ 'यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः" जहां जाकर फिर बार बार आना नहीं पड़ता।

१—यह 'त्रिपाद् महाविभूति' श्रीसाकेत धाम' की भूमिका का कुछ अंश है। 'दिव्य धाम की झांकी' में दिव्य धाम का सन्तजनों द्वारा भावनागम्य रहस्य वर्णित है वे दोनों ग्रन्थ अभी अप्रकाशित हैं।

भरत का राम प्रेम

(लेखक—पं० श्री गोविन्दजी दुबे 'साहित्यरत्न')

(गतांक से आगे)

कितने उच्च भावों का आदर्श था आपके हृदय का कितनी सूक्ष्म प्रवृति थी हृदय की भगवान् राम के लिए। इतना ही क्या, उन्होंने अपना, निश्चय रख दिया कि—

एकहिं आँक यहै मनमाहीं ।
प्रातकाल चलिहउँ प्रभुपाहीं ॥
आपनि दारुण दीनता, कहौं सबहिं सिरुनाय।
देखे बिनु रघुवीरपद जियकी जरनि न जाय॥

संसार के लोगों के हृदय पर उसीकी बातोंका प्रभाव पड़ता है जो जैसा कहता है तदनुरूप आचरण भी करता है, जिसके हृदयके भाव विशुद्ध रहते हैं उसके हृदय का प्रभाव ठीक पड़ता है। भरत सच्चे रामप्रेमी थे अतः उनकी रामानुरागमयी मधुरवाणी ने समस्त सभासदों को मंत्रमुग्ध की भांति बना दिया वे सबके सब चकित हुए उनकी ओर देखते रहे स्तब्ध होगए वे सब के सब। जब कुछ समय पश्चात् विचार आया तब सबके सब भगवान् राम के समीप जानेके लिए तैयारी करने लगे, सब माताएँ, मंत्रिगण, सपत्नीक गुरुवर आदि समस्त समाज चित्रकूट चलने के लिए योग्य और उचित वाहनों को शोभित करने लगे, भरत ने राज्य की उचित व्यवस्था की इसलिये कि यह सब सम्पत्ति भगवान् रामकी है अतएव यदि बिना प्रबन्ध छोड़कर जाता हूं तो उचित नहीं क्योंकि सेवक धर्म के विपरीत बात होती है ऐसा विचार करके—

अस विचारि सुचि सेवक बोले ।
जे सपनेहुँ निज धरम न डोले ॥
घर पुर दस राखि रखवारे ।
राम मातु पहँ भरत सिधारे ॥

इस प्रकार सबकी समुचित व्यवस्था करके दोनों प्रियतम मिलन की सदिच्छा से चित्रकूटको प्रस्थानित हु[ए]।

जिस किसी भी जीव को जीवन में अपने अनन्त [प्रि]य के बिछुड़े प्रियतम का साक्षात्कार हो जाता है वह [त]न्मय हो जाता है उसकी वासनाएँ, कामनाएँ इच्छाएँ भाव[ना] आदि समस्त कार्य तदनुरूप होजाते हैं फिर उसे [अ]पने प्रियतम के सिवाय अन्य कोई दिखाई नहीं देता। गो[पियाँ] कहती हैं—'बावरी वे अखियां जरिजाइ' जो सांवरो [छाँड़ि] निहारत गोरो'।

भरत एवं समस्त नरनारियों की आंखों पर भी [राम] रंगका चश्मा चढ़ा था तब ही तो वे एक स्वर से कहते हैं कि—

जरउ सुसम्पति सदन सुख,
सुहृद मातु पितु भाइ ।
सन्मुख होत जो रामपद,
करइ न सहस सहाइ ॥

जिनके हृदय में स्वामी सेवक भावसे अनुरक्ति [रहती] है, जो परम भक्त अपने आपको प्रभुका अनन्य सेवक मा[नते] हैं वह कभी भी अपने स्वामी का अपमान सहन नहीं सकता, अपमान सहन करना तो दूर रहा, अपमान [की] संभावना भी उसे असह्य रहती है। निषाद और ल[क्ष्मण] इसी प्रकार के भक्तों में से थे, भरत को ससैन्य [आते] देखकर रामापमान की कुतर्क ने निषाद के हृदय को भ[रत से] लोहा लेने को बाध्य किया उसके परिणाम स्वरूप [निषाद] भरत से लड़ने की तैयारी करने लगा उसने निश्चय किया

सन्मुख लोह भरत सन लेऊँ,
जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥

परन्तु यह सब निषाद के हृदय की कल्पनाओं का साम्राज्य था जो कि निषादके रामप्रेम की पराकाष्ठा को द्योतित करता है परन्तु वास्तविक बात वैसी नहीं थी। भरत की सहायता उस समय ज्योतिष-शास्त्र ने की जिससे निषाद के भावों में परिवर्तन हुआ, एक वृद्ध द्वारा की छींक के शकुन का परिणाम विचारकर उन्होंने भरत से मिलने का निश्चय किया, भरत के अन्तर प्रदेश के भावों को जानने की इच्छा से उसने तीन प्रकार के (पदार्थों की अर्थात् सात्विक, राजस, तामस) भेंट तैयार की और परीक्षार्थ मिलने पहुंचा, परीक्षा में भरत उत्तीर्ण हुए। दो रामप्रेमी आज गले से गला लगाकर मिले, निषाद ने आगत अतिथियों का तद्नुरूप स्वागत किया 'जो जेहि लायक सो तेहि राखा' भरत के हृदय में तो रामप्रेम की अग्नि जल रही थी जिसके परिणाम स्वरूप उनके हृदय में भगवान् राम की शयनस्थली देखने की इच्छा हुई। भरत ने निषाद पर अपने भावों को प्रगट किया भरत की भावनानुसार निषाद ने उन्हें इच्छित स्थान दिखाया बस क्या था! उस स्थान के दर्शन से भरत के हृदय से मानों रामप्रेम चू पड़ा और वे उसे संभाल नहीं सके जिससे वे कुछ भी बक उठे— 'भूपति भवन सुभाव सुहावा। सुरपति सदन न पटतर पावा' ॥ आदि

जगत् की अधिष्ठात्री सीता जिसके एक एक अंश से करोड़ों त्रिदेवियाँ उद्भूत होती हैं, जो संसार के उद्भव, पालन एवं विनाश की मूल कारण है, जिसके कृपा-कटाक्ष को देवता लोग हमेशा चाहते हैं, वही सीता दैवात् आज इस कुशशय्या पर सोवे, अहा!! क्या ही अनर्थ हुआ निस कैकेयी द्वारा। सरकार राघवेन्द्र जिनकी भृकुटि विलास से संसार का विनाश हो जाता है, जिसके द्वारा समस्त संसार को सब प्रकार का सुख मिलता है; भला, उसने कभी स्वप्न में भी दुःख काहे सुना होगा महाराज दशरथ जिन्हें अपने नेत्रों के पलक की भांति रखते थे वे ही आज इस सघन बन में कुशसाथरी पर सोए।

रामसुना दुख कानन काऊ।
जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फणि मणि जेहि भांती।
जोगवहिं जननि सकल दिनराती॥

इस प्रकार भरत ने बहुत कुछ रोना रोया, अपनी दैन्यता, मातृकृत कुकर्म, अवध के वैभव की महत्ता, दशरथ का रामप्रेम, माताओं की सद्भावनाएँ; आदि जब इस प्रकार अनेक भावों से आप बिकल हो जाते हैं तब निषाद उन्हें समझाते हैं, मूर्च्छा दूर हुई, नशा उतरा, चेतना हुई। वाह्य ज्ञान हुआ तब वे पुनः प्रियतम मिलन की सदिच्छा से ससैन्य चित्रकूट प्रयाण करते हैं।

रामभक्त रमाविलास को रामप्रेम के आगे तुच्छ समझता है। महर्षिभरद्वाज हैं परमत्यागी, तपस्वी, वीतराग सन्त भरद्वाज का अबलक का साधनामय एकांत जीवन था शत्रुमित्र में समान भाव था उनका। आज तक की साधना के फलस्वरूप एक रामप्रेम की प्रतिमूर्ति उनके चरणों में दण्डवत् पड़ी हुई है, रामप्रेमी के नाते मिले हृदय की भावनाओं का परस्पर विनिमय हुआ कुशल क्षेम के अनन्तर भरत ने अपना पश्चाताप और अपना निश्चय जिसे लेकर अबतक वे अयोध्या से आए थे प्रगट किया।

मोहि न मातु करतब कर सोचू।
नहिं दुख जिय जग जानहिं पोचू॥
× × ×
एहि दुःख दाह दहइ नित छाती।
भूख न बासर नींद न राती॥

भारतीय संस्कृति ने अतिथि सेवा का बड़ा महत्व बताया है। पूर्व कालीन गृहस्थ अतिथि को खोजकर लाते थे और उनका समुचित सम्मान करते थे तब गृहस्थ परिवार

स्वयं भोजन करता था जिस दिन कोई अतिथि यदि नहीं मिला उस दिन उस परिवार को भूखा ही रह जाना पड़ता था। शास्त्रों में इस प्रकार के वाक्य मिलते हैं —

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ मनु०

जिस गृहस्थ के घर से अतिथि विमुख हो जाता है, वह अतिथि अपने पाप गृहस्थ को देकर पुण्य लेकर वापिस होता है।

महर्षि भरद्वाज के आश्रम से परम भागवत भरत जैसे अतिथि बिना सम्मान लौट जावें यह कब संभव था। इस समय उन्होंने अपनी तपस्या के प्रभाव से वहां स्वर्गीय वैभव उपस्थित किया। यह भरत के राम प्रेम की परीक्षा थी अथवा अतिथि सेवा। कुछ भी हो भरत तो उस सम्पत्ति से इस प्रकार अलग रहे।

सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार॥

इस प्रकार रामप्रेम विजयी भरत लुब्ध चंचरीक की भांति अपने हृदयेश्वर के पादपद्मों की आकांक्षा से चित्रकूट की ओर प्रयाण करते हैं।

हृदय के भाव कभी छिपते नहीं, मानव हृदय की जैसी वृत्ति, भावना, कल्पना और इच्छा होती है तदनुसार ही उसके कार्य होते हैं, भरत की भी यही स्थिति थी वे अपने सखा निषाद के साथ हाथ में हाथ डाले रामरंग में रंगे चले जारहे हैं—"चले सखा करसों कर जोरे।" कोमल भावों का भण्डार हृदय अनेकों प्रकार की विचार शृंखलाओं में उलझा हुआ कभी तो आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करता है और कभी पीछे को लौटाता है। स्वामी की महत्ता और स्वभाव उन्हें आगे बढ़ने को प्रेरित करता है, अपने दोष एवं माता की कठोर करतूति उन्हें पीछे हटने को बाध्य करती है इस प्रकार भरत के हृदय की तत्सामयिक स्थिति जल अलि के समान होरही थी। सिर पर जटाओं का अनमोल मुकुट है, पदत्राण रहित, कोमल चरण हैं, नेत्रों से अविरल अश्रुप्रवाह होरहा है, जिह्वा निरन्तर नाम-जप में संलग्न है ऐसे भरत अपने रामोच्चारण से वज्र एवं पत्थरों को द्रवित करते हुए चले जारहे हैं, रामनिवास पर्वत के दर्शनों ने भरत के हृदय में अत्यन्त आनन्द का प्रादुर्भाव कराया।

भगवान् राम का स्वभाव ही ऐसा है कि उन्हें जो जैसा भजता है उसे वे भी वैसा ही भजते हैं ('ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्') (गीता ४।११) उनकी यह प्रतिज्ञा है—अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विजः। साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।

ऐसे भक्ताधीन भगवान् लौकिक मर्यादाकी रक्षा (भागवत ९।४३ से ६८) के भाव से भरत के समीप स्वयं नहीं आ सके हैं, सरकार की वह झांकी बड़ी मनोरम थी, सिर पर जटाओं का मुकुट था, चारों ओर वृन्दावन लगा हुआ था जिन्हें सीता और लक्ष्मण ने अपने हाथों जल डालकर पोसा था, सरकार का नीलवर्ण उस समय करोड़ों कामदेवों की कान्ति का अपहरण कर रहा था, चारों ओर मुनिमण्डल था, बीचमें एक वेदिका थी जिसपर सरकार आद्यशक्ति सहित विराजमान ऐसे मालूम पड़ते थे मानों ज्ञान की सभा में भक्ति और सच्चिदानन्द हों। सरकार धनुष-बाण पर हाथ फेरते हुए अपने भक्तों के हृदय की जलन का अपहरण कररहे थे वेदिकासीन सरकार की सेवा में प्रभु लक्ष्मण तत्पर थे ऐसे समय में सरकार के श्रीचरणों में प्रणाम करने की सदिच्छा से एक पागल चिल्लाता है कि

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं।
भूतल परेउ लकुट की नाईं॥

लक्ष्मण सरकार की सेवा में संलग्न थे भरतने सरकार के श्रीचरणों में दूर से प्रणाम किया, उस समय लक्ष्मण के हृदय में एक बड़ा सांमजस्य उपस्थित हुआ। एक ओर तो स्वामी की सेवा का भार और दूसरी ओर भ्रातृप्रेम। कुछ समय सोचने पर भ्रातृप्रेम ने स्वामी सेवा पर विजय पाई और लक्ष्मण को यह कहना ही पड़ा कि 'भरत प्रणाम करत रघुनाथा' लक्ष्मण द्वारा इस प्रकार भरत के प्रणाम करने को कहलानेमें भी एक स्वारस्य है और वह यह कि अभी कुछ समय पूर्व भरत को ससैन्य आते देखकर अनर्थ की कल्पना ने उन्हें भड़काया था जिससे भरत पर उन्होंने नाना कलंक लगाए थे, उन भावोंसे और भरत की इस स्थिति से लक्ष्मण द्वारा बतलाना ही इनका इष्ट रहा तबही तो इस प्रकार कह डाला। सरकार राघवेन्द्र नेज्योंही भरत के प्रणाम का समाचार लक्ष्मण द्वारा सुना वे एकदम उठे शरीर का आभास है नहीं जिन्हें, कहीं जटाएँ, कहीं मुकुट, कहीं वस्त्र और कहीं धनुषबाण, छोड़े और उठाकर भरत को अपने हृदय से लगा लिया। उन दोनों भाइयों, के इस अपूर्व मिलनने सबको स्तब्ध कर दिया। सबके सब अपनापन भूल जाते हैं।

इस प्रकार हम भरत में विशुद्ध रामप्रेम पाते हैं, राम प्रेम के कारण ही भरत के सम्प॰ में आने वाले जनक वशिष्ठ, कौशल्या निषाद भरद्वाज आदि सबही चकित थे उनकी अनुरक्ति भक्ति, विश्वास, श्रद्धा विचार, भावना, संकल्प और कार्य सब कुछ रामप्रेम था। स्वामी सेवक भाव से प्रेम होने के नाते उन्होंने कभी मुँह खोलकर सरकार के सामने उत्तर नहीं दिया, माता के अतिरिक्त उन्होंने कभी भी किसी से कुछ नहीं कही, जिस किसी से सम्भाषण किया उसमें अपनी अनुभूति और दैन्य एवं स्वामी की महत्ता का मग्न निरुपण किया जिसका कारण यह हुआ कि भरत सबके गले के हार बने। रामप्रेम के कारण ही उनके सामने किसी के बोलने का साहस नहीं होता था।

चित्रकूट में एक एक करके तीन सभाएँ हुईं, दोनों भाइयों ने अयोध्या के उस राज्य को फुटबाल बना दिया, दोनों ही त्याग मूर्ति थे राम चाहते थे भरत राजा हों और भरत चाहते थे राम। जब दो सभाओं में कोई निर्णय नहीं हुआ, सबको अवध वासियों के शारीरिक कष्ट से वेदना होती थी, सभी एक दूसरे के प्रति सहानुभूति प्रगट करते थे परन्तु भरत के भावों ने सबको कील रखने के कारण कोई स्पष्ट नहीं कह सकता था, अन्त में भरत की विजय हुई और सरकार को स्पष्ट कहना पड़ा कि—

पितु आयसु पालिहिं दोउ भाई।
लोक वेद भल भूप भलाई॥

रामाज्ञा होते ही भरतने प्रेमाग्रह करके राज्यके अयोग्य अपने आपको बताते हुए सरकार से आधार मांगने की इच्छा प्रगट की। कृपालु राघवेन्द्र सरकार ने उन्हें चरण पादुका प्रदान की जिसे भरत ने सादर शिरोधार्य किया—

प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

भरत सपरिवार लौटकर अवध आए और अयोध्या के उस राज्यसिंहासन पर जिस पर चक्र चूड़ामणि महाराज दशरथ आसीन होते थे एवं जिसके वास्तविक अधिकारी भगवान् राम थे उस पर भगवान् की चरणपीठ प्रस्थापित की और उनकी आज्ञानुसार आज्ञा मांगकर राज्यकार्य संचालन करने लगे। नगर के बाहर नंदिग्राम में पृथ्वी खोदकर उसके भीतर एक कुटिया बनाई कदाचित् उनके चित्तमें यह भाव रहा होगा कि सरकार राघवेन्द्र पृथ्वी पर सोते हैं तो मैं उनकी बराबरी से कैसे सोऊँ। उनकी तपस्या, परम-पवित्र आचरण, व्यवहार विचार, त्याग आदि देखकर बड़े बड़े मुनीश भी लज्जित होते थे उनका आचरण लोगों को राम प्रेम की दीक्षा देता था राम और भरत

दोनों भाई भाई हैं एक जंगल में रहकर तपस्या करता है और एक घर रहकर। इन दोनों ओर विचार कर सबलोग यही कहते थे कि भरत ही सब प्रकार प्रशंसा के योग्य हैं।

वास्तविक प्रेम वियोग में बढ़ता जाता है कभी घटता नहीं; घटने वाला प्रेम प्रेम नहीं मौत है जो कि प्रेम के परिधान से अलंकृत होकर आता है, चौदह वर्षों की अवधि के अनन्तर भी भरत के हृदय की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ उस समय भी वे यही कहते हैं कि—

बीतें अवधि रहहिं जो प्राना।
को पापी बड़ मोहि समाना॥

ऐसा था भरत का रामप्रेम जिसकी सरकार राघवेन्द्र एवं अन्य महापुरुष स्वयं प्रशंसा करते थे —

श्रीरामजी-लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥

× × ×

भरतहिं होइ न राजमद, विधि हरिहर पद पाई।
कबहुं क कांजी सीकरनि छीर सिंधु विनसाइ॥

वशिष्ठ—भरत महा महिमा जल रासी।
मुनि मति ठाढि तीर अवलासी॥
गा चह पार जतनु हिय हेरा।
पावत नटवन बो हितु बेरा॥

जनक—धरम राज नय ब्रह्म विचारू।
यहां जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाही।
कहैं काह छल छुवति न छाही॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी।
जानहिं राम न सकहिं बखानी॥

भरद्वाज—सब साधन कर सुफल सुहावा।
राम लखन सिय दरशन पावा॥
तेहि फलकर फल दरस तुम्हारा।
सहित प्रयाग सुभाग हमारा॥

ऐसे अशरण शरण भगवान् के चरण कमलों के प्राप्त करने की जिस किसी भी जीव की इच्छा हो वह परम प्रेमी एवं त्यागी भरत के चरित्र का अनुकरण करे, श्रवन करे, मनन करे, गवेषणा पूर्वक विचार करे एवं तद्रूप निष्ठा बनावे, यदि कोई इतना भी नहीं कर सके तो भरत के चरित्र का नियम पूर्वक श्रवण-मात्र करे इसका फल ही सरकार राघवेन्द्र के श्री चरणों में अनुरक्ति और विषयों से वैराग्य होगा जो कि मानव जीवन का उद्देश्य है।

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीयरामपदु प्रेमु, अवसि होइ भवरस विरति॥

॥ बोलो सियावर रामचन्द्र की जय॥

दो बेर द्वारिका तीन बेर त्रिवेणी चार बेर काशी के अङ्क नहायेते।
पांच बेर नीवसार छै बेर गंगा सात बेर पुष्कर के आचमन करायेते।
रामनाथ, बैजनाथ, बद्री औ केदारनाथ दसो दिसा धायेते।
जेते फल होत कोटि तीर्थ स्नान किये ओते फल होत एक राम नाम गायेते।

संत-वाणी

(अनुवादकः—हरदेआलमल किशोरीलाल मेहरा)

(१)

साधो ! मन मानत नहीं मोरा रे । याको बार बार समझाऊँ जग में जीना थोड़ा रे ॥१॥
या काया का गरभ न कीजे, क्या सांवरा क्या गोरा रे ।
बिन हरि भक्ति तन काम न आवे, कोटि सुगंध चमोरा रे ॥२॥
या माया का गरभ न कीजे, क्या हाथी क्या घोड़ा रे ।
जोड़ जोड़ धन बहोत चले गये, सहस्र लाख करोड़ा रे ॥३॥
दुबधा दुरमति और चतुराई, जन्म गयो नर बोरा रे ।
कहें कबीर चरणन चित राखो, ज्यों सूई में डोरा रे ॥४॥

—श्री कबीर भक्त

(२)

ऊधो ! कर्मन की गति न्यारी । सब नदियाँ जल भर भर बहिया, सागर किस विधी खारी ॥१॥
उज्जवल पंख दिये बगले को, कोयल किस गुणकारी ।
सुन्दर नयन मृगा को दीने, बन बन फिरत उजारी ॥२॥
मूर्ख मूर्ख राजे कर दीने, पंडित फिरें भिखारी ।
सूर प्रभू मिलवे की आशा, छिन छिन बीतत भारी ॥३॥

—श्री सूरदासजी

(३)

जो तुम हो सो हम हैं प्यारे, जो तुम हो सो हम हैं ।
पर्वत में तुम, नदीयन में तुम, चहुंदिशि तुम ही हो विस्तारे ॥
वृक्षलता में तुमहि विराजो, सूरज चन्द्र तुम ही हो तारे ॥१॥
देश भी तुम हो, काल भी तुम हो, तुमही हो सब के आधारे ॥
अलख ब्रह्म है नाम तिहारो, माया से तुम नित्य ही न्यारे ॥२॥
रूप नहीं, नहीं गुण है तुम में, वस्तु क्रिया से दूर सदा रे ॥
तीनों लोक में तुम ही व्यापो, तबहूं उनते हो तुम न्यारे ॥३॥
जो ध्यावे सो यह ही पावे, तुम उनके चेतन हो प्यारे ॥
रामानन्द अब जाम लेहु यों, आनन्द नहीं दो न्यारे ॥४॥

—लाला बैजनाथजी

(४)

प्राणी को हरियश मन नहीं आवे । अहिं निश मग्न रहे माया में, कहो कैसे गुण गावे ॥१॥
पूत मीत माया ममता स्यों, यह विधि आप बँधावे ।
मृगतृष्णा ज्यों झूठो यह जग, देख तास उठ धावे ॥२॥
भुक्ति मुक्ति का कारण स्वामी, मूढ़ ताहि विसरावे ।
जन नानक कोटन में कोऊ, भजन राम को पावे ॥३॥

—श्री गुरु नानक

(५)

रे प्राणी ! क्या तेरा क्या मेरा, जैसे तरवर पँख बसेरा ।
जल की भीत पवन का थम्बा, रक्त बन्धु का गारा ॥
हांड़ मांस नाड़ी का पिंजरा, पन्छी बसे बिचारा ।
राखो कन्ध उसारो नीमां, साढ़े तिन हाथ तेरी सीमाँ ॥
बाँके बाल, पाग सिर टेढ़ी, यह तन होगा भस्म की ढेरी ।
ऊँचे मंदिर, सुंदर नारी, राम नाम की बाजी हारी ॥
मेरी जाति कमीना, बुद्धि हीना, होछा जन्म हमारा ।
तुमरी शरणागत मैं प्रभुजी, कहे रवीदास चमारा ॥

—श्री रवीदास

जिह्वा तो सोई भली कि जिससे निकसे राम ।
नाहि तो काट के फेंक दे मुख में भला न चाम ॥
सम्पति सारे जगत की स्वाँसा सम नहि होय ।
सो स्वाँसा प्रभु भजन बिन तुलसी वृथा न खोय ॥
तुलसी रा के कहत ही निकसत पाप पहार ।
फिर आवन पावत नहीं देत मकार किंवार ॥

भगवन्नाम-माहात्म्य

(लेखक—प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरे मुहुः ।
यथा सुजातया भक्त्या शुद्धयेन्नात्मा व्रतादिभिः

श्री शुकदेवजी कहते हैं । राजन् । जिस प्रकार श्रीहरिके उदार चरित्रोंके श्रवण तथा कीर्त्तन करने वाले पुरुषों का अन्तःकरण सहसा उत्पन्न हुई भगवतभक्ति से शुद्ध होता है । उस प्रकार कृच्छ चान्द्रायण व्रत आदि उपायों से कभी शुद्ध नहीं हो सकता ।

कृष्ण कीर्त्तन गुण गौरव जे गान करहि नर ।
वे कबहूँ नहि भूलि निहारे नीरस मम घर ।।
सब पापिनको एक प्राइचित मुनिन बखानों ।
होयं नामके रसिक उन्हें मेरो गुरु मानों ।।
यम आज्ञा दूतिनि सुनी, शिरोधार्य सबने करी ।
हरी कीर्तन करिके चले, सब मिलि बोलीं जगहरी

जिस विषय को हम जानते नहीं उसमें प्रतीति नहीं होती जिसमें प्रतीति नहीं, उसमें प्रीति भी नहीं । इसलिये आदि भक्ति है श्रवण । भगवान के नाम को महात्म्य के श्रवण से नाममें भक्ति होती है । किसी किसी भाग्यशालीकी सहज स्वाभाविकी भक्ति भी होती है वे तो जन्म जन्मान्तर के भक्त हैं । नहीं तो प्रायः सुनकर ही नाम गुण कीर्तन में अनुराग होता है ।

श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित् से कहते हैं । "राजन् । जब जीवकी माया के गुणों में गौरव बुद्धि हो जाती है । अनित्य को नित्य और असत् को सत् समझने लगता है । तभी पाप बनते है । जहां श्रीकृष्ण चरणारविन्द का रस का चसका एक बार रसना को लग गया, तहाँ ये पापोत्पादक मायिक गुण तुच्छाति तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं । नाम प्रेमी भगवत् भक्त के समीप फिर पाप फटकने ही नहीं पाते ! पिछले पाप नामके प्रभाव से भस्म हो जाते हैं । जिनका भगवन्नाम में प्रेम नहीं हैं ऐसे विषय लोलुप पुरुष अपने दोषों का मार्जन करने के निमित्त प्रायश्चित सम्बन्धी कृच्छ्चान्द्रायण आदि व्रतरूप कर्मोंमें ही प्रवृत्त होते हैं । उस समय तो उस पापका नाश हो जाता है । किन्तु वासना बनी रहने से उसके द्वारा फिर पाप होते हैं । फिर दोषों की उत्पति होती है । अतः ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि मरते समय मुखसे भगवन्नाम निकल जाय ।

इसपर शौनकजी ने पूछा "सूतजी । जब मृत्यु के समय ही मुख से भगवन्नाम निकलना अभीष्ट है । तो अभी से कंठ को कष्ट क्यों दे । झांझ मजीरा बजा बजा कर कांसे को क्यों घिसे, क्यों ढोल करताल के चक्कर में फंसे । मरते समय एक बार राम का नाम लेकर मर जायेंगे बेड़ा पार हो जावेगा । संसार सागर से तर जावेंगे ।"

इसपर सूतजी ने कहा "महाराज यह तो ठीक है किन्तु मृत्यु का कोई समय तो निश्चित नहीं है कि उसी समय मरना है यह जो प्रतिक्षण स्वांस निकलती है । इसका कुछ पता नहीं कि फिर लौटकर आवेगी । इसलिये प्रत्येक स्वास पर मरने का सन्देह बना हुआ है । हमने एक स्वास ली समझ लो मरगये । स्वांस लोटकर आई प्रश्वास आगया समझलो पलभर को जीवन लोट आया । स्वाँसों के साथ प्राणों का निकल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । स्वाँसके साथ प्राण निकलते हैं स्वाँस लौटकर आवे यही आश्चर्य की बात है । अतः प्रत्येक स्वाँस पर मरने के लिये उद्यत रहकर स्वांस-स्वांस पर राम-राम रटना चाहिये ।

रही मरते समय नाम लेने की बात सो जब पहले से ही अभ्यास न होगा तब मरते समय नाम कैसे आवेगा। लड़की जब विवाहित होकर अपनी ससुराल बहू बनकर जाती है तो पहुंचते ही १०।२० स्त्रियाँ मिलकर यह देखने आती हैं कि नई बहू भोजन कैसा बनाती है। उसका भोजन अच्छा होता है तो सास, ननद, देवरानी, जिठानी, सब कहती है बहू क्या है लक्ष्मी है। कैसा सुन्दर भोजन बनाती है। इतना सुन्दर भोजन उसने ससुराल आते ही तो सीख नहीं लिया। अपने घरमें जब यह बच्ची थी तभी से उसकी माँ उसे सिखाती थी। दाल में ऐसे छौंक दिया जाता है। कढ़ी ऐसे बनती है। रायते में ऐसे धुँवार दिया जाता है। पकौड़ी इस प्रकार बनाई जाती है। बाल्य काल से सीखते २ जब वह विवाह के पश्चात् अपने घर जाती है तो उस दिन सुन्दर भोजन बनने पर उसका श्रम सफल समझा जाता है।

एक विद्यार्थी है। वह यह सोचले कि प्रश्न पत्र तो मुझे परीक्षा के दिवस ही लिखने पड़ेंगे। उसी दिन लिखकर उत्तीर्ण हो जाऊंगा। अभी से रात्रि दिन परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है। तो ऐसा सोचने वाला छात्र कभी परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है। नहीं कभी नहीं। परीक्षा के बहुत दिन पहले से उसे अभ्यास करना होगा। तभी वह परीक्षा के दिन शुद्ध शुद्ध परीक्षा प्रश्नों का उत्तर लिख सकेगा। अभ्यास न किया होगा तो वह उस दिन कुछ भी नहीं लिख सकता इसी प्रकार जिसने पहले से भगवन्नामोंका नियम पूर्वक लगन के साथ उच्चारण न किया हो, उसके मुखसे अन्त में भगवान का नाम निकल ही नहीं सकता।

इस पर शौनकजी ने कहा—"अजामिल ने कब अभ्यास किया था?

सूतजी ने यह सुनकर अत्यंत ही विनीत भाव से कहा। महाभाग! आप ऐसा न कहें। देखिये, वह नया लड़का जब से पैदा हुआ। संतों के आदेश से जब से उसका नाम नारायण रखा गया तब से वह निरंतर नारायण नारायण इसी नाम का कीर्तन करता रहता था मेरा नारायण, आओ नारायण, खाओ नारायण, जाओ नारायण, लेटो नारायण, सोओ नारायण, उठो नारायण, बैठो नारायण, कहाँ तक गिनाऊं महाराज, वह तो रात्रि दिन नारायण नाम की रट लगाये हुये था। इसलिये अन्त समय में उसके मुख से "नारायण" नाम निकला।

इस पर शौनकजी ने कहा! "उसने नारायण भगवान का नाम तो लिया नहीं! अपने पुत्र नारायण को पुकारा था—

इस पर कुछ रोष के स्वरमें बोले—"महाभाग! ए... बार तो मैं इसका जवाब दे चुका हूं। मानलो पुत्रही को पुकारा। तो क्या वह यह नहीं जानता था नारायण भगवान विष्णु का भी नाम है। वह मूर्ख तो था नहीं। वेदज्ञ ब्राह्मण था। ज्ञानी ध्यानी तपस्वी था उसने जब साधुओं को भगवत् पूजन करते देखा। तो उसे भी भगवत् प्रवृति की आकांक्षा हुई। मुनिवर! कैसा भी मनुष्य हो सबके मनमें एक छिपी बासना होती है आत्म-समपर्ण की। किसी अव्यक्त शक्ति की शरण में जाने की कोई आस्तिक भावसे कोई नास्तिक भाव से भगवान को पुकारते हैं। मनुष्य बिना भगवान के विषय में सोचे रह ही नहीं सकता। किसी के हृदय में यह इच्छा तीव्र होती है। किसी के हृदय में साधारण होती है। और किसी के हृदय में अत्यन्त मंद होती है। अजामिल के मन में भी भगवत प्रवृति की बासना छिपी हुई थी। व्यक्त थी साधुओं को देखकर वह व्यक्त होगई। वह साधुओं की शरन गया। महाराज! जो पापी अपने

को हृदय से पापी समझता है। उसका उद्धार तो हो जाता है किन्तु जो पाप करने पर भी अपने को धर्मात्मा समझता है अपने पाप को छिपाने के लिये वह कह देता है अजी कितने ही पाप करलो, जहां एक बार नाम लिया सब पाप नष्ट हो जायेंगे। ऐसे महापापियों का उद्धार अत्यन्त कठिन है। अजामिल अपने को पापी समझता था। साधुओं की पवित्र रहनी देखकर और अपने चोरी, जारी, डकैती जूआ, हत्या आदि कर्मों को देखकर उसे भान होगया कि मैं भगवान का भजन करने का अधिकारी नहीं हूं। मुझे कोई दूसरा उपाय बताया जाय। यही उसने सन्तोंसे प्रार्थना की। सन्तों ने बताया तो उसे भजन ही। किन्तु घुमा फिरा कर उसकी पात्रता देखकर बताया। इसीलिये अन्त समय में उसके मुखसे भगवन्नाम निकल गया। यह मैं पीछे कई बार इसी प्रसंग में बता चुका हूं। कि नामके साथ उसका अर्थ रहता ही है। दूध के साथ उसकी धवलता, अग्नि के साथ जैसे दाहकता लगी हुई है। वैसे ही गौ शब्द के साथ गौका सम्पूर्ण भाव जुटा हुआ है। इसी प्रकार नारायण नाम में नारायण के सब गुण, सब अर्थ साथही थे। इसीलिये नाम का फल हुआ।

इस पर शौनकजी ने कहा! सूतजी—आप अपनी बात को सिद्ध करने के लिये अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। हम मानते हैं शब्द के साथ उसका अर्थ रहता ही है। उसने नारायण शब्द कहा तो नारायण का अर्थ हुआ दो हाथ दो पैर वाला हँसमुख सुन्दर सा प्यारा प्यारा उस वैश्या का बच्चा अजामिल का दसवां पुत्र। यह तो मायिक पदार्थ था। उससे द्वारा उसे मायातीत श्री मन्नारायण की प्राप्ति कैसे हुई। नाम की महिमा हम जानते हैं।

इसपर सूतजी ने कहा—"मुनिवर! इस विषय को आप गम्भीरता से सोचिये। उस वैश्या के ९ पुत्रों के नाम तो आपने खिच्चू, बिज्जू, रज्जू, धुर्रू आदि सुन ही लिये थे। यदि सब नाम पुत्रों के एक ही से होते तो सन्त उसे उससे नारायण नाम रखने को कहते ही क्यों। जब उसने साधन पूछा और सन्त ने होने वाले पुत्र का नारायण नाम रखने का आदेश दिया। तभी नारायण शब्द से यह भाव होगया कि नारायण नाम भगवान का है। उसी मिससे भगवान का नाम उच्चारण होगा। इस बात को संत भी जानते ही थे। अजामिल भी संभवतया जानता ही होगा कि नारायण भगवान का नाम है। क्योंकि संसारी लोग अपने पुत्र पुत्री का नाम, राम, कृष्ण, नृसिंह, हरि, दुर्गा रमा, कमला, भवानी आदि रखते हैं। तो मूल में तो भगवान की ही भावना रहती है। इसलिये नारायण शब्द का अर्थ अजामिल पुत्र नहीं है। नारायण शब्द का अर्थ नारायण ही है। इसीलिये इतना पापी होने पर भी उसका नाम लेने से सद्गति होगई।

इस पर शौनकजी ने कहा—"महाभाग" अजामिल की तो मुक्ति होगई होगी। किन्तु आपकी इस कथा से संसार अनर्थ होने की संभावना हैं। इससे पापों को प्रोत्साहन मिलेगा।

आश्चर्य के साथ सूतजी ने पूछा। भगवन यह आप कैसी बात कह रहे हैं। मैं तो नाम का माहात्म्य सुनाकर भगवन्नाम का महत्त्व सिद्ध करके उसका घर-घर प्रचार और प्रसार करना चाहता हूं और आप कह रहे हैं कि इससे पापों को प्रोत्साहन मिलेगा यह कैसे?

शौनकजी ने कहा— 'यह इसलिये कि लोग समझेंगे कि जब नाम का इतना माहात्म्य है तो फिर हम भर पेट पाप क्यों न करें। दिन भर पाप करेंगे रात्रि में एक दो बार नाम ले लेगें। आपही कहते हैं नाममें वह शक्ति है कि उतने पाप मनुष्य करना भी चाहे तो नहीं कर सकता। एक तो लोगों की स्वभाव से ही पापों में प्रवृत्ति है फिर आपकी यह कथायें उन्हें प्रमाण के लिये

मिल जायेंगी। तब तो वे सब खुलकर खेलेंगे। पहले से भी अधिक पाप करेंगे। तो यह नाम का प्रचार हुआ या पाप का प्रसार ?

यह सुनकर सूतजी गंभीर बहुत होगये और बोले मुनिवर। आपका कहना यथार्थ है। पापी लोग अपने पापों को छिपाने और अपने को बड़ा सिद्ध करने केलिये महापुरुषों के वचनों को प्रमाण के लिये खोजते रहते हैं। जहां उन्होंने अपने अनुकूल कुछ वाक्यों को देखा कि झट उनकी पूर्वापर की संगति मिलाये बिना उपस्थित कर देते हैं। ऐसे पापियों के लिये शास्त्र का उपदेश नहीं होता अत्यन्त ज्ञानियों के लिये अत्यन्त पापीमूढ पुरुषों के लिये शास्त्रीय साधन नहीं होते। ज्ञानी जो साधनों से परे ही है उसे साधनों की अपेक्षा ही नहीं। जो अत्यन्त मूढतम हैं, पापों में ही जिनकी प्रवृति है। जो निरन्तर संसारी कर्मों में ही यन्त्र की भांति लगे रहते हैं। उन्हें शास्त्रीय साधनों की आवश्यकता ही नहीं। जो प्यासा ही नहीं—उसके लिये पानी व्यर्थ है जिसे भूख ही नहीं, उसे भोजन की अपेक्षा ही नहीं। साधन उन साधकों के लिये ही होते हैं जो पुण्य पापों को समझकर पापों को छोड़ना चाहते हैं। और परम पुण्य को सम्पादन करना चाहते हैं। ऐसे लोग जब नाम लेंगे तो प्रथम तो उनसे पापकर्म बनेंगे ही नहीं। कदाचित भूल में पाप हो भी जाय तो होनेपर वे उसके लिये घोर पश्चाताप करेंगे। प्रभू से प्रार्थना करेंगे कि भगवन हमसे फिर ऐसा पाप न हो। इस भावना से वे नाम कीर्तन जाप करेंगे। शनैः शनैः उनकी पापों से प्रवृति हट जायेगी। भगवन्नाम में अनुराग कब हुआ इसकी मोटी पहिचान यही है कि जब मनकी प्रवृति पाप कर्मों में न हो। जब तक पाप प्यारे लगते हैं तब तक यह समझना चाहिये हमारा भगवन्नाम में दृढ अनुराग नहीं हुआ।

इस पर शौनकजी ने कहा—"महाभाग। फिर वही हुई कि पहले अंतःकरण पवित्र करो तब भगवन्नाम को लो। तब तो वह सार्थक है, फल देने वाला है अन्यथा अशुद्ध मनसे लिया हुआ नाम व्यर्थ है।

इस पर शीघ्रता से सूतजी बोले—नहीं महाभाग मेरा यह अभिप्राय कभी नहीं है। मैं बार २ इस बात पर बल देता रहा हूं कि नाम जप कीर्त्तन कैसा भी किया जाय व्यर्थ तो वह कभी होता ही नहीं। किन्तु पात्र भेद से उसके फल में तारतम्य अवश्य हो जाता है। भगवन्नाम तो कल्पतरु है। जो नाम को साधन न समझ कर केवल अपने पापों को छिपाने का एक एक अस्त्र मात्र समझते हैं। जो नाम का आश्रय लेकर शास्त्र विहित धर्म कर्मों का आलस्य वश परित्याग कर देते हैं वे तो नारकीय जीव हैं। वे तो नामके आश्रय से अपने पापों की पुष्टि चाहते हैं। इससे उनके पाप और भी पुष्ट होते हैं। जो भगवान् के नामोंको लेकर चौराहों पर बैठकर भीख माँगते हैं वे ऐसा ही करते हैं। जैसे चिन्तामणी रत्न को कोइ शौचालय में लगादे। शौचालय में लगा देनेसे उसका उपयोग तो होगा ही। किन्तु यह उसका यथार्थ उपयोग नहीं है। भगवान का नाम व्यर्थ तो जाने का नहीं। पात्र भेद से देर में सवेर में फल तो वह अवश्य देगा ही किन्तु योग्य पात्र में उत्तम से उत्तम फल देगा। सूर्य नारायण उदय होने पर अंधकार तो सभी का नाश करेंगे। किन्तु जो अधिक खुला स्थान होगा, वहाँ अधिक प्रकाश दिखाई देगा। जो अधिक घिरा हुआ बन्द स्थान होगा, वहाँ कम प्रकाश दृष्टिगोचर होगा पापी भी नाम लेले तो धीरे-धीरे उसके भी पाप क्षय होंगे और क्षय होते-होते कभी उसे पापों से ग्लानि होगी। वह अपने किये कर्मों पर कभी न कभी दुःखी होगा

पछतावेगा। जहाँ हृदय में सच्चा पश्चाताप हुआ नहीं कि फिर पापों में प्रवृति होगी ही नहीं। जब तक पापों में प्रवृति है तब तक समझना चाहिये इसे नामसे अधिक पाप प्यारे हैं। भगवान् से अधिक विषयों में इसकी प्रीति है। ऐसे आदमी को और भी अधिक से अधिक नाम लेना चाहिये शास्त्रों में यह तो कभी भी नहीं कहा कि भूलकर पाप करो और नाम लो। बार बार यही कहा गया है कि तुमसे भूल में पाप भी बन गये हैं तो अब उनके लिये हृदय से पश्चाताप करो अनन्य भाव से भगवान् का भजन करो, भगवान और उनके नामों में सम्यक् व्यवस्थिति करो। तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायंगे। आगे पाप करना भी चाहो तो प्रवृति न होगी। अजामिल को ही देख लीजियेगा। बच्चे के बहाने ही नारायण नारायण कहते २ उसका अन्तःकरण पवित्र होगया। फिर नाम माहात्म्य सुनकर वह सर्व संग विनिर्मुक्त महात्मा बनगया अतः नाम व्यर्थ कभी भी नहीं जावेगा। इस इतने बड़े उपाख्यान के कहनेसे मेरा यह अभिप्राय कभी भी नहीं है कि तुम दिनभर पाप करो और एक बार नाम लेलो। मेरा अभिप्राय इतना ही है कि जीव जन्म से ही पाप पुण्य साथ लेकर उत्पन्न हुआ है। पापों में प्रवृति उसकी स्वाभाविक है। पापोंमें प्रवृति न होती तो जन्म ही क्यों लेता। हम रोज भगवान के सामने कहते हैं। मैं पापी हूं। पाप कर्मा हूं। पापात्मा हूं। पाप से ही उत्पन्न हुआ। आप सर्व पापों के हरने वाले हरि हैं। अतः मेरे पापों को भी नाश कर दीजिये। जिनका पापों को हरने वाला ऐसा अतिमधुर दयामय नाम है। क्या वे कुछ भी सहायता न करेंगे। इस कथानक से मेरा तात्पर्य इतना ही है कि भगवान् बड़े भक्त वत्सल हैं। उनकी शरण में जाने पर पिछले पाप नष्ट होजाते हैं। आगे पापों में प्रवृति नहीं होती। देखिये यह अजामिल मातृ पितृ भक्त था। पूर्व जन्मके संस्कारों के वशीभूत होकर कुसंस्कारों के उदय होने से वह वैश्या के चक्कर में फंसगया। तो भी भगवान का नाम नारायण है इतना तो उसे ज्ञात ही था। ज्यों ही उसने नारायण पुकारा एक पग भगवान् की ओर बढ़ाया। भक्त असहाय, निर्बल समझ कर ९९ पग स्वयं बढ़कर अपनी भक्त वत्सलता के कारण नाम की महिमा स्थापित करने के निमित्त भगवान् ने दौड़कर उसे अपना लिया। भगवान ने कृपा करदी उसे अपना लिया। इसलिये राजन्! सभी पुराण इस बात पर बल देते हैं कि नाम संकीर्तन में कोई नियम बन्धन नहीं। सभी जाति वर्ण के लोग सब काल में सब स्थानों में जैसे भी वे चाहें भगवन्नामोच्चारण कर सकते हैं।

इस पर शौनकजी ने पूछा सूतजी! पुराणों में ये १० नामापराध बताये हैं। १—महत्पुरुषों की, साधू सन्तों की निंदा करना। २—न सुनने वाले को नाम माहात्म्य सुनाना। ३—शिव विष्णु में भेद बुद्धि करना। ४—श्रुति की आज्ञा न मानना। ५—स्मृति शास्त्रों की आज्ञा भंग करना ६—आचार्य के वाक्यों में अविश्वास ७—नाम महात्म्य को अर्थवाद मानना। ८—नाम का आश्रय लेकर शास्त्र विहित धर्म कर्मों का परित्याग ९—शास्त्र निषिद्ध कर्मों का आचरण। और १०—नाम जप की अन्य धर्मों से तुलना करना इन दस अपराधों से बचकर जो नाम संकीर्तन करता है उसका कीर्तन नामोच्चारण तो सार्थक। किन्तु जो नामापराधों को बिना बचाये नाम संकीर्तन करता है उसका नाम संकीर्तन व्यर्थ है। उसे नरक की अग्नि में अवश्य अवश्य पचना पड़ेगा। जब ऐसी ही बात है तब तो नाम संकीर्तन सरल, सुगम, सर्वोपयोगी साधन रहा नहीं। तब तो नामापराधों के आधीन रहा। संसार में रहकर नामापराधों से कोई बिरले ही बच सकते हैं। तब तो संसार में कोई कहीं एक आध ही नाम संकीर्तन के अधिकारी होंगे। सुना है नामा-

पराधों का कोई प्रायश्चित ही नहीं। ये तो बड़े भारी अक्षम्य पाप हैं। फिर नाम संकीर्तन द्वारा कैसे उद्धार हो।

इस बात को सुनकर सूतजी बोले। महाराज ऐसी बातें वे ही बाल बुद्धि के हठी लोग करते हैं जिनकी बुद्धि सकाम कर्मकांड में ही फँसी हुई है। भगवान् नामापराधों को बचाकर नामकीर्तन करना सर्व श्रेष्ठ है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जिससे नामापराध बन जाये वह नाम कीर्तन करना बन्द करदें। ऐसी बात नहीं है। नाम कीर्तन के पापात्मा पुण्यात्मा अपराधी, निरपराधी, सभी अधिकारी है। यह ठीक है कि नामापराध सबसे बड़ा घोर पाप है। किन्तु इस महान से महान दुर्निवार पाप का भी कोई प्रायश्चित है तो वह एक मात्र नाम संकीर्त्तन ही है। नामापराध यदि मिट सकते हैं। तो भगवन्नाम कीर्तन से ही मिट सकते हैं। अतः नामापराधी के लिये निरन्तर नाम संकीर्तन अवश्य अवश्य करना चाहिये।

महाभाग! नाम में भी भला कभी अपराध हो सकता है। नामापराधों का वर्णन तो नाम की महिमा बढाने के लिये किया गया है। जैसे हम इन्द्र की अत्यधिक प्रशंसा करें। अत्यधिक उसके ऐश्वर्य का वर्णन करके अन्त में कहदें, वह इन्द्र भी उन विष्णु की चरन धूलि के लिये सदा लालायित रहता है। तो यहाँ इन्द्र की इतनी प्रशंसा करने का तात्पर्य नहीं है। यहाँ तो कैमुतक न्याय से भगवान् की महिमा का कथन करने का अभिप्राय है। उसी प्रकार पहले से तो नामापराधों को महान पाप बताया। ब्रह्महत्या से भी बढ़कर पाप सिद्ध किया। ब्रह्महत्या का तो प्रायश्चित शास्त्रों में मिलता है। किन्तु नामापराध का कोई प्रायश्चित नहीं है। ऐसा घोर पाप भी जिन भगवान के नाम संकीर्तन से दूर हो जाता है। उसकी महिमा क्या कहें। पुराणों में स्पष्ट कहा है। यदि प्रमादवश नामापराध बन जाय तो एकमात्र प्रभु की शरण में जाकर अविश्रान्त नाम संकीर्तन करना चाहिये। उसीसे नामापराध का दोष दूर हो सकता है।

जो लोग नामापराधों पर अत्यधिक बल देकर करने वालों को नाम कीर्तन से रोकते हैं। उनके लिये अब हम इतना ही कह सकते हैं कि वे भगवान् की माया मोहित जीव हैं। वे नाम कीर्तन को श्रेष्ठ न मानकर नामापराधों को ही श्रेष्ठ मानते हैं। भगवन्नाम को नामापराधों के आधीन मानकर भगवन्नाम का प्रचार न करके नामापराधों का प्रचार कररहे हैं। इन नामापराधों की गणना में इतना ही तात्पर्य है। कि भरसक स्वधर्म पालन करते हुये शुद्ध चित्त होकर दुर्गुणों का परित्याग करके ही नाम संकीर्तन करना चाहिये।

इस पर शौनकजी बोले। महाभाग। हमारी शंका का समाधान होगया।

यह सुनकर हँसते हुये सूतजी बोले। महाभाग आपको क्या शंका होनी थी। भगन्नाम के माहात्म्य सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव ने राजा परिक्षित से वह अजामिल का पावन आख्यान कहा था। इस आख्यान की प्राचीनता और परम्परा सुनने के अभिप्राय से राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से पूछा भगवन्-यह इतिहास आपने सुना था से किसी प्रामाणिक व्यक्ति के मुख से सुना था या ऐसे किसी चलते फिरते विनोदी कथक्कड़ से।

इस पर श्री शुकने कहा। राजन् मैंने ऐसे बहरे गप्प पचकल्यानी से यह इतिहास नहीं सुना है। जो ऋषियों से सर्व श्रेष्ठ माने जाते हैं। जो दक्षिण दिशा स्वामी है। जिन्होंने इतने भारी खारी समुद के अथाह जल को एक चुल्लू में ही पान कर लिया उन भगवान् अगस्त्य के मुख से मैंने यह पुण्यप्रद इतिहास सुना था।

राजा ने पूछा। भगवन्। देश का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। कहीं कीकट आदि देशों में तो अपने नहीं सुना

हमारा हिन्दुस्तान

(लेखक— परमभक्त जटाशंकरजी पुनाथाले (मद्रास))

सामयिक विचार—

जिस हिन्दुस्थान में घी और दूध की नदियां बहती थी इसी हिन्दुस्थान का अब क्या हाल है इस ख्याल से देखने से मालुम होगा अधिकांश लाभ दगाखोरी चोरियां और ब्लेक मारकीट ने आज कल सारा देशका हाल खराब कर दिया है और भगवान का चमत्कार भी होना बंद हुआ। क्योंके जब इन्सान खुद भगवान को भजना छोडकर सांसारिक कामों में लगजाने से उसे भगवान को याद करने की फुरसत ही नहीं मिलती-और अगर उसे फुरसत मिलती तो भगवान को याद करने को उसका दिल ही नहीं लगता उसे बहुत धन जमा करने की फीकर रात दिन सताया करती है फिर वो बिचारा कैसे भगवान को याद कर सकता है और कुछ कमाने पर इसमेंसे गरीब को दान धर्म देने की बात आती है। तो उनको बुखार चढता है अगर नई मोडेल की कार खरीदना रेस कोर्स में जाना, जुआ खेलना, शराब पीना यो सब उनके रोजके काम बन जाते हैं। मगर पैसे की खुमारी से उनको इतना याद नहीं आता के गरीबों को मदद करना और भगवान को याद करना हर इन्सान के लिये जरुरी है और बहुत से लोग देशके नेताओं का कसुर निकालते हैं मगर इन्सान खुद अपनी फर्ज भूलते हैं तो फिर नेता क्या कर सकते हैं। हर इन्सान अगर भगवान को भजकर गरीबों पर दया रखना सीखेगा जब समझना के ये सारा दुःख दूर हो जायेगा।

इस पर कथक वर शुकदेवजी बोले। नहीं राजन्। मैंने तो इसे पुण्यातिपुण्य मलयाचल पर्वत पर सुना था। इस पर राजाने फिर कहा भगवन्–कैसे भी योग्य महापुरुष हो। कैसे भी पवित्र देश क्यों न हो ! यदि समय उचित न हो ! तो उस बात का कोई महत्त्व नहीं रहता। हंसी में न जाने हम कितनी असत्य बातें कह जाते हैं। यदि ऐसी ही हंसी विनोद के समय यह चरित्र आपको प्रसन्न करने के लिए भगवान् अगस्त्य ने कह दिया है तो इसका कोई मूल्य नहीं रह जाता।

इस पर श्री शुकदेवजी ने कहा। नहीं राजन् ऐसी बात नहीं है। भगवान् अगस्त्य ने परम पवित्र मलयाचल पर्वत पर गम्भीर होकर उस समय वह इतिहास कहा था। जब कि भगवान् पूजा कर रहे थे। भगवान् शालग्राम को हाथ में लेकर मानों–शपथ–पूर्वक–यह सब कहा था। इसमें अविश्वास के लिये स्थान ही नहीं।

यह सुनकर महाराज परीक्षित ने कहा भगवान् इस नाम महात्म्य वर्धक इतिहास को सुनकर मुझे बड़ी आन्तरिक शान्ति हुई। अब मुझे भी विश्वास होने लगा है कि घोर ब्रह्म शाप से मेरा भी उद्धार हो जावेगा। भगवान् पहिले आपने सृष्टि का क्रम अत्यन्त संक्षेप में ही वर्णन किया था। अब मैं उसीको विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं। यदि मैं उसके श्रवण का अधिकारी होऊं तो कृपा करके मुझसे उसे कहिये।

यह सुनकर श्री शुकदेवजी बड़े प्रसन्न हुये। राजा के प्रश्न का अभिनन्दन किया उनकी प्रशंसा की और हंसते हुये मेघ गम्भीर वाणी से कहने लगे—राजन्। मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा आप मेरी ओर ही चित्तवृत्ति को लगाकर आगे का प्रसंग को श्रवण कीजिये।

कहैं परीक्षित प्रभो ! सुनाई सरस कहानी !
कथा आजामिल सुनी नाम महिमा हूँ जानी ॥
ताप शाप संताप नाम ध्वनि सुनि भग जावे,
सब मिल ऐसे भगें लौट के फिर नहीं आवे ॥
सुनी नाम महिमा प्रभो ! प्रकृत कथा चालु करो ॥
सृष्टि प्रसंग सुनाई के, मेरे सब संशय हरो ॥

श्री नृसिंह-जयन्ति

(रचयिता—पं० श्री गोविन्ददास 'सन्त' धर्मशास्त्री)

भजन

(१)

जय जय नरसिंह रूप हरि
माधव शुक्ल चतुर्दशी के दिन,
सुरनर विनय करी ॥जय जय०॥
खंभ फोर प्रभु प्रकट भये हैं,
भक्त की साहाय करी ॥जय जय०॥
नर और सिंह मिलाकर दोऊ,
अद्भुत देह धरी ॥जय जय०॥
भक्त अनेक बचाये तुमने,
जब—जब भीर परी ॥जय जय०॥
'सन्त' सदा भज राधा माधव,
सांझ की बांध लरी ॥जय जय०॥

(२)

प्रभुजी ने नरसिंह रूप धरयो।
हिरनाकुश का कोप देखकर,
तीनहुँ लोक डरयो ।
खंभ फार नरसिंह रूप धरि,
सब दुख दूर करयो ॥१॥
हिरनाकुश भी खड्ग हाथ लै,
प्रभु संग खूब लरयो ।
धन्य भाग हिरनाकुश तेरे,
जो प्रभु की गोद मरयो ॥२॥
जब—जब भीर परी भक्तन में,
तब--तब कष्ट हरयो ।
'सन्त' सदा भज ऐसे प्रभु को,
भव निधि क्यों न तरयो ॥३॥

जय गौर (प्रार्थना)

(रचियता आचार्य श्री मदनमोहनजी गोस्वामी वैष्णव दर्शन तीर्थ, भागवत रत्न)

जय गौर हरे जय गौर हरे जय जय जय जय श्री गौर हरे ॥ टेक ॥

कीर्तन कारी नदिया बिहारी प्रेम प्रदाता गौर हरे। भक्ति अपारा परम उदारा अति सुकुमारा गौर हरे ॥१॥
रूप रसीला नयन विशाला परम कृपाला गौर हरे। दीन दयाला पतितन पाला करत निहाला गौर हरे ॥२॥
सब सुख सागर सब गुण आगर रूप उजागर गौर हरे। शान्ति निशाकर प्रेम प्रभाकर शील सुधाकर गौर हरे ॥३॥
हम हैं पापी अति अनुतापी पार लगाओ गौर हरे। पतितन पर तुम्हरी करुणा है देर न लाओ गौर हरे ॥४॥

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में पूर्व आचार्य श्री महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्धसन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

आरती

आरती युगल किशोर की कीजै। तन मन धन न्योछावर कीजै ॥१॥
रविशशि कोटि बदन की शोभा। ताहि निरखि मेरा मन मोहा ॥२॥
गौर श्याम मुख निरखत रीझै। प्रभु को रूप नैन भर लीजै ॥३॥
कंचन थाल कपुर की बाति। हरि आये निर्मल भई छाती ॥ ४ ॥
फुलन की सेज फुलन की माला। रतन सिंहासन बैठे नन्दलाला ॥५॥
मोर मुकट कर मुरली सोहे। नटवर भेष देख मन मोहे ॥ ६ ॥
ओढ़े नील पीत पट सारी। कुञ्ज बिहारि गिरवरधारी ॥ ७ ॥
श्री पुरुषोतम गिरवरधारी। आरती करत सकल बृजनारी ॥ ८ ॥
नंद नँदन वृष भानु किशोरि। परमानन्द स्वामी कर जोरी ॥९॥

आरती युगल किशोर की कीजै०

...बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित
...मानसिंहजी का संपादक व प्रकाशक द्वारा, भगवान भजनाश्रम वृन्दावन [मथुरा] से प्र...

अंक ७
MURARI ART DELHI.

विषय सूची

आषाढ़ संवत २००६

विषय | लेखक

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक:- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओं से १॥≡) एक प्रति का ≡)

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन जुलाई सन् १९५२ | अंक ७

श्री गंगा-जयन्ती

(जन्म दिवस ज्ये० शु० १०)

(रचयिता—पं० श्रीगोविन्ददास 'सन्त' धर्मशास्त्री)

भजन

जय गंगे जगमाता हाँ जय गंगे जगमाता।
जो कोई तेरा ध्यान लगावे। मनवान्छित सब सिद्धि पावे॥
अन्त परमपद पाता हाँ जय गंगे जगमाता ॥१॥

भक्तजनों की हो रखवाली, आवागमन मिटावन वाली
जो कोई ध्यान लगाता हाँ जय गंगे जगमाता ॥२॥

यात्रीजन दर्शन को आते, कर दर्शन मनमें सुखपाते
पाप नाश हो जाता, हाँ जय गंगे जगमाता ॥३॥

सगर पौत्र के रथ पर धाई, जब ही से भूतल पर आई
जय भागीरथी माता, हाँ जय गंगे जगमाता ॥४॥

'सन्त' जनों की है यह अर्जी, आखिर मैय्या तेरी मर्जी
दे दर्शन अब माता, हाँ जय गंगे जगमाता ॥५॥

परमपूज्यपाद १००८ श्री स्वामी श्री अखण्डानंद सरस्वतीजी महाराज के सदुपदेश

(प्रेषक--भक्तरामशरणदासजी पिलखुवा)

भारत के सुप्रसिद्ध दण्डी सन्यासी १००८ श्रीस्वामी श्री अखंडानंद सरस्वतीजी महाराज के यह महत्वपूर्ण सदुपदेश हमने पिछले दिनों बाँध पर और श्रीवृन्दावन में लिखे थे इसमें जो गलती रहगई हो सो हमारी समझनी चाहिये पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज की नहीं समझनी चाहिये।

(१) बड़े बड़े योगियों को भी, बड़े बड़े तपस्वियों को भी जो ध्यान करने को भी दुर्लभ है उसी श्रीकृष्ण के पीछे श्रीयशोदा मैया छड़ी लिये भागी जारही है यह श्री यशोदामैया का ही सौभाग्य है।

(२) जिसके मनमें क्रोध है और क्रोध होते हुये वह यह चाहता है कि हमारे मनमें श्री भगवान आकर बैठ जांय भला ऐसा कैसे हो सकता है ! भला जब तक मनमें क्रोध की आग की भट्टी जल रही है तब तक उसमें श्रीभगवान आकर कैसे बैठ सकते हैं ? क्रोध रहते श्री भगवान आकर के नहीं बैठ सकते हैं ? क्रोध को दूर करना होगा तभी भगवान आकर के बैठेंगे।

(३) इस कलियुग में भक्त हो कैसा भी हो वही भक्त मान लिया जाता है परन्तु और युगों में तो भक्तों की परीक्षा होती है। इस युग में परीक्षा नहीं इतना होना भी बहुत माना जाता है।

(४) जिसे वेद अकर्ता बताता है उसे ही श्री यशोदा मैया जब मारती है और बताती है कि इसने यह अपराध किया है तो वह आज कर्ता बन जाता है।

(५) शास्त्राज्ञा का पालन करो इसी से पुण्य की प्राप्ती होती है। पाप क्या है, पुण्य क्या है इसे कोई मनुष्य नहीं बना सकता यह तो शास्त्र से ही मालूम हो सकता है। शास्त्र जिस काम को करने को कहे वही काम करना पुण्य है और जिस काम को करने को मना करे उस काम को करना ही पाप है।

(६) प्रश्न—श्री महाराजजी अन्त्यजों को मंदिर प्रवेश का अधिकार है या नहीं ?

उत्तर—शास्त्र अन्त्यजों को मंदिर प्रवेश का अधिकार नहीं देता। यदि अंन्त्यज जबरदस्ती मंदिरों में जायेंगे तो उन्हें महान पाप होगा।

(७) श्री तुलसीजी को यदि तुम यह समझकर खावोगे कि इससे रोग दूर होते हैं तो इसके खाने से रोग तो दूर हो जायेंगे परन्तु पाप नष्ट नहीं होंगे। और यदि शास्त्राज्ञा मानकर श्रद्धा से खावोगे तो पाप तो दूर होंगे साथ ही रोग भी दूर हो जायेंगे।

(८) प्रश्न—श्री महाराजजी स्त्री का धर्म क्या है ?

उत्तर—स्त्री का धर्म है अपने पूज्य पति की सेवा करना इसी से उस स्त्री का कल्याण होगा।

(९) प्रश्न—श्री महाराजजी यह देखने में आता है कि बहुत से मनुष्य खूब भगवान का भजन करते थे लेकिन भजन करते करते अब उन्हें भजन करने में अरुचि हो गई है। भगवान का भजन करते करते भी जो भजन में अरुचि हो जाती है इसके लिये क्या करना चाहिये।

उत्तर—भजन करते करते यदि भजन में अरुचि हो जाती है तो उस अरुचि को दूर करने के लिये भी हमें भजन करना चाहिये। भजन में अरुचि होने पर भी भजन करना चाहिये। भजन करना छोड़ना नहीं चाहिये। अरुचि होने पर भी भजन करते करते अरुचि दूर हो जायगी और भजन में रुचि हो जायगी। जिस प्रकार किसी को मिश्री कडुवी लगती है तो उसे मिश्री कडुवी लगने पर भी मिश्री खानी चाहिये। मिश्री खाते खाते वही कडुवी लगने वाली मिश्री मीठी लगने लग जायगी। इसी प्रकार भजन में अरुचि होने पर उस अरुचि को दूर करने का साधन भी भजन ही है सो बराबर भजन करना चाहिये छोड़ना नहीं चाहिये।

(१०) प्रश्न—भजन में अरुचि क्यों होती है इसका क्या कारण है?

उत्तर—इसका क्या उत्तर दिया जा सकता है? यह तो वही जानें कि जिसे भजन करने में अरुचि हुई है कि भजन में उसे अरुचि क्यों हुई है? भजन करते हुये भजन में क्या विघ्न पड़ा है यह तो उसे ही पता है दूसरा कोई क्या बता सकता है?

(११) प्रश्न—भजन में अरुचि क्यों हुई क्या इसके जानने की भी आवश्यकता है?

उत्तर—हम बैठे हुवे हैं हमारे ऊपर जो छप्पर है उस छप्पर में से हमारे ऊपर सर्प आकर पड़ता है तो उस समय हमारा क्या कर्तव्य है? हम उस समय यह जानने की कोशिश करें कि हमारे ऊपर सर्प क्यों गिरा, कहाँ से गिरा, क्या कोई छप्पर में घोंसला है वहीं से गिरा या और जगह से गिरा यह जानें या उस समय इन सब बातों की परवाह न कर पहिले एक दम सर्प को उठा कर बाहर फेंकदें? उस समय हमें चाहिये कि हम एक दम सर्प को उठाकर बाहर फेंकदें? और बाद में चाहें तो कहाँ से गिरा, क्यों गिरा मालूम करें चाहे न करें? यह हमारी इच्छा है। भजन में अरुचि क्यों हुई इसकी परवाह न करके पहिले भजन करके अरुचि को दूर करना चाहिये फिर बाद में मालूम करो या न करो यह तुम्हारी इच्छा है।

(१२) प्रश्न—मंदिर में यदि अन्त्यज चला जाय तो हमें मंदिर में जाना चाहिये या नहीं जाना चाहिये?

उत्तर—क्यों नहीं जाना चाहिये? मंदिर की शुद्धि करके जाना चाहिये।

(१३) प्रश्न—आजकल जबरदस्ती से नित्य ही अन्त्यजों को मंदिरों में ले जाया जारहा है फिर भला शुद्धि कैसे हो सकती है? कुछ महात्माओं का कहना है कि जिन मन्दिरों में अन्त्यज जाते हैं उनमें नहीं जाना चाहिये?

उत्तर—नहीं जाना चाहिये घर पर भजन करना चाहिये कानून से मन्दिरों में अन्त्यजों को घुसाना इसके हम विरुद्ध हैं। एक राजा ने अपने राज्य में कानून बनाया कि सभी मेरे राज्य में प्रातःकाल और सायँकाल संध्या किया करें जो संध्या नहीं करेगा उसे दंड दिया जायगा। संध्या के समय एक दिन एक ब्राह्मण लोटा लेकर जंगल में शौच होने गये। उन्होंने देखा कि सामने से राजासाहब घोड़े पर चढ़े हुये आरहे हैं और यह समय संध्या करने का है राजासाहब देखकर दंड देंगे। झट से ब्राह्मण बैठगये और लगे संध्या का स्वांग करने। राजासाहब पास में आये और उन्होंने ब्राह्मण से कहा कि ब्राह्मण जब तुम संध्या कर रहे हो तो फिर बतावो तुम्हारे कानपर जनेऊ क्या चढ़ा हुवा है? ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि राजसाहब यह आपके कानून की संध्या है मुझे शौच की हाजत हुई थी इसलिये मैं शौच होने आया था इसी से मेरे कान पर जनेऊ चढ़ा हुवा है आपको देखकर डर के कारण संध्या करने बैठगया हूं जनेऊ उतारना भूलगया। इसी प्रकार यह भी कानून से मंदिरों में अन्त्यजों को घुसा रहे हैं यह ठीक नहीं कररहे हैं।

(१४) भगवान का भजन करना ही सार है इसे भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिये। भजन का नियम बनाना चाहिये और नित्य नियम से भजन करना चाहिये।

(१५) भजन की आड़ में शास्त्रों की अवहेलना करना कदापि उचित नहीं है। हम भजन करते हैं, हम भक्त हैं यह समझ कर भूलकर भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये नहीं तो घोरपतन हो जाता है।

॥ श्री हरिः ॥

मीरा के गिरिधर ?

(लेखक--श्री राधेश्यामजी द्विवेदी)

मीरा इस शब्द में कितनी मिठास है, कितनी सरलता, कितना लालित्य है, कहा नहीं जा सकता, उसकी माप बुद्धि गम्य नहीं है, मीरा का माधुर्य अनुभव गम्य है। मीरा के उच्चारण से ही हृदय में एक प्रकार की गुदगुदी उत्पन्न हो जाती हैं एक प्रकार का उन्माद आ जाता है जो हमारे हृदय को प्रेम की मन्दाकिनी से परिप्लावित कर देता है। हम देखते हैं कि मीरा में कितना उन्माद है और उसकी कल्पना भी उन्माद से कितनी भरी है। आज के भटकते प्राणी को जिसका हृदय सांसारिक झंझटों में आकुल है, मीरा के उन्माद की बहुत ही आवश्यकता है, वही उसका संजीवन है,वहीउसका प्रेम है, वही उसका श्रेय।

आज हमारा मस्तिष्क घड़ी के यंत्र की भांति दिन रात काम करता है और हमें इतना श्रान्त, परिक्लान्त कर देता है कि हम ऐसे जीवन से ऊबने लगते हैं तब हम विवशतया मादक द्रव्यों का सेवन कर कुछ क्षणों दूसरे संसार में खोकर मस्तिष्क को शान्ति देना चाहते हैं लेकिन मस्तिष्क को शान्ति की अपेक्षा दूना परिताप बढ़ता है और हमारा मस्तिष्क दिनों दिन विकृत होता चला जाता है। तब हमें एक ऐसे मादक द्रव्य की खोज करना है जो सर्व सुलभ हो, शासन के नियन्त्रण से मुक्त हो और जिसके सेवन से हमारे मस्तिष्क को शान्ति मिले, और हम कुछ क्षणों आनन्द में भूले रहें। वह मादक द्रव्य प्रेम है। हमें इसी का प्याला भर-भर कर पीना है। प्रेम के प्याले में अमरत्व है। वह हमारे जीवन को अमर करेगा।

प्रेम नित्य वस्तु है, उसमें स्थायित्व है। शुद्ध है, निर्विकार है और आगे इसका परिपाक होने पर यही प्रेमास्पद बन जाता है। इसलिये प्रे[म] साधन और साध्य दोनों है। प्रेम को हम सांसारिक पदार्थों में कभी प्रयोग नहीं कर सकते इसको हम त्रिगुणातीत समझते हैं इसलिये इसका सम्बन्ध भी गो गोचर की सीमा से परे ही है।

किशोरी मीरा अपने यौवन के उन्माद को एक ऐसे उन्माद से विजित करती है जिसने उसके सारे जीवन को मतवाला बना दिया, अन्यथा अन्य उन्माद समस्त जीवन का न होकर एक सीमा में रहता।

मीरा का उन्माद गिरिधर था। गिरिधर उसके जीवन में प्रेम बन कर आया था। प्रेम असीम था इसलिये मीरा भी असीम बन गई। उसने माया के सिकुड़े घेरे को तोड़ डाला। उसने क्षणिक सुख को तिलान्जलि दी। वह स्थायी सुख की अभिलाषिनी थी। वह विषयानन्द नहीं परमानन्द में निमग्न रहना चाहती थी। वह ऐसे सुहाग का वरण नहीं करना चाहती थी जिसकी स्थिति चूड़ियों में हो और जिसकी समाप्ति भी चूड़ियों में हो। उसका सुहाग अमर था, उसके सुहाग की चूड़ी समाप्त नहीं कर सकती थी। और न कोई उसको वरण कर सकता था।

उसने मिट्टी के पुतले से सम्बन्ध नहीं जोड़ा था। उसका सांई पानी का बुदबुदा नहीं था। और न ऐसा तारा था जो प्रभात होते-होते अस्त होजावे। उसका वर एक अमृत था जिसने मीरा के जीवन को अमरत्व प्रदान किया। मीरा ने संसार की किशोरियों के वर की विडम्बना का कैसा दयनीय चित्र खींचा है:—

उसने कहा,

"ऐसो वर को के वरुं जो जन्मे और मर जाय,

वर वरिये म्हारे गोपालजी, जासूं चुंडलो अमर होजाय,

मीरा ने उस गिरिधर के साथ अपना नाता जोड़ा था जिससे नाता जुड़ने के बाद जीवन में क्षण क्षण आनन्द रहता है। जिस जीवन में बाधा सहस्रों कोस योजन दूर पर खड़ी खड़ी झांकने को तरसा करती है। जीवन की मछली अथाह प्रेम सागर में सुखी रहती है।

मतवाली मीरा के गिरिधर सब के होते हुये भी मीरा के अपने एक ही थे, मीरा के वे अनन्य थे। मीरा उनके लिये सब कुछ न्योछावर कर चुकी थी। राजस तत्वों में पली मीरा को जीवन में विराग था उस राजसी जीवन से। किन्तु उस जीवन से अनुराग था जिसने उसके जीवन को जीवन दिया, जो उसके जीवन का जीवन बना। सखियों का आग्रह मीरा ने किस दृढ़ता से टाला है उसे प्रेम की पराकाष्ठा ही कही जा सकती है, मीरा कहती है:—

"बाला री मैं तो वैरागिण हूंगी,

जिन पेषां म्हारो साहिब रीझे,

सो ही भेष धरुंगी, बाला री,"

सखियों के साथ राजसी परिधान उसे पहिनना कहां अच्छे लग सकते थे। वह तो गिरिधर के रंग में रच रही थी।

मीरा की तन्मयता, उस समय अधिक बढ़ जाती है वह अपनी सुध बुध खो बैठती है, जब वह अपने पैरों में घुंघरु बांध कर अपने प्रियतम के आगे नृत्य करने लगती है, उसके हृदय की उमंग, उसके हृदय की उत्कण्ठा घुंघरू के स्वर से झन झन करती हुई समस्त चराचर को उन्मत बना देती है, गिरिधर भी उसके नाद में खो जाते हैं मीरा गिरिधर मय हो जाती है और गिरिधर मीरा मय। मीरा चेतना पाकर अपने गिरिधर को जिन आंखों से देखती है उन आंखों से यदि गिरिधर को देखा जाय तो गिरिधर निहाल ही करदें लेकिन अभी तो ऐसा कोई मीरा के गिरिधर को मीरा से छुड़ाने वाला हुआ ही नहीं है। हम मीरा का ही ध्यान करते हैं कि वह अपने गिरिधर का अपने हाथ से हमें भी प्रसाद दे।

राम नाम सद्रूप !

(रामकिंकर श्री भगवानवल्लभ पाण्डेय)

बड़ी करारी हार है उजियारे के बीच-

अंधकार अनुमानिकै सोयो अहनिसि नीच !

नाच रही खिसियानि सीस पै मीच न जानी

बूड्य अंध ! अगाध सिंधु में हानि न मानी

मौन भयो अब मरत रे ! सूझै गरव गुमान

हा हा करत न धरत है अजहूँ पिय को ध्यान

कान अँगुरी दई

(२)

गई बीत सो तो गई, बहुरि न आई हाथ

हे मन ! अब जिन दीजियो मद ममता को साथ

धरिये सोई अंतराल में जोग पियारो

रहित रूप संकल्प कल्पना हूँ सों न्यारो

रसना निसिदिन वारसिकै राम नाम सरसाय

अलख रूप सो आपहीं रंग चतुर रंगि जाय

और उतरै नहीं

(३)

ऐसी रीत निबाहिये मीत पिया के संग

सो सुरंग रंगि जाइये, जाके रूप न रंग

रूप रंग साकार अंग तें बाहिर नाहीं

महाभाव निर्वान परम पद याही माहीं

कंप प्रकंपन सरिस जो ध्यान-ध्येय की रीत

सो अखंड निर्वान के पदसों गहरी जीत

प्रतीती है यही

(४)

पिय प्रतीति की साधना, जुग बिसेस के हाथ

ऐसो साथी खोजिये रहे अन्त लौं साथ

राम नाम ! सद्रूप, रूप को नास न जानै

को ऐसो साथी बिसारि औरहिं जियं आनै ?

सहे रोग कलिकाल के अंतराल ससरीर

रहे निरोगी नाम ले तुलसी, सूर, कबीर,

बेर तू क्यों करे ?

भगवान का दर्शन कैसे हो ?

(लेखक -- श्री राजनारायणजी द्विवेदी)

राम नाम कलि अभिमत दाता ।
हित परलोक लोक पितु माता ॥
आरत नाम जपहि जन भारी ।
मिटै कुसंकट होहिं सुखारी ॥

स्वरचित पुस्तक दोहावली में गोस्वामी तुलसीदासजी डंके की चोट कहते हैं कि यदि श्रद्धा प्रेम की कुछ कमी हो तो ६ मास तक लगातार 'राम' नाम का जप करो । सभी मंगल और सिद्धियां तुम्हारे हाथ लगेगीं । इस अवधि में केवल फल और पय (दूध जल) पर जीवन निर्वाह करना होगा ।

पय आहार फल खाइ जपु राम नाम षट मास ।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥

यदि नहीं, तो परमात्मा की प्राप्ति के लिए बहुत समय तक साधन करने की आवश्यकता भी नहीं है । अपिच आवश्यकता है उत्कट-प्रेमकी - रामहिं केवल प्रेम पियारा । जानि लेहु जे जाननि हारा ॥ कूप पतित मनुष्य की तीव्र इच्छा यही होती है कि कैसे हम बाहर हो जांय ऐसी ही इच्छा, प्रगाढ़ प्रेम और अनुरक्ति की आवश्यकता है । अगर इस तरह निष्काम भक्ति मनुष्य में घर कर जाय तब तो भगवान हठात् दर्शन देकर कृतार्थ करदेते हैं । उस अवस्था में तो उन्हें समय अवधि प्रभृति का नियम ही नहीं रहता । विशुद्ध और अनन्य प्रेम उन्हें प्रिय है ।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना ॥

भगवान् का कोई नाम जपते-जपते अनयास प्रेम हो जाता है । भगवान् का स्वरूप उनका नाम ही तो है । भगवान् का स्वरूप-नाम और ज्ञान सब एक ही है । असल में नाम ही भगवान् के रूप में प्रकट होता है । ऐसा समझना ही नाम के तत्व और प्रभाव को समझना है । नाम लेने से प्रथम तो सब दुःखों का नाश होजाता है । तत्पश्चात् मानसिक दुश्चिन्ताएं खाक हो जाती हैं । इसके बाद विश्वास पुरःसर अनन्य अनुराग होने लगता है; अनुराग ही तो भक्ति है । 'पूज्येपु अनुरागो भक्तिः'—इस भक्ति से चित्त वृत्ति का निरोध हो जाता है । एकाग्रता आजाती है । चित्त एकाग्र हुआ कि ध्यान लगा ।

और इस प्रकार के ध्यान से समाधि लग जाती है - समाधि में भक्ति तप कर सतेज हो जाती है । मन उसमें रमण करने लगता है । उसका बाहरी विषय समाप्त हो जाता है । संसार की रमणीयता उसे आकर्षित नहीं करती । अतः अन्य ओर अनुरक्ति ही नहीं होती । बस यही भक्ति अनन्य हो जाती है । विशुद्ध भक्ति यही है । जिसमें सच्ची भक्ति है, सत्य विश्वास है उसको प्रभु अवश्य दर्शन देते हैं लेकिन जिसमें ये गुण नहीं हैं उनको विलंब होता है । और बहुत समय तक नाम जप का सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि आगे चर्चा हो चुकी है कि नाम जपते-जपते आसक्ति होने में देर न होगी तब भक्ति आएगी। नाम जप का अभ्यास करने से, पूर्व के कुत्सित संस्कार नष्ट हो जाते हैं । कुसंस्कारों के मिटने पर सुसंस्कार जोर लगाता है । सुसंस्कार का रंग जब पक्का होता है तब विश्वास दृढ होने लगता है, अपवित्र भावनाएं दूर होकर प्राणिमात्र में भगवान की सत्ता दीख पड़ती है और तुरन्त उपासना शुरू हो जाती है । उपासना वह है जिसमें अखण्ड विश्वास, निरन्तर प्रभु की याद और ध्यान हो। इस उपासना को हृदयङ्गम करने के लिए गोस्वामीजी ने कहा है

तन से कर्म करहु बिधि नाना।
मन राखहु जहं कृपा निधाना॥
मन से सकल वासना त्यागो।
केवल राम चरन लय लागो॥

इस उपासना की सिद्धि प्रेम से होती है। बिना इसके सफलता नहीं मिलती। यज्ञ व्रत और अतिरिक्त नियमों के पालन से तबतक सफलता नहीं मिलती जब तक अनुराग न होगा।

मिलहिं न रघुपति बिन अनुरागा।
किये जोग जप नियम बिरागा॥

अनुराग तब होगा जब मन विषयों से अलग हो जाएगा। मन का विषयों से अलग होना ही राम के चरणों में अनुराग का पक्का सबूत है—"जब मन में हो विषय-विरागा। तब हरि चरन उपज अनुरागा"॥ भगवान का ध्यान-स्मरण सदा किया जाय तो अवश्य हृदय की जलन मिट जाय, सारे विकार दूर हो जाय। अनुभव की बात है; प्रमाण के लिये तो गोस्वामीजी अपनी अन्तरात्मा की आवाज प्रस्तुत करते हैं —

तब लगि हृदय बसत खल नाना।
लोभ मोह मत्सर मद माना॥
जब लगि हिय न बसत रघु नाथा।
धरे चाप सायक कटि भाथा॥

धीरे धीरे साधन करते हुए साधक भगवान् में मन लगाता है। 'राम राम' रटते रटते राम शब्द जो ॐ का रूपान्तर है अस्थि-मज्जा-मांस और रक्त में मिल जाता है। शरीर में बहत्तर करोड़ नाड़ियां हैं। उन नाड़ियों में राम नाम दौड़ने लगता है। शब्द चारों ओर गूंज जाता है। इतना ही नहीं चौवन करोड़ सरसठ हजार शरीरस्थ केश (रोआं) हर्ष से नाचने लगते हैं और भगवान् उस समय रुक नहीं सकते अकस्मात् दर्शन देते हैं। दर्शन के समय भगवान् भक्त को दिव्य दृष्टि देकर तब दर्शन देते हैं; क्योंकि चर्म चक्षु में उस अतुल वैभव—अनिर्वचनीय सत्ता वाले प्रभु के तेजोमय रूप को देखने की शक्ति नहीं है। इसलिए तो अर्जुन को श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे पार्थ! तू मुझे इस नेत्र से नहीं देख सकते। अतः दिव्य नेत्र देता हूं—

नतु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

दर्शन हो जाने पर भक्त मुग्ध और अभिभूत हो जाता है। राम नाम प्रभाव जानने और विश्वास के लिए सिर्फ एक मास नियमित सायं प्रातः जपकर कोई देख ले। उसके बाद तो वह स्वयं समझ जाएगा कि वस्तुतः नाम में अलौकिक शक्ति है कि नहीं

नाम-जप

(लेखक—श्री शंकर सहायजी वर्मा, एम० ए० बी० टी० साहित्यरत्न)

तू आँख मिचौनी खेलता है, मैं खोज रहा हूँ तुझे।

खोज में भटक रहा हूं, अनादि काल से-कौन जाने, यही क्रम चलता रहे अनन्त काल तक।

छद्म है तेरे खेल में, भावुक भक्त तभी कहते हैं तुझे, 'छलिया'।

सुना है, मां कौशल्या ने तुझे गोद में खिलाया था। 'छछिया भर छाछ' में कितना नाच नचाया था, तुझको गोपियों ने।

तू हारा-एक बार नहीं अनेक बार, जीत कर भी तेरी हार ही रही।

जीतने वाले और थे

कबीर तुझमें रमा था। अंधा सूर तुझे जी भर कर देख पाया। तुलसी की चाकरी का तू चाकर है।

और प्रेम दीवानी मीरा-उसने तो तुझे मोल ही ले लिया।

भक्तों के साथ आँख मिचौनी का खेल खेलता रहा—युग-युग से, चिरकाल से।

उनकी 'जय' में एक मंत्र था, एक रहस्य था। विश्वाधार भी होकर तू उनके आधारका भिखारी था।

मंत्र सरल था। शब्दाडम्बर नहीं, क्लिष्टता नहीं, कटुता नहीं।

शास्त्रों से अनुमोदित था वह। विज्ञान उसका समर्थन करता था।

इसी मंत्र के बल पर जीवन-जीवन था—मृत्यु अमरत्व।

ऋषियों ने गाया है, इसे। मुनियों ने गाया है। महापुरुषों का एक मात्र सम्बल—नाम जप।

"भक्तराज विभीषण"

लेखक-श्री पं० गोविन्दजी दुबे "साहित्य रत्न"

जिन प्रातःस्मरणीय परम भक्तों ने अपने मन मधुप को पतितपावन के पादपद्मों का मत्त-चंचरीक बना दिया है; जिन्होंने लोक-मर्यादा की रक्षा करते हुए जगदीश्वर को प्राप्त करने का साधन करके सफलता प्राप्त करली है; एवं जो हृदय से जिनके पावन नाम का निरंतर स्मरण करते रहते हैं उन महा-भागवत, परम-पावन भक्तों के विषय में क्या कहा जा सकता है। जगद्धात्रीवसुंधरा उस महापुरुष के जन्म से अपने को कृतकृत्य समझती है; वह तो लोक का आभूषण है; भगवती श्रुति भी उसके विषय में प्रशंसा करती है यथाः—

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्म मृत्यु प्रहाणिः। तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥

(श्वेताश्वेतरोपनिषद् १ । ११)

परमात्मा का ज्ञान होने पर अविद्यादि सम्पूर्ण क्लेशों का नाश हो जाता है; क्लेशों का क्षय हो जाने पर जन्म मृत्यु की निवृत्ति हो जाती है; तथा उसका ध्यान करने से शरीर पात के अनन्तर सर्वैश्वर्यमयी तृतीय अवस्था की प्राप्ति होती है और फिर आप्तकाम होकर कैवल्य पद को प्राप्त हो जाता है।

परम भागवत विभीषण ऐसे ही पावन पुरुषों में से एक थे। विभीषण राक्षसाधिप रावण के विमात्र-बंधु होते भी जन्मना ब्राह्मण थे। जीवन की प्रारंभिक अवस्था से ही उनकी रुचि, उनका राग भगवान् के पादपद्मों की ओर था। जिस समय तीनों भाई तपस्या करने की सदिच्छा से सुमेरु पर्वत पर पहुँचे; उसी समय तपस्या के फल-स्वरूप विधाता वरदान देने गए; उस समय विभीषण ने दोनों भाइयों से विभिन्न अपनी रुचि प्रगट की जो इस प्रकार थीः—

गए विभीषण पास पुनि, कहेउ पुत्र वर माँगु।
तेहि मांगेउ भगवन्तपद, कमल अमल अनुरागु॥

पतित-पावन परमेश्वर कभी भी किसी, गुण, जाति, आश्रमादि से प्रसन्न नहीं होते वे तो निष्केवल प्रेम से ही प्रसन्न होकर भक्त को अपना सर्वस्व अर्पण करके उसके आधीन हो जाते हैं श्रीमद्भागवत में भी कहा हैः—

भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।

(भागवत)

भगवान् भक्ति से संतुष्ट होते हैं; गुण से नहीं क्योंकि भगवान् को भक्ति प्रिय है।

विभीषण के हृदय में रावण कृत लोक विरुद्ध कर्म कभी भी स्वीकार नहीं थे; वे उसके निन्दित कर्म से सदैव असन्तुष्ट रहते थे; और उसे पाप कर्मों से बचाने की चेष्टा में रहते थे। विभीषण रावण प्रदत्त एक विशाल अट्टालिका में सपरिवार रहकर हृदयेश्वर के ध्यान में सदैव निमग्न रहते थे; रावण के अत्याचार, अनीतिपूर्ण पाखण्ड-प्रदर्शन एवं कुमार्गगमन से भक्तात्मा के हृदय में दुःख की ज्वाला सर्वदा धधकती रहती थी जिसे हरिभक्ति रुपी शीतलजल प्रज्वलित होने से रोके था फिर रावण का डर भी ऐसा था जिसके कारण स्पष्ट प्रगट नहीं कहा जा सकता था।

विभीषण जितने भक्त थे उससे कुछ कम नीतिज्ञ। जिसकी प्रथम झांकी का दर्शन हम हनुमान बंधन के समय पाते हैं। परमेश्वर के परमबल से वायुनन्दन मारुति ने वाटिका विध्वंस का भयंकर कार्य किया अनेक योद्धाओं को जमपुर विदा किया। सैंकड़ों को मसला, कुछ बचे हुए समाचार देने रावण तक पहुँचे; अन्त में रावण ने इन्द्रजीत मेघनाद को उन्हें बांधकर ले आने के लिए भेजा, रावण राक्षस तो था ही; जो उसे

अथवा साधु सिद्ध करने का दावा करते हैं यह उनका दुस्साहस है; बुद्धि की विवेकहीनता है। संसार में कोई भी व्यक्ति अपने आचरण से साधु अथवा दुष्ट कहलाता है, रावण के आचरण साधु नहीं थे; शास्त्र-विरुद्ध आचरण करने वाले को ही राक्षस कहते हैं:—

जिनके यह आचरण भवानी।
ते जानहु निशिचर सब प्रानी॥

उसने अपने भाव के अनुसार अपने अनुचरों को हनुमानजी को प्राण दण्ड की आज्ञा दे दी। ठीक, उसी समय विभीषण भी आ उपस्थित हुए और उसे उक्त आज्ञा से रोका।

"नीति विरोध न मारिअ दूता।"

विभीषण की दिनचर्या बड़ी ही भली थी। प्रभात से सन्ध्या तक का सम्पूर्णकाल 'युक्ताहार विहारस्य' (गीता ६। १७) के अनुसार विभाजित था। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्यकर्म करके स्वाध्याय, सत्संग, करते थे। गृह का दृष्य तो अतीव मनोरम था, जहाँ-तहाँ वृन्दावन लगा रखा था जो कि भक्त के नम्र व्यवहार की सूचना-रहित नहीं था। राजप्रसाद के चारों ओर इष्ट के मांगलिक नाम का लेख एवं उनके आयुधों के प्रतीक प्रासाद की शोभा उत्पादक थे। ठीक ऐसे समय में संभवतः रात्रि का अवशेष काल होगा सीतान्वेषण तत्पर वायुनन्दन सीता की खोज में यत्र-तत्र-सर्वत्र खोज रहे थे; वहाँ आए।

भक्तों के हृदय में अपने प्रियतम की सुमधुर झांकी का दर्शन निरंतर होता रहता है। लोक व्यवहार में शरीर साथ होने के कारण शरीर द्वारा उनका व्यवहार लोक मर्यादित भले हो परन्तु उनका अंतःकरण विशुद्ध रहता है; वह सदैव अपने आराध्य चिंतन में संलग्न रहता है। हनुमान और विभीषण ऐसे ही पुरुषों में से थे। दोनों के कार्य सराहनीय नहीं थे, दोनों अपने आपको प्रभु की कृपा का अधिकारी नहीं मानते थे; यह बात चाहे अपनी नम्रता प्रदर्शित करने के हेतु वे इस प्रकार स्वीकार करते थे। हनुमानजी ने समस्त लंका में सीता का पता लगाया; पर कहीं नहीं मिल सकी। खोजते-खोजते एक विभिन्न प्रकार का प्रासाद दर्शित हुआ। राक्षसों की माया की कल्पना ने उन्हें वाध्य किया जिससे उन्होंने ब्राह्मण का वेश बनाकर उस भवन के दरवाजे पर प्रभु स्मरण किया।

संसार में जिस व्यक्ति के हृदय की जैसी स्थिति होती है; जो जैसा होता है वह दूसरों को भी वैसा ही समझता है, कहावत भी है "चोर नग ठग आपसा जाने जग" विभीषण स्वयं हरिदास थे उन्होंने प्रभु के नाम का स्मरण करने वाले व्यक्ति को भी हरिदास समझा, बाहर निकले, भेंट की, कुशल पूछी, और फिर परिचय पूछा।

की तुम हरिदासन्ह महँ कोई।
मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम रामदीन अनुरागी।
आयउ करन मोहि बड़भागी॥

मारुति ने अपनी गाथा का आद्योपान्त सांग वर्णन किया उस महापुरुष के सामने जिसका विभीषण के हृदय पर सच्चा प्रभाव पड़ा, तब विभीषण ने भी अपना आत्म-विश्वास, असामर्थ्य, शारीरिक स्थिति एवं मानसिक दौर्बल्य एवं प्रभु पाद-पद्मों के दर्शन की अभिलाषा उनके सामने प्रगट की। हनुमानजी ने प्रभु कृपा का वास्तविक अधिकारी समझकर गाढ़ी मैत्री के अनन्तर प्रभु की शरणागत वत्सलता का वर्णन किया जिससे उनके हृदय में प्रभु की अहैतुकी दया पर विश्वास हुआ और इसी क्षण से प्रभु के पावन-चरणों के दर्शन की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। क्षणिक चिर शान्ति के अनन्तर विभीषण ने सीता की स्थिति और उनके समीप पहुँचने की युक्ति का सांगोपांग वर्णन कर हनुमानजी को विदा किया।

परिवर्तनशील प्रकृति का नियम अखण्ड है, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, हानि-लाभ, जीवन-मरण

आदि एक के अनन्तर एक बदलते रहते हैं। सोने की लंका जो मय निर्मित थी एक वानर द्वारा जला दी गई और अब उसके राज्य के ऊपर काल-चक्र घूम रहा है, लंका का अवशेष भाग भी नष्ट हुआ चाहता है, इसी हेतु श्रीरामजी की सेना समुद्र के उस पार आकर उपस्थित है। असुर अनुचरों ने उक्त समाचार रावण से कहा, रावण कुछ चिंतित हुआ, राजप्रासाद में उसे परम पति-व्रता, राजमहिषी, परम-विदुषी मंदोदरी की कटूक्तिएँ सुनने को मिलीं जिससे प्रेरित वह राजसभा में पहुँचा, वहाँ उसने मन्त्रियों से मंत्रणा की जिनका निर्णय निम्न था:—

"जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं।
नर वानर केहि लेखे माहीं॥"

विभीषण रावण के भाई होने के साथ-साथ उसके अमात्य भी थे, रावण जब किसी भारी संकट कालीन अवस्था में होता था उस समय उसे विभीषण की सलाह अपेक्षित थी, इस समय भी उसने विभीषण की सम्मति चाही और उसे राजसभा में बुलाया। राज्याज्ञा से प्रेरित विभीषण दरबार में पहुँचा, दरबार की स्थिति बड़ी ही विचित्र थी, दिग्पाल करबद्ध अपराधी की भांति एक ओर कतार में खड़े थे, सहस्र किरणधारी अंशुमाली दरवाजे पर प्रतिहारी के वेष में स्थित था, स्वर्गेश इन्द्र मालाकार था, जगद्-भक्षक साक्षात् काल सिंहासन के पाँवों से बँधा हुआ था। चन्द्रमा छत्र धारक था। विभीषण ने प्रणाम किया और अपने पूर्व निर्मित आसन को अलंकृत किया। रावण के पूछने पर विभीषण ने भी नीति की रीति में भक्ति का पुट देकर उसे पाप से बचाने का आदेश दिया। रावण ने सीता अपहरण किया था। उसने चोरी की थी, उसके हृदय में सीता के प्रति दुर्वासना थी, वह अपनी वांछा पूर्ण करना चाहता था। अतः सर्व प्रथम उन्हीं को वापिस करने की सम्मति दी जिसका प्रारंभ इस प्रकार है:—

जो आपन चाहै कल्याना।
सुजस सुमति, सुभगति सुभनाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चौथ के चंद कि नाईं॥

रावण, एक तुम्हीं नहीं जिस किसी भी जीव को अपने कल्याण की इच्छा हो वह परस्त्री का दर्शन स्वप्न में भी न करे। इतना ही नहीं जीव को सदाचार शिक्षा के पुट में अध्यात्म भावों का दर्शन कराना भी विभीषण के इस उपदेश से स्पष्ट लक्षित होता है। भूत दया, निर्लोभता, अकाम रहकर जीव को भगवच्छरणागति बिना सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। इस प्रकार सदाचार और सीता को वापिस करने की बात कहकर उसने भगवान् राम के विषय में भी बहुत कुछ कहा। राम ब्रह्म हैं, मनुष्य नहीं, अनामय, अ[illegible] और भगवान् हैं, अपने भक्तों की गौ, ब्राह्मण और देवताओं की रक्षा के लिए अखिल-ब्रह्माण्डेश्वर ने मानव-रूप में धराधाम को विभूषित किया है। वे भगवान् बड़े दयालु हैं; उन्होंने शरण आए हुए उस भक्त का भी त्याग नहीं किया जिसे संसार के द्रोह का पाप लग चुका हो:—

सरन गए प्रभु ताहुं न त्यागा।
विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा॥

मैं आपका अनुज हूँ, आपका शुभचिन्तक हो[illegible] के कारण बारम्बार प्रार्थी हूँ, आप इस अभिमा[illegible] को छोड़कर प्रभु के अनन्य भक्त बनें।

माल्यवंत ने उक्त विषय का समर्थन किया; अप[illegible] सम्मति उस राक्षस के आगे उपस्थित की पर[illegible] कब मानने चला था; उसने उसे वहां से भिका[illegible] भगाया। वह तो घर चला गया; परन्तु विभीष[illegible] के हृदय में मातृ भाव का मोह होने के कारण[illegible] भर्त्सना सहकर भी फिर उससे नीति के रहस्यों[illegible] उद्घाटन करने लगा।

कुमति सुमति सबके उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं।

जहां सुमति तहँ सम्पत्ति नाना।
जहां कुमति तहँ विपति निदाना॥
तव उर कुमति बसी विपरीता।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
काल राति निसिचर कुल केरी।
तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

\+ + + +

बुध पुरान श्रुति सम्मत बानी।
कही बिभीषन नीति बखानी॥

रावणके हृदय में इस सदुपदेश ने घृत का कार्य किया वह सिंहासन से उठा, उसकी भर्त्सना की और उसे यह कहकर लात मारकर लंका से निकाल दिया कि—

ममपुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।
सठ मिलु जाइ तिन्हहुं कहु नीति॥

जो भगवान की शरण के इच्छुक रहते हैं; जिन्होंने अपना तन, मन, धन सब कुछ प्रभु के समर्पण कर दिया है उन्हें मान-अपमान, सुख-दुख, सम्पत्ति-विपत्ति सब समान हो जाते हैं। भारी से भारी संकट भी उन्हें अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं करता। रावण की भर्त्सना का विभीषण के हृदय में कोई भी असर नहीं हुआ वह प्रसन्नचित्त प्रभु की शरणागति के लिए प्रस्थानित हुआ। कोमल भावों के भण्डार हृदय में दर्शनेच्छा प्रबल हो उठी वह अपने मनोगत भावों को दरिद्र की सम्पत्ति की भांति मनोरथ में परिणित करता हुआ चला—

देखिहौं जाइ चरन जल जाता।

\+ + + +

ते पद आजु बिलोकिहौं, इन नयनन्ह अब जाइ।

सुंदर ललाम सुखधाम अभिराम अति,
सेय वसुयाम उर आनँद बगारिहौं।
ऊरध कमल वज्र अंकुशादि चिन्ह सबै,
परसि प्रमोद पाइ सोंक श्रम टारि हौं।
रसिक बिहारी रज नयनन्ह लगाय नित,
लोचन सिराय निज जनम सुधारि हौं।
नाथ हैं अनाथन के ऐसे रघुनाथ जूके,
दृगभरि आजु पदपंकज निहारि हौं।
(रामरसायने)

महाराज राम पहिं जाऊँगो
सुख स्वारथ परि हरि करिहौं,
सोई जेहि साहिबहि सोहाउँगो।
(गीतावल्याम्)

उन भगवान् के उन चरण कमलों के दर्शन करुंगा जिनका ध्यान अनेकों मुनि करते रहते हैं—

इस प्रकार प्रियतम मिलन की सदिच्छा में मत्त-मधुकर की भांति लुब्ध विभीषण ने सागर पार किया। रामजी के सेवकों ने आते हुए विभीषण को राक्षस समझकर बांध लिया और सुग्रीव को उसके आने की सूचना दी। सुग्रीव सरकार के समीप पहुँचे। भगवान राम बनवासी हैं राजनीति में कुशल सरकार ने सुग्रीव से विभीषण के विषय में मंत्रणा की। सुग्रीव ने एकांश अर्थात् राजनीति सम्मत अपनी मंत्रणा उपस्थित की। सरकार राघवेन्द्र को वह बात रुचिकर नहीं हुई उन्होंने सुग्रीव की उक्ति को अनुचित ठहराते हुए शरणागत की महत्ता स्थापित की।

भक्त भगवान के होते हैं और भगवान भक्तों के भगवान की अपने भक्तों पर अहैतुकी कृपा रहती है; उन्होंने तो इस बात का ठेका ही ले रखा है तभी तो विभीषण को अपनाने के लिए इस प्रकार कह रहे हैं:—

कोटि विप्र वध लागई जाहू।
आए सरन तजौं नहिं ताहू॥
सन्मुख होइ जीव मोहि जबही।
जनम कोटि अघ नासउं तबहीं॥

सुग्रीव विचार तो करो। पापी का यह सहज ही स्वभाव होता है कि उसे मेरा भजन कभी भी अच्छा नहीं लगता; अब यदि वह मेरी शरण आ रहा है तो वह पापी कैसे माना जा सकता है। इतने पर भी यदि तुम्हारे ही विचारों के अनुसार वह दुर्भावना से आ रहा है तो भी कोई आपत्ति नहीं क्योंकि:—

जग महुँ सखा निशाचर जेते।
लछिमन हतहिं निमिष महुँ तेते॥
और यदि......जो सभीत आवा सरनाई।
रखिहहौं ताहि प्रान की नाई॥

अतः उसे यहां आने दो! धन्य भगवान् आपकी शरणागत-वत्सलता जो शत्रु के पक्ष के प्रति भी इस प्रकार व्यवहार। प्रभु आज्ञा से वानर ने विभीषण को सादर लिवा लाए।

विभीषण ने दूर से ही सरकार की वनवासी झांकी का दर्शन किया। सरकार की आजानु भुजाएँ भक्तों का संकट दूर करने के लिए फैल रही थी; विशाल मस्तक पर जटाओं का मुकुट असीमित सौन्दर्यात्मक था। अरुनार विन्द नेत्र भक्तों के हृदय की जलन का आकर्षण कर रहे थे। हाथ में धनुष-बान कमर में तरकस कसे हुए एवं विस्तीर्ण वक्षस्थल पर भृगु चिन्ह सुशोभित हो रहा था। श्याम वर्ण सरकार का जो करोड़ों कामदेव की कान्ति का अपहरण कर रहा था। ऐसे सरकार की झांकी को देखकर दूर से ही अपनी दीनता का भाव प्रदर्शित करते हुए उसने सरल शब्दों में परिचय देते हुए दण्डवत् प्रणाम किया।

नाथ दसानन कर मैं भ्राता।
निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा।
जथा उलूकहिं तम पर नेहा॥
श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भवभीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, शरण सुखद रघुवीर॥

विभीषण की सरलता और भावुकता ने इन पदों में अनन्त सौंदर्य उत्पन्न कर दिया है। दार्शनिकों का भी यही मत है जब तक जीव में अभिमान का अवशेष भी रहता है वह पूर्ण ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। विभीषण ने कितने सरल शब्दों में अपना परिचय दिया। भगवान् मैं तो नीच हूँ; पतित हूँ आपको शरणागत-वत्सल सुनकर आपकी शरण आया हूँ आप चाहें तो शरण में लें।

भगवान का अपना यह बाना है वे कभी शरणागत भक्त का त्याग नहीं करते। सरकार उस समय कुशासन को सुशोभित कर रहे थे; सानुज उठे और विभीषण को उठाकर गले लगा लिया। सानुज मिले कुशल पूछी, समीप बिठालकर अर्था मित्रभाव से स्वीकार कर के उससे उसकी स्थिति पूछने लगे—

कहु लंकेश सहित परिवारा।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

उक्त अर्द्धाली में लंकेश पद कह देने के कारण ही सरकार ने विभीषण को लंका का राजा बना दिया क्योंकि भगवान कभी झूंठ नहीं कहते वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि "रामोद्विनाभिर्यापते" इसी प्रसंग में कथाकार लोग भगवान की उदारता में एक तर्क और करते हैं। उनका कहना है कि उसी समय किसी एक ने भगवान राम से पूछा कि आपने विभीषण को तो लंका का राज्य दे दिया यदि रावण आपकी शरण में आ जावे तो! जिसका उत्तर भगवान ने दिया कि "मैं रावण को अयोध्या का राज्य देकर आजीवन साधु रहूंगा।" धन्य भगवान आपकी उदारता।

इस प्रकार दोनों में अर्थात् भक्त और भगवान में क्षणिक वार्तालाप हुआ। भक्त ने अपना दैन्य असामर्थ्य एवं स्थिति का नग्न प्रदर्शन कराया स्वामी ने अपने स्वभाव की ओर लक्ष किया—जो निम्न है। सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ।

\+ + + +

ते नर प्रान समान मम; जिनके द्विजपद प्रेम॥

विभीषण के भावों में पूर्व से आज परिवर्तन हो गया था, पहिले अवश्य उसके हृदय में राज्य सुख की इच्छा थी परन्तु अब जब उसे अखिल ब्रह्माण्ड के अधीश्वर मिल गए उसकी उस वासना का अन्त हो गया।

उर कछु प्रथम वासना रही।
प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

ठीक था, परन्तु इससे क्या ! भगवान राम ने अपनी उदारता का परिचय दिया; विभीषण को उस लंका का राज्य जिसे रावण ने बड़ी कठिनाई से प्राप्त किया था; जिसमें अनेकों आर्य ललनाओं का सतीत्व नष्ट हुआ था अनेकों देवता, किन्नर एवं राक्षसों की अमर आत्माओं का बलिदान हुआ था जिस लंका के लिए; जिस सम्पत्ति को रावण ने अपने प्राणों का मोह त्यागकर बड़ी कठिनाई से प्राप्त की थी; उस अपार सम्पत्ति को उदार भगवान राम ने एक क्षण में दान कर दिया—

नगर कुबेर को सुमेर की बराबरी,
विरंचि बुद्धि को विलासु लंकनिरमान भो।
ईसहिं चढ़ाइ सीस बीस बाहु वीर जहां,
रावण सो राजा तप तेज को निधान भो।
तुलसी तिलोक की समृद्धि सौंज सम्पदा,
सकेलि चाकि राखि आंगरु जहान भो।
तीसरे उपास बनवास सिंधु पास सो समाज।
महाराजजू को एक दिन दान भो (कवितावली)

अब तो विभीषण सरकार राघवेन्द्र के मंत्री हो गए। लंका के युद्ध में कोई भी कार्य उनकी सम्मति के बिना नहीं होता था ! सागर मंथन, अंगद का दूतत्व, सुषैण आगमन, रावण-वध, सीता आगमन आदि की युक्तियां आपके द्वारा ही रामजी पर प्रगट हुई। जिनके कारण लोग विभीषण पर "घर का भेदिया लंका दाह" का आक्षेप करते हैं। यह आक्षेप एक दृष्टि से ठीक है। भारतीय संस्कृति में विभिन्न वादों और सिद्धान्तों का समावेश है। नीति-शास्त्र विद् लोगों का मत इस प्रकार है-"उनका सिद्धान्त है कि महान् से महान् विपत्ति में भी अपने वाले का त्याग नहीं करना चाहिए,; इसलिये उसने श्रीराम से मिलकर अच्छा नहीं किया—

बांधवों का बध करना आत्मवध से कम नहीं।
क्यों विभीषण चित्त में तेरे हुआ कुछ गम नहीं॥
+ + + +
एक लंका के लिए दुष्कर्म तूने जो किए।
वे न हो सकते सुजन से तीन लोकों के लिए॥
क्या बतासे के लिए मंदिर गिराना चाहिए।
क्या लोभ में पड़ शत्रु को सिर झुकाना चाहिए॥

परन्तु हम विभीषण में अपेक्षाकृत भक्ति अधिक पाते हैं। भक्ति का स्तर नीति से ऊंचा भी है। उनका सिद्धान्त इस प्रकार है—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
पिता तज्यो प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्वो, कन्त ब्रज बनितनि, भए मुद मंगलकारी।
+ + + +
तुलसी सो सब भांति परम हितु पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥

इस सिद्धान्त से नीति करोड़ों कोस दूर रह जाती है। माता, पिता, गुरु, स्त्री, पति, बान्धव कोई भी हो यदि वह भगवद्-विमुख है तो उसका त्याग करना अनुचित नहीं। भक्ति में ही आत्म-शांति सच्चा सुख, अविरल गति प्राप्त होती है जो कि मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इसी उद्देश्य को लक्ष्य बना विभीषण ने लोक निन्दा की परवाह न करके राम की शरणागति प्राप्त की। इससे अच्छी बात एक और होती यदि विभीषण लोक व्यवहार की मर्यादा उल्लंघन न करके भगवच्छरणागति प्राप्त करते। इसमें उन्हें लोक में भी सुयश उपलब्ध होता फिर तो सोने में सुगंध हो जाती। बिना भगवच्छरणागति अथवा आत्मज्ञान के आजतक किसी भी जीव को शान्ति प्राप्त नहीं हुई। नीति वालों का भी अन्त में समावेश भक्ति अथवा ज्ञान में आकर ही होता है।

इस प्रकार भगवद्भक्ति से पूर्ण होने के कारण हमें उनके हृदय में समस्त सद्गुणों का दर्शन मिलता है, वे बड़े ही साहसी, गम्भीर, शान्त, उदार,

(शेष पृष्ठ १६ पर)

भजन का अहंकार

[श्री अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव, जनकपुरधाम]

अहङ्कार अच्छा भी होता है और बुरा भी होता है। संसार की सभी वस्तुएं गुण-अवगुण से भरी है। अहङ्कार भी उससे बचा नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्री अवधनिवासियों से कहलाया है—"अस अभिमान जाय जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।" श्री रघुनन्दन आनन्दकन्द परब्रह्म सच्चिदानन्द मेरे स्वामी हैं। यह अहंकार भूलकर भी कभी न छूटे, प्रभु मेरे स्वामी हैं और मैं उनका एक लघुकिङ्कर हूं यह अभिमान अन्य खोटे अहंकारों को जड़ से उखाड़ फेंकने वाला अमोघ अस्त्र है। ठीक उसी प्रकार धाम का परत्व परखने वाली श्री मिथिला की महिमामयी महिलायें अपना गौरव व्यक्त करती हैं—"हम सब सकल सुकृत की रासी। भई जग जनमि जनकपुर वासी। जिन जानकी राम छवि देखी। को सुकृति हम सरिस विशेषी।" कैसा सुन्दर अभिमान है। किसी भक्त ने कहा—"सब चाटेंगे अंगूठा राम तूँ न रूठा चाहिये।" ऐसा अहङ्कार जगत् के लोगों की दास्यता छुड़ाकर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र ईश्वरीय साम्राज्य का सुर-दुर्लभ सुख प्रदान करता है। किसी भाग्य भाजन को ही ऐसा अभिमान प्राप्त होता है।

परन्तु एक दूसरी प्रकार का अभिमान है जिसने समस्त संसार को अपने जाल में फंसा रखा है। यह "अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते" वालों को "आशापाश शतैर्बद्धा मोह जाल समावृत्ता" बनाकर अपनी दास्यता कराता है, फिर ऐसा पामर प्राणी त्रिलोक को विजय भी करले तो केवल अहंभाव की तृप्ति के लिये ही करेगा।

अनेकों पण्डितम्मन्य विद्वानों को देखा है कि वे अपनी विद्या के घमण्ड में इतने अकड़े रहते हैं मानों उन्होंने संसार का महान् उपकार कर दिया है और सभी उनके जैसे ऋणी ही हों। विद्या उपार्जन कर न उनमें विनय आई, न सुशील स्वभाव बना, न त्याग वैराग्य आया, न स्वार्थ छूटा न भजन में मन लगाया, न अज्ञजनों को ज्ञान प्रदान किया और न सेवाभाव से कोई ऐसा कार्य किया जिससे अपना अथवा संसारी लोगों का लोक परलोक कल्याणकारी बने, तब कुछ पा लेने के घमण्ड को ढोते रहने से लाभ क्या? इतना सब कर लेने पर तो अभिमान सब चूर्ण हो जायगा, परन्तु आश्चर्य तो यही है कि जो कुछ नहीं करता है अथवा कुछ करने के बाद जो प्रमादी बन जाता है वही अधिक घमण्डी बन जाता है।

ठीक इसी प्रकार धनिक रात दिन धन का असत् संग्रह और दुरुपयोग ही किया करता है, उसके धन से लौकिक किंवा पारलौकिक किसी प्रकार का लाभ स्वयं, उसको अथवा सांसारिक जनों को प्राप्त नहीं होता है फिर मारे अभिमान के वह मरा जाता है।

कितने वृद्धजन जन्मपर्यन्त कुकर्म और अत्याचार में ही जीवन बिताने पर हम बूढ़े हैं इसलिये सभी हमारी धाक मानें भले उनके द्वारा अणुमात्र भी जगत् को लाभ न हो तो भी गर्व में चूरमचूर रहते हैं।

बहुत से अपनी हुकुमत या (जनबल) जोर शाही के जोर पर नाना प्रकार के अत्याचार करते और अपने शासन किंवा जनबल का घोर दुरुपयोग करके भी अपने गौरव का गीत गाया करते हैं।

कितने जाति के अभिमान में मस्त रहते हैं फिर कर्म उनका चाण्डाल से भी हीन क्यों न हो वे अपने को स्वर्गीय देवदूत समझ बैठते हैं और इतर जनों से व्यर्थ ही घृणा, ईर्ष्या, मोल लेकर अपने आत्मा का घोर पतन कर बैठते हैं। इसलिये हमारे भक्तिमार्ग के आचार्यों ने निरभिमान रहकर प्रभुभजन करनेका बार बार उपदेश दिया है। जाति, विद्या, शासन बल, रूप, यौवन आदि भक्ति के कंटक बता कर प्रयत्न पूर्वक इनको उखाड़ फेंकने की आज्ञा प्रदान की है।

ये अहंकार लौकिक गुणों से उत्पन्न होता है यही बात नहीं है, अध्यात्म मार्ग में ये और भी अड़ङ्गा लगाता है, जिनको सुन्दर सत्सङ्ग का लाभ नहीं मिलता है वे इस मार्ग में आकर अहङ्कार के गुलाम बनकर उस क्षेत्र में भी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, असहिष्णुता के लक्ष्य बन जाते हैं। आज एक मण्डलेश्वर दूसरे मण्डलेश्वर से, एक सम्प्रदाचार्य दूसरे सम्प्रदाचार्य से, एक त्यागी दूसरे त्यागी से दाँव खेलता है; यह भजन की कचाई है, नामानुरागी संत इस से दूर रहते हैं।

एक सन्त ने अपने शिष्य को कहा, बेटा! पंडित और भजनानन्दी से अपना घर दूर बनाना, क्योंकि आजकल अहंकार ने इन्हीं में अपना अड्डा जमाया है, ये जो दूसरे में कोई दोष देखते हैं तो जल जाते हैं और बड़े क्रूर बनकर उनकी कठोर भर्त्सना करते हैं। यदि गुण देखते हैं तो जल मरते हैं और लोगों में उस गुण को केवल दंभ पाखंड सिद्ध करने के लिये चोटी का पसीना एड़ी तक पहुँचा देते हैं। असली भजनानंदी तो मिलते हैं बहुत थोड़े अधिक तो "एरण की चोरी करे, करे सुई को दान। चढ़ चौबारे देखते कहां आवे विमान।" वाली भावना वाले ही होते हैं।

बहुत से तो जीवन भर में दो एक पुरश्चरण करके ही लोगों में इतना घमण्ड करते हैं कि मानों लोगों को वैकुण्ठ भेजने या नरक में ढकेलने का पूर्ण अधिकार इनको ही मिल गया है। बहुत से वेदान्त के दो चार वाक्य रट रटकर स्वयं ब्रह्म बन जाते है, तथा अपने को शुक-सनकादि विदेह-जड़भरत आदि उच्च कोटिके ब्रह्मतत्ववेत्ताओं से भी दो हाथ आगे समझकर सब भजन-पाठ-पूजा छोड़ बैठते हैं और दिन रात खान, पान, आराम में व्यस्त रहने पर भी द्वन्द्वातीत का स्वांग भरते हैं।

इन सब अहँकारों का त्याग करने के लिये ही सन्तों ने कहा है—

ब्रह्म बने सियराम भजत नहिं,
धिकधिक ऐसे जीवन को।
जाहि उपासत सोंऊ चाहत,
"नाम पियूष" हि पीवन को॥

× + ×

नहिं साधु कहावत लगत शरम।
बाना बड़े बड़े को पहिरत,
पाजिन के सब करत करम॥

× × ×

अहंकार की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये एकाग्रचित्त से प्रभु के चरणों का ध्यान लगाकर निरन्तर भगवन्नाम का जप करते रहना चाहिये। श्री सीताराम नामानुरागी सन्तों की सान्निध्य में रहकर जीवन उनकी सेवा सत्सङ्ग में व्यतीत करना चाहिये तथा जो कुछ भी भजन बन जाय प्रभु की श्री गुरुदेव की तथा सन्तों की कृपा का ही पुण्य परिणाम समझना चाहिये। मैं भजनानन्दी हूँ, सत्संगी हूं, दूसरे पापी पामर है ऐसा विचार कभी हृदय में न लाना चाहिये। तथा प्रभु कृपा से जो भी प्राप्त होता है उसे प्रभुका प्रसाद समझकर अपने को धन्य एवं कृतार्थ समझना चाहिये। नाम जप का यथार्थ आनन्द लेने के लिये "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" न भूलना चाहिये।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू॥

× + ×

सजल नयन, गद् गद् गिरा,
गहवर मन, पुलक शरीर।
सुमिरत गुण गण राम के,
केहिकी न मिटी भवपीर॥

यही प्रेमीजनों को प्रेम धन प्राप्त करने का मार्ग है। श्रीरामः शरणं मम

श्री पीपारजी महाराज का परम–उपदेश

'पीपा' पापीमन करे, भले भगत की हांस।
अन्त समय दुख भोगसीं, पड़सी गल जम फांस॥१॥
'पीपा' पापी जगतणा, जासी जमपुर ठेठ।
चेतणहारा चेतनो, सुणजो गहिरे पैठ॥२॥
अठे उठे दोऊ लोक में, थांरी राम दोहाई।
पाले पोसे भगत को, 'पीपो' कहै बजाई॥३॥
'पीपा' जग जंजालसूं, राखहु राम बचाई।
मारण चाहत मोय अब, माया रांड नचाई॥४॥
भेप भलो भगवान् को, वैष्णव धारत अङ्ग।
'पीपा' पाप जराय के, करत काल को दंग॥५॥
'पीपा' पदरज परसतां, वेण सुणन्ता कान।
संत समागम अघ हरत, वरणत वेद पुरान॥६॥
'पीपा' सदगुरु जो करै, दया हीन जन जान।
निश्चय नर पावै सदा, दोऊ लोक कल्याण॥७॥
सदगुरु शब्द सुहामणो, 'पीपा' करतूं जाप।
श्री गुरु कृपा कटाक्षसों, मिले रामजी आप॥८॥
'पीपा' पीपो पाप को, भरले पापी खूब।
अन्त समय शिर फोडि है, जमगण धूबाधूब॥९॥
राम रंग लाग्यो जरा, भाग्यो भव भय घोर।
'पीपा' परतापी बण्यो, रघुवर मारग तोर॥१०॥

—'प्रबोध चालीसा' से उद्धृत, प्रेषक–श्रीअवधकिशोरदासजी

[पृष्ठ १३ का शेष]

सरलचित, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, शास्त्रज्ञ पण्डित एवं विद्वान्-भक्त थे। उनके साहस का पता विभीषण रावण युद्ध में मिलता है जबकि वे रावण के आक्रमण से क्रोधित हो गदा लेकर युद्ध करने को प्रवृत्त होते हैं—

देखि विभीषण प्रभु श्रम पायो।
गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥
\+ \+ \+ \+
अस कहि हनेसि मांझ उर-गदा

इस प्रकार विभीषण के हृदय में बाल्यकाल से अन्तकाल तक प्रियतम के पद्चिन्हों को प्राप्त करने की धुंधली भावना थी जिसको हनुमान रूपी मालाकार ने सींचकर पल्लवित किया। विभीषण जैसों का भी जब प्रभु उद्धार कर सकते हैं तो हमारा उद्धार क्योंकर नहीं करेंगे। अवश्य करेंगे इसमें किंचित सन्देह नहीं अतएव हमें भी अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिये अपने आपको प्रभु की कृपा का वास्तविक अधिकारी बनने का प्रयत्न करना चाहिये। यही मानव जीवन का ध्येय है और यही इस चरित्र से शिक्षा है।

बोलो सियावर रामचन्द्र की जय।

❀ सूचना ❀

॥ श्री हरिः ॥

अर्थ-मीमांसा

[लेखक—पं० श्री गदाधरजी शर्मा व्याकरणाचार्य]

मनुष्य के जीवन में धन चाहिये और धन का उपयोग भी है। परन्तु वह धन स्वामी बनकर न रहे, किन्तु सेवक बनकर रहे। जो मानव धन का दास बन जाता है, उसे तो वह धन तरह-तरह की कुवासनाओं में लगाये देता है।

किसी के पास एक हजार की पूँजी है। वह एक पाव अन्न खाता, दो कपड़े से काम चलाता और साढ़े तीन हाथ जमीन में सोता है। इसी हिसाब से जिसके पास पाँच हजार रुपये हैं, वह न तो पाँच पाव खाता, न दस कपड़े पहनता और न साढ़े सत्तरह हाथ जमीन में सोता ही है। उसे भी वही एक पाव खाना, वही पहनना और उतने में ही सोना होता है। किन्तु पाँच हजार कहलाने वाला जो धन है, वह उस व्यक्ति पर सवार होकर उसे मतवाला बनाये रहता है। वही उसकी अनेक आवश्यकताओं को उत्पन्न करने का कारण भी बन जाता है। इसी से इस मिथ्या एवं क्षणभङ्गुर धन को अपना मानने वाला मानव यदि धन चला गया तो छटपटाता और दुखी होता रहता है—उसके चित्त में किसी प्रकार शान्ति ही नहीं मिलती। भगवान ने ऐसे लोगों के विषय में अर्जुन को सम्बोधित करके कहा है—"विद्धिनष्टानचेतसः अर्जुनः" तुम इन्हें निपट गवाँर समझो। इनकी बुद्धि मारी गयी है।

वास्तव में मनुष्य को चाहिये कि न्याय-पूर्वक अपने हक से धन का उपार्जन करे और उसे सदुपयोग में लगावे। चाहे वह धन थोड़ा हो या ज्यादा—इसकी चिन्ता का बिल्कुल प्रवेश ही न हो। धन रहते हुए भी उसमें आसक्ति न होने पावे। 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' की भाँति उसका व्यवहार हो जाय—जैसे कमल का पत्ता सदा जलमें रहता हुआ भी उससे असंयुक्त ही रहता है। अन्यथा इसी धन के कारण मानव अपनी मानवता से च्युत होकर अनर्थकारी कामों में लग जाता है। धन का नशा उसे इतना पागल बना देता है कि सोचने-विचारने का बिल्कुल अवसर ही नहीं रहता। फिर कोटि यत्न करने पर भी सुधार की बात समझ में नहीं आती।

सुदामाजी अपने चिर-सखा भगवानकृष्ण के पास गये। उन्हें धन पाने की कुछ भी इच्छा न थी, किन्तु ब्राह्मणी की प्रेरणा से विवश होकर उन्हें जाना पड़ा था। मित्र के पास खाली हाथ जाना अनुचित है, उन्हें कुछ उपहार देना चाहिये—सुदामाजी के इस प्रस्ताव करने पर बेचारी ब्राह्मणी करे क्या—घरमें कोई वस्तु थी नहीं। वह किसी पड़ोसी के पास गयी और उससे कुछ तन्दुल लेकर ब्राह्मण देवता को दे दिया। सुदामाजी वह पोटली, जो फटे कपड़े में बँधी थी, काँख में दबाकर चले। जब भगवान के महल में पहुँच गये, तो उन्हें यह चिन्ता सवार होगयी कि इस पोटली को कैसे छिपाये रखूँ। भला ऐसी नगण्य वस्तु किसी प्रकार भी भगवान को देना समुचित न होगा। इस संकोच ने उनके मन को उथल-पुथल कर दिया। बात भी ठीक ही थी?

परन्तु भगवान तो अन्तर्यामी हैं। कोई भी बात उनकी नजर से ओझल नहीं—चाहे वह दूर

हो, सन्निकट हो, स्थूल हो अथवा सूक्ष्म से सूक्ष्म हो। झट उन्होंने कहा— 'भैया' सुदामाजी आप मेरे लिये क्या ले आये हैं। कहते ही काँख से तन्दुल की पोटली खींच ली। तन्दुल फटे कपड़े में बँधे थे। खींचते ही कपड़ा और फट गया और तन्दुल जमीन पर बिखर गये। भगवान ने उन्हें हाथ से बटोरना आरम्भ किया। ज्यों ही एक मुट्ठी भरी कि उठाकर मुँह में डाल लिया, मानों कितने दिनों का भूखा प्राणी कहीं बिखरे हुए अन्न के दाने को पाकर उससे क्षुधा शान्त कर रहा हो। साथ ही कहने भी लगे— 'भैया' ऐसी अनोखी वस्तु मुझे आज तक कहीं नहीं मिली। इसका स्वाद अपूर्व ही है।' फिर दूसरी मुट्ठी भर जाने पर उसे भी मुँह में डाल लिया। कहने लगे—'भैया' यह तो ऐसी वस्तु है कि इससे अखिल जगत् तृप्त हो जाय।' बात ठीक ही है; क्योंकि जिससे चराचर जगत्-स्वरूप भगवान तृप्त हो गये तो अब उससे तृप्त हुए बिना जगत् में शेष ही क्या रह गया। जब भगवान ने तीसरी मुट्ठी भर कर खाना चाहा, इतने में ही देवी रुक्मिणीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—'भगवन् हमारे लिये भी कुछ प्रसाद चाहिये।' देवियों ने देखा कि दो भाग ऐश्वर्य तो सुदामाजी के पास चले गये। तीसरे भाग में हम लोग हैं। कहीं भगवान कुछ न सोचलें, नहीं तो हमें सेवा से भी वञ्चित हो जाना पड़ेगा।

अब सुदामाजी को प्रचुर सम्पत्ति मिल गयी। उनके महल कोठा, अटारी की किसी से तुलना नहीं की जा सकती। परन्तु वे उसी तरह पूर्ववत ही जीवन-यापन में लगे रहे। धन में किञ्चित् आसक्ति नहीं। क्योंकि उन्होंने धनका दासत्व स्वीकार नहीं किया था। बल्कि धन ही उनका दास बनकर चरण में लौटता था। यही सात्विक धन है और यही सात्विक धन का सदुपयोग। ऐसा धन रहे या चला जाय—किसी भी हालत में पुरुषके मन को व्यथित नहीं कर सकता।

—:❀ श्री भगवन्नाम जप कराइये ❀:—

कलियुग में एकमात्र आधार

(श्री गोविंदसहायजी वर्मा, 'साहित्यरत्न')

मनुष्य जन्म लेकर दो प्रकार के उत्तरदायित्व लेकर आगे चलता है। एक का सम्बन्ध भौतिक जगत से है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति का ऐहिक सुख और समाज के प्रति कर्त्तव्य आ जाता है। दूसरा उत्तरदायित्व आध्यात्मिक जगत से है। इसमें आत्मा अपने अस्तित्व को पहचानने में व्यस्त रहती है। मनुष्य का भौतिक जीवन एक शताब्द के भीतर ही भीतर रहता है। इहलोक से परे जीवन का निर्माण वह उसी भौतिक जीवन के बीच में कर लेता है। उस जीवन में कालावधि इतनी संकुचित नहीं रहती।

युग धर्म अपना विशेष अस्तित्व रखता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग-इन चारों युग में कर्त्तव्य की भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। समाज जितना उन्नत होता है, कर्त्तव्य उतना ही कठोर होता है। समाज की अवनतावस्था में कर्त्तव्य में कुछ शिथिलता स्वाभाविक ही है। युवक के लिए नियम कठोर होता है, उन्हीं स्थितियों में शिशु के लिए नियम उदार बन जाता है। सतयुग में आत्मिक कल्याण के लिए मनुष्य को बहुत कुछ करना पड़ता है, त्रेता में उससे कम-द्वापर में और भी कम-कलियुग में अत्यन्त कम। परमहंस रामकृष्ण देव से एक ने जब यह पूछा कि-'आप मुक्ति के लिए जन साधारण के कल्याण के लिए योग का उपदेश क्यों नहीं देते ? "तो उन्होंने उत्तर दिया-"आज का जनसाधारण उस मार्ग को अपना नहीं सकता, उसके लिए तो एक भक्ति का मार्ग ही कल्याणकर है।"

ज्ञान और भक्ति यद्यपि देखने में दो भिन्न-भिन्न वस्तुऐं प्रतीत होती हैं। तथापि दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भक्ति के बिना ज्ञान का उदय नहीं, ज्ञान होने पर श्रेयस की प्राप्ति के लिये भक्ति अनिवार्य है। ज्ञान मार्ग अपने आप में अत्यन्त दुष्कर है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—

"ज्ञान पंथ कृपान कै धारा।
परत खगेस लगत नहिं बारा॥"

भक्ति उससे कहीं अधिक सुकर है।

श्री मद्भागवत में भक्ति के नौ प्रकार के लक्षण बताये हैं—

श्रवणं, कीर्तनम् विष्णोः, स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं, वन्दनं, दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्॥

अर्थात्-भगवान विष्णु के नाम, रूप, गुण और प्रभावादि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान की चरण सेवा, पूजन, वंदन एवं भगवान में दास-भाव, सख्यभाव और अपनेको समर्पण करदेने का भाव—यह नौ प्रकार की भक्ति है। गोस्वामी तुलसीदास ने इन नौ लक्षणों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है:—

"प्रथम भगति संतन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

दोहा—गुरुपद पंकज सेवा,
तीसरी भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन-
करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ बिश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धरमा॥
सातव सम मोहि मय जग देखा।
मोंते संत अधिक कर लेखा॥
आठव जथा लाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना॥

इन लक्षणों में एक कीर्तनको छोड़कर शेष या तो कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं से सम्बन्ध रखती हैं या पराश्रित हैं। कीर्तन ही भक्ति का सरलतम लक्षण है। नाम जप कीर्तन-के ही अन्तर्गत आता है। नाम जप की महिमा जैसी-बेद पुराणादिक में गाई गई है और भक्तों ने जैसी अटल श्रद्धा उस पर बतलाई है, उसे देखते हुए नाम जप का प्रभाव स्वयं सिद्ध हो जाता है। भक्तों ने तो 'नाम' को 'नामी' से भी बड़ा स्वीकार किया है।

आज के वैज्ञानिक युग में लोग मंत्र शक्ति को। स्वीकार करने लगे हैं। शब्दों में मानव के विभिन्न भाव और उनके पारायण की प्रचुरता से जो संचरित होने लग-ती है उसे वर्तमान मानव अमान्य नहीं कर सकता नाम स्मरण की व्यापकता, उस पर की श्रद्धा और त्रिका-लज्ञ ऋषियों का उसके साथ एकात्मता का भाव उसके सत्कार का विश्वास दिलाये बिना नह रहता।

विश्व के साहित्य से नाम जप के समर्थन के लिये यदि उद्धरण उद्धृत किये जायँ तो एक स्वतन्त्र पोथा बन जाय। भारतीय साहित्य का तो यह प्राण ही है। भगवान ने गीता में कहा है—

"गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥"

जो मेरे नामों का गान करते हुए मुझे अपने समीप मानकर मेरे सामने नाचता है, मैं सत्य कहता हूं मैं उसके द्वारा खरीदा जाता हूं। भागवत् का एक श्लोक है:—

"वाग गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं,
सदत्य भीक्ष्णं हसति कशचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
मद्‌भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति"

जिसकी वाणी गद्‌गद हो जाती है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो बारंबार ऊँचे स्वर से नाम ले लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हंसता है, ऐसा भक्ति मान पुरुष अपने को पवित्र करे इसमें बात ही क्या है; परन्तु वह अपने दर्शन और भाषणादि से जगत को पवित्र कर देता है।"

वस्तुतः हिन्दी के सम्पूर्ण भक्ति काव्य में "नाम-स्मरण" एक अनिवार्य और मौलिकअंग माना गया है। सभी भक्तों ने नाम-महिमा, पर अपने २ विचार व्यक्त किये हैं। नाम कीर्तन की महत्ता संतमत के साधु भक्तों ने उस मात्रा में स्वीकार की है जिस मात्रा में वैष्णव कवियों ने। संत कबीर कहते हैं—

'सत्त नाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक,
कह कबीर नहिं छाड़िये, सत्त नाम की टेक।

परम भक्त गोस्वामी तुलसीदास की तरह कबीर भी नाम' को राम से भी महान माना है—

"राम राम सब कोई कहै, नाम न चीन्हे को
नाम चीन्ह सतगुरु मिलै, नाम कहावै सो

'नाम' में निहित "शक्ति" अन्य किसी भी साधन में नह होती—

"जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास॥

इसी भाव को तुलसी के शब्दों में—

"राम नाम को अंक है, सब साधन हैं सून
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दस गून॥

सूर और मीरा ने भी नाम की महत्ता हृदय से स्वीकार की है इसके लिए सूरका निम्नांकित पद विशेष उल्लेखनीय है—

"जो तू राम नाम चित धरतो।
अबको जनम, आगिलौ तेरो, दोऊ जन्म सुधरतो
जम को त्रास सबै मिटि जातो, भक्त नाम तेरो परतो
सूरदास वैकुण्ठ पैठ में, कोउ न फैंट पकरतो।

मीरा के हृदय की पुकार सुनिए—

"मेरा मन राम ही राम रटै रे।
राम नाम जप लीजे प्राणी कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम खतजु पुराने, नामहिं लेत फटै रे॥

\+ \+ \+ \+

सात्विक दृष्टि से भी विचार करने पर यह सर्वथा युक्तिसंगत जान पड़ता है कि इष्ट देव के साथ, जिसके रूप का केवल अभ्यास किया जा सकता है, नाम का सम्बन्ध ही एक ऐसा सम्बन्ध है, जिसके आधार पर भक्त अपने को उसके निकट अनुभव कर सकता है।

मानव कल्याण के लिए कलियुग में यदि कोई आलम्ब हो सकता है तो वह है नाम जप। इस दिशा में किये गये सभी आयोजन स्वागत के विषय हैं, इसमें दो मत नहीं हो सकते॥ इति॥

श्री भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देने वाले एवं माइयों द्वारा भजन कराने वाले सज्जनों की नामावली

१००)	श्री० हरीरामजी रामभजनजी	अकोला
५०)	,, सुन्दरबाईजी महेश्वरी	अमरावती
८≡)	,, दामोदरदासजी केडीया	,,
२५)	,, नत्थनलालजी गर्ग	अहमदाबाद
२०)	,, रामचन्दरजी देशाई	,,
२५।–)	,, सन्तोष बाईजी	आगरा
२५)	,, बहरुद्दीनजी	अलमोडा
८।≡)	,, बद्रीप्रसादजी पन्नालालजी	अलवर
८।≡)	,, रामकिशनदासजी	,,
११)	,, हजारीमलजी छोगालालजी	अजमेर
१२५)	,, चतरुमलजी सिन्धी	इरोड
१०)	,, जी० के० अग्रवाल	इटावा
१६।।।=)	,, मोहनलालजी लढ़ा	इन्दौर
१०१।)	,, विरधीचन्दजी	कलकत्ता
६७।।)	,, अगरचन्दजी हरखचन्दजी लाखानी	,,
५०)	,, आर० एस० सर्राफ	,,
२५।–)	,, श्रीकृष्णदासजी	,,
१६।।।=)	,, लक्ष्मीबाईजी	,,
१५)	,, मंगलसिंहजी सिकधरप्रसादजी	,,
१५)	,, केदारनाथजी मेहरा	,,
८।≡)	,, कन्हैयालालजी मून्दरा	,,
२०)	,, सूरजकरनजी रघुनाथजी	कारन्जा
२०)	,, शिवप्रतापजी हरेकृष्णजी	,,
२५।–)	,, मूलचन्दजी बाबूलालजी शाह	कोडीया
१६।।।=)	,, कासीरामजी पेडीवाल	कालिम्पोग
११)	,, छोटूलालजी शंकरलालजी	कुचामन
८।≡)	,, सावित्रीरानीजी गोयल	कासीपुर

२१)	श्री० मुन्नालालजी कान्डा	खेजरोली
८।≡)	,, शिवप्रसादजी साबू	जोन्हा
५०)	,, मनीबाईजी	झारसुगडा
१०७)	,, श्रीरामजी दुरगाप्रसादजी	तुमसर
२०२।।)	,, रामकिशनजी रंगवाला	देहली
१०१।)	,, कन्हैयालालजी रामबिलासजी	,,
१०१।)	,, दयाल प्रिंटिंग प्रेस	,,
१०१।)	,, चन्द्रभानजी आनन्दप्रकाशजी	,,
१०१)	,, दीवानचन्दजी दलजीतसिंहजी	,,
३१)	,, बिहारीलालजी बैनीप्रसादजी	देहली
२५।–)	,, एम० आर० ब्रादर्स	,,
२५।–)	,, स्वरूपचन्दजी	,,
१६।।।=)	,, राधाकृष्णजी डालमीया	,,
१६।।।=)	,, द्वारकादासजी	,,
८।≡)	,, रघुवंशीकिशोरजी	,,
८।≡)	,, हेतरामजी किशनलालजी	,,
८।≡)	,, मांगीलालजी	,,
२०२)	,, हीरालालजी कन्दोई	देशनोक
१०)	,, परमानन्दजी बद्रीदास बूबना	दरभंगा
२५।–)	,, काजूरामजी रामगोपालजी	निमोद
८।≡)	,, ब्रह्मदेवप्रसादजी नेचुआ	जलालपुर
५०।।=)	,, जयनारायणजी मदनलाल	पुरलीया
६।)	,, कन्हैयालालजी	प्रतापनगर
८।≡)	,, गंगाप्रसादजी सारडा	फाजिलका
१५०)	,, जानकीदासजी पाटोदिया	वृन्दावन
२५।–)	,, बसन्तीबाईजी	,,
८।≡)	,, लक्ष्मीबाईजी	,,

१०१)	श्री०	तुलसीदासजी हरजीवनजी	वेरावल	१०२॥)	श्री०	शिवप्रतापजी टांटिया	सरदारशहर
१०१)	”	गुलराजजी बाजोरिया	वाकुड़ा	१०२॥)	”	रामेश्वरलालजी टांटिया	”
२५)	”	रामदेवजी हीरालालजी शास्त्री	बिल्हा	१०२॥)	”	सत्यनारायणजी टांटिया	”
८।≶)	”	सीतारामजी केशवप्रसादजी	”	१०२॥)	”	बृजमोहनजी टांटिया	”
१२॥)	”	हीरालालजी मानिकलाल पटेल	बम्बई	१०२॥)	”	मदनलालजी टांटिया	”
५)	”	जमनादासजी विठ्ठलदासजी पटेल	”	१०२॥)	”	सुआदेवीजी टांटिया	”
२०२॥)	”	पंजाब क्लोथ मिल्स	भिवानी	१०२॥)	”	मिश्रीदेवीजी टांटिया	”
१२)	”	वैजनाथजी परमेश्वरीदास सूगला	”	१०२॥)	”	पारवती देवीजी टांटिया	”
८।≶)	”	दयारामजी	”	२७॥)	”	शिवनारायणजी टांटिया	”
८।≶)	”	स्वामीदयालजी कटियार वकील	भिन्ड	२१)	”	बजरंगलालजी टांटिया	”
८।≶)	”	ईश्वरचन्दजी	”	१०१)	”	जुहारमलजी राधाकिशन	सूरतगढ़
८।≶)	”	बालकृष्णजी बोहरा	मुजफ्फरनगर	३३॥।)	”	द्वारकाप्रसादजी	सहारनपुर
८।≶)	”	शिवदत्तरायजी कासीप्रसाद दढ़ारिया	”	२५।-)	”	गिरधारीलालजी बिहारीलाल	शेरमढ़ी
८।≶)	”	गोदावरी देवीजी	मुजफ्फरपुर	८≶)	”	भीमराजजी चाड़क	सुजानगढ़
८।≶)	”	प्रानलालजी चिमनलालजी गांधी मुबासा		८।≶)	”	भूदरमलजी बालमुकन्दजी	”
८।≶)	”	राधाकिशनजी कनकनी	मदनगंज	१५)	”	स्वामी गंगाप्रसादजी तिवारी	इटा
८।≶)	”	मदनलालजी कनकनी	”	८≶)	”	सोहनलालजी सुगनचन्दजी हिम्मतकोट
८।≶)	”	अनारदेवीजी लोहीया	मोतीहारी	८।≶)	”	करमसिंहजी जगनसिंहजी मेहता हिंगनघाट	
११)	”	कासीप्रसादजी बोरा	रामगढ़	२०१॥।)	”	फुटकर प्राप्त	
६)	”	रामकिशोरजी पूरे	लहरपुर				
१६॥।≈)	”	हनुमानदासजी हरलालका	शेगांव	४६३१।≶)	योग		
१०२॥)	”	शिवनारायणजी टांटिया	सरदारशहर				

श्री भगवान भजनाश्रम—वृन्दावन भजनाश्रम का आय-व्यय का हिसाब महीना १ का मिती चैत सुदी ६ सं० २००६ से वैशाख सुदी ६ सं० २००६ तक का

४६३१।≶) सहायता एवं माई भजन की बाबत प्राप्त हुआ

४६३१।≶)

८१२८।) भजन करने वाली माइयों को वितरण किया गया
१५०) वृद्ध माइयाँ तथा अपाहज माइयों को दीना
५०१-)। वेतन कर्मचारियों को तथा कामवाली माइयों को दीनी
११०) कार्यकर्त्ताओं की रसोई खर्चा का लगा
५०) पोस्टेज लगा
२३०)। फुटकर खर्चा का लगा

६१७६।-)॥

नोट—इस माह में व्यय से आय बहुत कम हुई। रुपये ४५४७॥≈) की कमी रही है। अतः सभी दानी सज्जनों से प्रार्थना है कि इस मंगलमय कार्य में अपनी श्रद्धानुसार सहायता दान करने की कृपा करें। सहायता भेजने का पता—मंत्री श्री भगवान भजनाश्रम वृन्दावन (मथुरा)

॥ श्री हरिः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन

[श्री भगवन्नाम प्रचारक प्रमुख धार्मिक एवं पारमार्थिक संस्था]

[एक्ट २१ आफ १८६० द्वारा रजिस्टर्ड]

का

संक्षिप्त विवरण

श्री वृन्दावन धाम हिन्दुओं का प्रधान तीर्थ है, इस स्थल की पावन रज में लोट लोट कर भगवान श्रीकृष्ण ने इसे पूजनीय बना दिया है और इसी कारण समस्त भारत से लाखों हिन्दू श्रद्धा और प्रेम से यहां की यात्रा करते हैं। साथ ही बहुत सी वृद्ध एवं अनाथ विधवायें भी अपना शेष जीवन वृजधाम में व्यतीत करने के पावन उद्देश्य से अपना घर बार तथा सगे सम्बन्धी छोड़कर यहां आ जाती हैं। भारत इस समय एक निर्धन देश है और यहां यह सम्भव नहीं है कि हज़ारों की संख्या में आई हुई इन विधवाओं और वृद्धाओं के सम्बन्धी उनके भरण पोषण के लिये उनको प्रति मास सहायता भेज सकें और इसी कारण यह विधवायें वृन्दावन में अपनी उदर पूर्ति के लिये प्रत्येक यात्री से गिड़-गिड़ाकर भिक्षा माँगती हुई दृष्टिगोचर होती थीं। अब से ३३ वर्ष पूर्व इस दुरावस्था को देख कर अनेक सद्गृहस्थ तथा धनी मानी धार्मिक सज्जनों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने सम्वत् १९७३ में 'श्री वृन्दावन भजनाश्रम' नाम से एक परमोपयोगी संस्था की स्थापना की। और उसे चलाने के लिए एक सुदृढ़ ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। ट्रस्टियों के निर्णय से यह विधान बनाया गया कि भजनाश्रम में नित्य जितनी माइयां आवें उनसे ४॥ घन्टे प्रातः तथा ४॥ घन्टे सायं श्री भगवद् कीर्तन कराया जाय और उन्हें उदर पोषण के लिये अन्न एवं पैसे दिये जावें। भजनाश्रम स्थापित होते ही नित्य प्रति सैंकड़ों की संख्या में गरीब तथा आश्रयहीन वृद्धायें तथा विधवायें आश्रम में आने लगीं और परम पावन, कल्याणकारी श्री भगवन्नाम कीर्तन करते हुए अपना मानव जीवन सफल करने लगीं। इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होते देख कर एक द्वितीय संस्था 'श्री भगवान भजनाश्रम' के नाम से सम्वत् १९९० में स्थापित की गई तथा उसका भी ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। इन दोनों भजनाश्रमों का प्रबन्ध योग्य ट्रस्टियों द्वारा सुचारु रूप से हो रहा है

इस समय इन आश्रमों में लगभग ८०० अनाथ गरीब स्त्रियां जिनमें अधिकांश निराश्रित विधवायें हैं नित्य प्रति अनन्त भगवद्नामों का कीर्तन करती हुई भगवद्-भजन में लीन रहती हैं अष्ट प्रहर कीर्तन भी अलग होता है। इन भजन करने वाली माइयों को सवेरे ४॥ घन्टे भजन करने पर =)॥ ढाई आना अन्न के वास्ते दिया जाता है। तथा शाम को ४॥ घन्टे भजन करने पर =) दो आना ऊपर खर्च के वास्ते दिया जाता है और समय-समय पर आवश्यकतानुसार वस्त्र भी दिये जाते हैं और २०० के लगभग अपाहज वृद्धायें जो आश्रम में आने के अयोग्य हैं अपने घरों में बैठी हुई भगवद् भजन किया करती हैं जिन्हें भी कुछ सहायता दी जाती है।

भारत व्यापी तेजी के कारण इस समय इन संस्थाओं का खर्च लगभग रु० ८५००) आठ हजार पांच सौ रु० प्रति मास हो गया है जब कि स्थायी आय, मासिक चन्दा तथा ब्याज केवल ३०००) रुपये मासिक है। आज हम इसी कमी की पूर्ति करने के लिये आप जैसे धनी मानी तथा धार्मिक महानुभाव की सेवा में अपील करते हुए निवेदन करते हैं कि आपकी अतुल दानराशि में से अधिक से अधिक भाग इन संस्थाओं को प्राप्त होना चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा आपके धन का सदुपयोग का विश्वास दिलाते हुए हम यह भी बता देना चाहते हैं कि इन संस्थाओं में दिये गये आपके धन से अनेक प्राणियों का उदर पोषण होगा एवं कोटि-कोटि भगवन्नाम जप के पुण्य प्रताप का आपको पूर्ण लाभ होगा।

हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमान्‌जी हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान देंगे और श्रद्धानुसार संस्थाओं की सहायता करते हुए जनता-जनार्दन की अधिकाधिक सेवा के पावन अनुष्ठान में सहायक बनेंगे।

प्रार्थीः—जानकीदास पाटोदिया,
प्रधान

नोट—१. प्रार्थना है कि आप जब बृजधाम की यात्रा को पधारें तो इन आश्रमों में पधार कर यहाँ के कार्यों का अवलोकन करें, एवं आश्रम के लिये जो दान करना चाहें वह भजनाश्रम में ही देवें अन्य किसी मन्दिर में नहीं।

२. अपने एवं अन्य नगर के धर्म प्रेमी दानदाताओं के कुछ नाम व पते भी हमें भेजने की कृपा करें जिससे हम उनसे संस्थाओं की सहायता के लिये अपील कर सकें।

३. बीमा या मनीआर्डर द्वारा सहायता मन्त्री श्री भगवान् भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन [मथुरा] तथा मन्त्री श्री वृन्दावन भजनाश्रम, पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से भेजिये।

४. कृपया सहायता एक मुश्त भेजिये अथवा मासिक या वार्षिक सहायता भेजने की कृपा कीजियेगा।

५. आश्रम की ओर से ऐसा प्रबन्ध भी है कि जो दानी महानुभाव अपनी ओर से भजन कराना चाहते हों वह ८।≈) रु.मासिक प्रत्येक माई के हिसाब से भेजकर जितनी माइयों द्वारा चाहें भजन करा सकते हैं। प्रतिदिन ६ घण्टे में हर एक माई लगभग एक लाख भगवन्नाम उच्चारण कर सकती है।

६. वृन्दावन के किसी मन्दिर, मठ व अन्य स्थानों से भजनाश्रम का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिये भजनाश्रम के लिये किसी अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी मनीआर्डर या बीमा द्वारा श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में पूर्व आचार्य श्री महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्धसन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं व समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

रजिस्टर्ड नं. ए ५४६

श्री गुरु पूर्णिमा

(पूजा दिवस आषाढ़ शुक्ला १५)

(१)

गुरु बिन कौन करे भव पार ।

जय गुरुदेव तिहारी जगमें, महिमा अपरम्पार ॥ १ ॥

श्रीगुरु चरण कमलरज लेकर, नित प्रति मस्तक धार ॥२॥

गुरु सेवा से बढ़कर कोई, इस जगमें नहिं सार ॥ ३ ॥

गुरु गोविन्द में गुरुहि बड़े हैं, कह रहे शास्त्र पुकार ॥ ४ ॥

'सन्त' सदा भज राधा माधव, जासों होय उबार ॥५॥

(२)

जय जय सतगुरु दीनदयाल ।

बलि-बलि जाऊं चरण कमल की, महिमा परम विशाल ।

आवागमन मिटावन हारे, शरनागत प्रतिपाल ॥ १ ॥

श्रीगुरु चरन शरन जब आवे, सब दुख देवें टाल ।

'सन्त' सदा गुरु सेवा कीजे, छाँडि कपट जंजाल ॥ २ ॥

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से, आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित
गौरगोपाल मानसिंहजी [illegible] वृन्दावन [मथुरा] से प्रकाशित

अंक ८
MURARI ART DELHI

विषय सूची

श्रावण संवत २००६

विषय | लेखक

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जा[ते] हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस [से] लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अं[क] भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवा[बी] कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लि[ख] कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक :- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २=) | संस्थाओं से १।।=) | एक प्रति का =

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन अगस्त सन् १९५२ | अंक ८

"भगवन्नाम-महिमा"
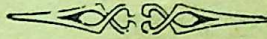
जो जन साँचेहि गोविन्द गावै ।
अष्ट-सिद्धि, नव-निद्धि, सकल-सुख, घर ही बैठो पावै ॥
काम, क्रोध, अभिमान, चातुरी, तृष्णा चित न डुलावै ।
संशय कहा परम पदवी कौ, उघरत वार न लावै ॥
माया, मोह, लोभ, दुख, पूरण, कलियुग घोर कहावै ।
'परशुराम' प्रभु सौं मन मानैं, तो दुख काहे को आवै ॥

(परशुराम सागर, अमुद्रित)
(उदय से)

गायत्री द्वारा आत्म-बल का विकास

(पं० श्रीरामजी शर्मा आचार्य, सम्पादक अखण्ड-ज्योति)

आत्मा अनेक ऋद्धि सिद्धिओं का केन्द्र है। जो शक्तियाँ परमात्मा में हैं वे ही उसके अमर युवराज आत्मा में है। समस्त ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र आत्मा में है परन्तु जिस प्रकार राख से ढका हुआ अंगार मंद हो जाता है वैसे ही आन्तरिक मलीनताओं के कारण आत्म-तेज कुंठित हो जाता है। गायत्री साधना से वह मलीनता का पर्दा फौरन हट जाता है और राख हटा देने से जैसे अंगार अपने प्रज्वलित रूप में दिखाई पड़ने लगता है वैसे ही साधक की आत्मा भी ऋद्धि-सिद्धि समन्वित ब्रह्म-तेज के साथ प्रकट होती है। योगियों को जो लाभ दीर्घ काल तक कष्ट साध्य तपस्यायें करने से प्राप्त होता है वही लाभ गायत्री साधकों को स्वल्प प्रयास से प्राप्त हो जाता है।

प्राचीन काल में महर्षियों ने बड़ी बड़ी तपस्यायें और योग-साधनायें करके अणिमा, महिमा आदि ऋद्धि-सिद्धियां प्राप्त की थीं। उनकी चमत्कारी शक्तियों के वर्णन से इतिहास पुराण भरे पड़े हैं। वह तपस्या और योग साधना गायत्री के आधार पर ही की थी। अब भी अनेकों महात्मा ऐसे मौजूद हैं जिनके पास दैवी शक्तियों और सिद्धियों का भंडार है। उनका कथन है कि गायत्री से बढकर दैवी मार्ग से सुगमता पूर्वक सफलता प्राप्त करने का दूसरा मार्ग नहीं है। सिद्ध पुरुषों के अतिरिक्त सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी सभी चक्रवर्ती राजा गायत्री के उपासक रहे हैं। ब्राह्मण लोग गायत्री की ब्रह्म-शक्ति के बल पर जगद्गुरु थे; क्षत्रिय गायत्री के भर्ग, तेज को धारण करके चक्रवर्ती शासक थे।

गायत्री के चौबीस अक्षरों का गुन्थन ऐसा विचित्र एवं रहस्यमय है कि उसके उच्चारण मात्र से जिह्वा, कंठ, तालु एवं मूर्धा में अवस्थित नाड़ी तन्तुओं का एक अद्भुत क्रम से संचालन होता है। इस संचालन से शरीर के विविधि स्थानों में छिपे हुये शक्ति-चक्र झंकृत होने लगते हैं। मुख की नाड़ियां, गायत्री के शब्दों का उच्चारण का आघात सीधा उन चक्रों तक पहुँचाती हैं। जैसे सितार के तारों पर क्रमबद्ध उंगलियां फिराने से एक स्वर लहरी एवं ध्वनि तरंग उत्पन्न होती है वैसे ही गायत्री के चौबीस अक्षरों का उच्चारण उन चौबीस चक्रों में एक झंकारमय गुंजन उत्पन्न करता है जिससे वे स्वयंमेव जागृत होकर साधक को योग शक्तियों से सम्पन्न बनाते हैं, इस प्रकार गायत्री के जप से अनायास ही एक महत्वपूर्ण योग साधना होने लगती है। और उन गुप्त शक्ति केन्द्रों के जागरण से आश्चर्य जनक लाभ मिलने लगता है।

टाइप राइटर के अक्षरों पर उंगली दबाने से उससे सम्बन्धित पुर्जे चलते हैं और कुछ दूरी पर जाकर वही अक्षर छप जाता है। इसी प्रकार मुख में गायत्री मंत्र के अक्षरों का उच्चारण जिस स्थान से होता है उससे सम्बन्धित नाड़ियां उन स्थानों पर सीधा प्रभाव डालती हैं जहां बड़े ही महत्वपूर्ण गुप्त यौगिक यंत्रों का अवस्थान है। इस प्रकार इस महामंत्र के उच्चारण मात्र से प्रसिद्ध षटचक्र तथा अप्रसिद्ध अनेक उपचक्रों का जागरण स्वयमेव होने लगता है।

'गायत्री-महाविज्ञान' ग्रंथ के प्रथम भाग में चित्र देकर समझा चुके हैं कि शरीर के किन

स्थान पर कौन-कौनसी चक्र-ग्रन्थियां हैं जो गायत्री के अक्षरोंके उच्चारण से जागृत होती है और अपना फल देती है। संक्षेप में २४ अक्षरों के क्रम से इन ग्रन्थियों के नाम तथा उनके जागरण से होने वाले नामों का परिचय नीचे दिया जाता है।

	अक्षर	ग्रन्थियों का नाम	उसमें भरी हुई शक्ति
१	तत्	तापिनी	सफलता
२	स	सफला	पराक्रम
३	वि	विश्वा	पालन
४	तुर्	तुष्टि	कल्याण
५	व	वरदा	योग
६	रे	रेवती	प्रेम
७	णि	सूक्ष्मा	धन
८	यं	ज्ञाना	तेज
९	भर	भर्गा	रक्षा
१०	गो	गौतमी	बुद्धि
११	दे	देविका	दमन
१२	व	वराही	निष्ठा
१३	स्य	सिंहनी	धारणा
१४	धी	ध्याना	प्राण
१५	म	मर्यादा	संयम
१६	हि	स्फुटा	तप
१७	धि	मेधा	दूरदर्शिता
१८	यो	योगमाया	जागृति
१९	यो	योगिनी	उत्पादन
२०	नः	धरित्री	सरसता
२१	प्र	प्रभवा	आदर्श
२२	चो	ऊष्मा	साहस
२३	द	दृश्या	विवेक
२४	यात्	निरंजना	सेवा

हमारे शरीर में पांच कोष, सप्त प्राण, चेतना चतुष्टय, षट् चक्र एवं अनेकों उपचक्रों, मातृकाओं, ग्रन्थियों, भ्रमरों, कमलों एवं उपत्पिकाओं के अवस्थान हैं। उनको योग साधना से जागृत कर लिया जाता है। जैसे रेडियो यंत्र की सुई जिस नम्बर पर लगा दी जाय तो उसी स्टेशन के सम्वाद सुनाई पड़ने लगते हैं। उसी प्रकार इनमें से जो शक्ति केन्द्र जिस आधार पर जागृत किया जाय तो उसी वर्ग की सूर्य शक्ति भी उसमें खिंच आती है और वह साधक ऐसी आश्चर्यजनक शक्तियों का पुंज बन जाता है जैसी वैज्ञानिकों को कीमती यंत्रों की सहायता से भी अभी प्राप्त नहीं हुई हैं। मंत्र बल के चमत्कार का रहस्य यही है।

वशिष्ठजी के पास कामधेनु थी जिसकी कृपा से उन्होंने विश्वामित्र की सेना को परास्त किया था दलीप और दशरथ का वंश नष्ट होने से बचाया था। उन्हें सुसन्तति दी थी। यह कामधेनु गायत्री ही थी। राजा दलीप अपनी रानी समेत इसी कामधेनु की आराधना में निमग्न रहते और उसी का पय पान करते थे। दधीचि ऋषि तप करते २ साक्षात् गायत्री के तेज पुंज बन गये थे। उनकी अस्थियों का वज्र बनाकर इन्द्र असुरों को जीत पाया था। गायत्रीको ब्रह्मास्त्र कहा है। इसका प्रहार कभी निष्फल नहीं जाता। गायत्री को कामधेनु कहा है। इस माता का पयपान करने वाला कभी दुखी, निराश, असंतुष्ट एवं अतृप्त नहीं रहता।

आयुर्वेद शास्त्र में ऐसे प्रयोगों का वर्णन है जिनके द्वारा पुराने शरीर के प्रायः सभी परमाणु बदल जाते हैं और उनके स्थान पर नये आ जाते हैं। इस क्रिया को शारीरिक कायाकल्प कहते हैं। कायाकल्प कराने वाला व्यक्ति यदि वृद्ध हो तो उसके बुढ़ापे के चिन्ह दूर होकर जवानी के चिन्ह आ जाते हैं।

गायत्री मंत्र से आत्मिक कायाकल्प हो जाता है। इस महामन्त्र की उपासना आरम्भ करते ही साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे आन्तरिक क्षेत्र में एक नई हलचल एवं रद्दोबदल आरंभ हो गई है। सतोगुणी तत्वों की अभिवृद्धि होने से दुर्गुण, कुविचार, दुःस्वभाव, एवं दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं और संयम, नम्रता, पवित्रता,

उत्साह, स्फूर्ति, श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन प्रति दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप लोग इसके स्वभाव एवं आचरण से सन्तुष्ट होकर बदले में प्रसंशा, कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान के भाव रखते हैं और समय २ पर उसकी अनेक प्रकार से सहायता करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होगा वहां आत्म सन्तोष की परम शान्ति-दायक शीतल निर्झरणी सदा बहती रहती है। ऐसे लोग चाहे जीवित अवस्था में हों चाहे मृत अवस्था में, वे सदा स्वर्गीय सुख का आस्वादन करते रहेंगे।

गायत्री साधन से साधक के मनः क्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। विवेक, दूरदर्शिता, तत्वज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि की अभिवृद्धि हो जाने के कारण अनेक अज्ञान जन्य दुखों का निवारण हो जाता है। प्रारब्ध वश, अनिवार्य कर्मफल के कारण कष्ट साध्य परिस्थितियां हरेक के जीवन में आती रहती हैं। हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विभिन्न परिस्थितियों में जहां साधारण मनोभूमि के लोग मृत्यु तुल्य कष्ट पाते हैं वहां आत्मबल सम्पन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, सन्तोष, संयम और ईश्वर विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हंसते हंसते आसानी से काट लेता है। बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द का मार्ग ढूंढ निकालता है और मस्ती, प्रसन्नता, एवं निराकुलता का जीवन बिताता है। संसार में समस्त दुखों के तीन कारण हैं (१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव। गायत्री की—ह्रीं, श्रीं, क्लीं, शक्तियों की साधक के अन्तः-करण में अभिवृद्धि होने से इन तीनों ही दुखों [का] धीरे धीरे निवारण होता चलता है।

किसी विशेष आपत्ति का निवारण करने [या] किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भी गा[यत्री] की साधना की जाती है। बहुधा इसका परि[णाम] भी बड़ा आशाजनक होता है, देखा गया है [कि] जहां चारों ओर निराशा, असफलता, आशंका [और] भय का अंधकार ही अंधकार छाया हुआ था, [वहां] वेदमाता की कृपा से एक दैवी प्रकाश उत्पन्न हु[आ] और निराशा आशा में परिणित हो गई। बड़े [कष्ट] साध्य कार्य तिनके की तरह सुगम हो गये। अनेकों अवसर अपनी आखों के सामने देखने [के] कारण हमारा यह अटूट विश्वास हो गया है [कि] कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जा[ती]।

गायत्री साधना आत्मबल बढ़ाने का एक [श्रेष्ठ] आध्यात्मिक व्यायाम है। किसी को कुश[्ती] पछाड़ने एवं दंगल में जीतकर इनाम पाने के [लिये] कितने ही लोग पहलवानी और व्यायाम [का] अभ्यास करते हैं। यदि कदाचित् कोई अ[भ्यासी] किसी कुश्ती को हार जाय तो भी ऐसा [नहीं] समझना चाहिये कि उसका प्रयत्न निष्फल ग[या]। इसी बहाने उसका शरीर जो मज़बूत हो गया [है, वह] जीवन भर में अनेक प्रकार से अनेक अवसरों [पर] बड़े २ लाभ उपस्थित करता रहेगा। निरो[गता,] सौन्दर्य, दीर्घ जीवन, कठोर परिश्रम करने [की] क्षमता, दाम्पत्ति सुख, सुसन्तति, आर्थिक उ[न्नति,] शत्रुओं से निर्भयता आदि कितने ही लाभ [ऐसे हैं] जो कुश्ती पछाड़ने से कम महत्वपूर्ण नहीं [हैं।] साधना से यदि कोई विशेष प्रयोजन प्रारब्ध[वश] पूरा न भी हो तो भी इतना तो निश्चित है [कि] किसी न किसी प्रकार साधना के श्रम की अ[पेक्षा] कई गुना लाभ अवश्य मिलकर रहेगा।

ध्वनि

(लेखक—श्री आचार्य ललितकृष्णजी गोस्वामी)

धीर प्रवाहिता तपन तनया के तीर अक्रूर घाट के विशाल प्राङ्गण में शरद की कौमुदी से प्लावित व्रजमन्डल की अक्षुण्ण माधुरी सुषमा समष्टि रूप से प्रस्फुटित हो गई। भगवान चैतन्यचन्द्र की माधुर्य पूर्ण लीला से चन्द्रकान्त मणि की भाँति निस्पन्दित होकर प्रकृति के कणों ने अक्रूर शब्द को प्रमाणित कर दिया। आचार्य की स्वर काकली और कीर्तन की तुमुल ध्वनि से दिग्दिगन्त व्याप्त होगया। सकल यंत्रों की एक रसता से प्रकृति वधूटी थिरकने लगी—

"बीन रबाब मुरज स्वर मंडल,
सा रि ग म प ध नि सा बहुविध भाव।
घेटिता घेटिता घेनि मृदङ्ग,
गरजनि चंचल स्वर मंडल करु राव॥"
"तालमृदङ्ग-उपङ्गचङ्ग एकहि सुर जुरली॥"

वृज मण्डल राज वृन्दावन की शोभा द्विगुण भासित होगई—

वृन्दावनं दिव्यलता परीतं, लताश्चपुष्प स्फुरिताग्रभाजः।
पुष्पाण्यपि स्फीत मधुव्रतानि, मधु व्रताश्चश्रुति हारिगीताः

सुगन्धौ माकन्द प्रकर मकरन्दस्य मधुरे,
विनिष्यन्दे वन्दीकृत मधुपवृन्दं मुहुरिदं।
कृतान्दोलं मन्दोन्नतिभिरनिलैश्चन्दन गिरे-
र्महानन्दं वृन्दाविपिनमतुलं तुन्दिलयति॥

दिव्य लताओं से पूर्ण वृन्दावन माकन्द पुष्प स्तवक क्षरित मकरन्द से मधुपों को मुग्ध करता हुआ मधुपों से गुञ्जित पादपों को मलयाचल के सुरभिपूर्ण अनिल से आन्दोलित करता हुआ महानन्द व र्धन करने लगा।

प्रकृति के सहस्रावधि रोमों में नाम लहरी प्रस्फुटित होगई

क्वचिद्भृङ्गी गीत क्वचिदनिलभंगी शिशिरता,
क्वचिद्वल्लीलास्यं क्वचिदमलमल्ली परिमलः।
क्वचिद्धाराशाली करकफल पाली रस भरो,
हृषी काणां वृन्दं प्रमदयति वृन्दावनमिदं॥

कहीं भृंगी समूह गान कररहे हैं, कहीं शीतल अनिल प्रवाहित होरहा है, कहीं वल्लरियाँ वेष्टित हो नृत्य कररही हैं, कहीं मल्ली पुष्प का निर्मल परिमल बह रहा है और कहीं दाडिम्ब फल का रस क्षरित होकर सुरभि संचार कर रहा है। इस प्रकार वृन्दावन इन्द्रियों को उल्लासित कर रहा है।

रस की चरम सीमा घटित होगई रस राज (रसो वै सः) श्रीकृष्ण के अपांग वीक्षण के लिये गौर का हृदय मचल उठा नेत्रों से अविरल धार गिरकर विरहाग्नि दग्ध अंगो का सेचन करने लगी। विरही वृन्दावन की दशा देखकर कण्ठ स्खलित होगया—

किमग्रे मल्लीनां स्खलति कलिका श्रेणिरधुना,
सरोजानां किस्व क्रुटिति परितो कोरक ततिः।
कथं वा जातीनां दधति मुकुलाः श्यामल रुचं,
हरेर्वृन्दारण्ये द्रुत महह कैयं गतिरभूत्॥

हाय! क्या मल्लिका कोरक समूह स्खलित होरहा है। कदम्ब अथवा सुमन मन्जरी ग होकर फैल गये हैं? जाति पुष्प म्लान होकर श्यामल होगये? हे हरे! हठात् वृन्दावन की यह कैसी दशा होगई?

विरह की अवस्था असह्य होगई। वियोगी के नेत्र विस्फारित होकर श्याम की मधुर चितवन और लावण्य का अन्वेषण करने लगे। कर्ण मोहिनी मुरलिका की ध्वनि के लिये व्याकुल हो गये।

क्व जलिरिष्यति साम्प्रतं सखिजनो हा वैणवं कामृतं,
युक्तिं शोकहरं शृणोमि न कथं हा नर्मभंगी क्व सा।
धैर्यं किं न धारयामि हन्त हृदये हा प्राणनाथः;
कमे कंठं मुञ्चतरे प्राणहतका हाधिक् न दृष्टो हरिः॥

हाय। वह वंशी नादामृत कहाँ है ? शोक हारिणी वह युक्ति सुनाई क्यों नहीं देती ? वह प्रभु का स्मित हास कहाँ गया ? किस प्रकार धैर्य धारण करूँ ? मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं। हां धिक् हरि को नहीं देख पारहा हूं। अरे दुष्ट प्राण ! मेरे कण्ठ को छोड़दे।

क्व नन्द कुल चन्द्रमा क्व सखि चन्द्रकालं कृतिः।
क्व मंत्र मुरली रवः क्व नु सुरेन्द्र नील द्युतिः॥
क्व रास रस ताण्डवी क्व सखि जीव रक्षौषधि।
निधिर्मम सुहृत्तमः क्व वत हन्त हाधिग्विधिम्॥

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बराद रुणविम्बफला धरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्द नेत्रात्,
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने॥

वह नन्दकुल चन्द्रमा, मयूर पुच्छभूषण कहाँ है ? जिसकी मुरली ध्वनि कामिनी के आकर्षण के लिये मन्त्र स्वरूप है। जिसकी अंग कान्ति इन्द्रनील मणिकी तरह है। जो रास रस में नर्तक है। जो मेरी जीवन रक्षा के लिये औषध स्वरूप है। जो सुहृत्तम अमूल्य रत्न है वह कहाँ है ? हे विधाता ! तुझे धिक्कार है।

संचारी भाव के संचार ने प्रभु को मूर्छित कर दिया। सकल भक्त वृन्द करुणा सागर में अवगाहन करने लगे। भक्त वत्सल, भक्तों की करुणार्द्र ध्वनि को श्रवण कर द्रवित होगये। नाम सुधा का पान करने के लिये आनन्द-कन्द प्रकट होगये। भक्तों ने निमाई के कर्ण कुहरों को हरिनाम संकीर्त्तन से ध्वनित कर दिया। नाम सुधाबिन्दु के सेचन ने चेतना का संचार कर दिया। गौर प्रभु की दिव्य छवि और अपांगवीक्षण का दर्शनकर रोमांचित होगये। भक्ति तन्मयता से वाणी प्रस्फुटित होगई।

नव मुरलि मरालि हारि हरतारि विन्दं।
कवलित कुरुविन्दच्छाय गुञ्जाद्ध बश्रीः॥
मृदुल पवन चञ्चत्पिञ्छ चूडाञ्चलो हाम्।
मदयति हृदयं मे श्यामिकामां विलासः॥

हस्तकमल में नव मुरली धारण किये हैं। जिनके पद्मरागमणि की शोभा जयिगुञ्जाद्वारा अद्भुत कान्तिमान होरही है। जिनके जूडे में सुशोभित मयूर पुच्छ सुमन्द वायु से चंचल होरहा है। यह श्याम सुन्दर का विलास हृदय को आनन्दित कर रहा है। प्रभु से अभिन्न कृष्ण नाम निरन्तर अमृत वर्षण कर रहा है।

तुन्डे ताण्डविनी रातिं वितनुते तुण्डावली लब्धये
कर्ण क्रोड कडम्बिनि घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहां।
चेतः प्राङ्गण सङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं,
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥

"कृष्ण" ये वर्णद्वयी यदि मुखके मध्य में नृत्य करती है तब अनेक मुखों को उत्कंठित कर देती है। यदि कर्ण क्रोड में अंकुरित होती है तब दस कोटि कर्णों को स्पृहा उत्पन्न करती है और यदि चित्त प्राङ्गण में आविर्भूत होती है तो समस्त इन्द्रिय व्यापारों को पराजित कर देती है। समझ नहीं पड़ता कितने अमृत के द्वारा इसका निर्माण हुआ है।

श्रीकृष्णभक्ता पूज्या बाई यशोदामाई

(लेखक—भक्त रामशरणदास पिलखुवा)

सुप्रसिद्ध श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज मिस्टर रोनाल्ड निक्सन उपनाम श्रीकृष्णप्रेमभिखारी को कौन है जो न जानता हो ? आपकी पूज्या गुरु-माताजी का नाम ही पूज्या श्री यशोदा माई था। आपका जन्म ब्राह्मणकुल में और एक बड़े प्रतिष्ठित घराने में हुवा था। बचपन से ही आपका मन श्रीकृष्ण भक्ति की ओर लगने लगा था। एक बार जब आप अभी बच्ची थी तो आप के पूज्य पिताजी आपको अपने साथ घोड़े पर बिठाकर पूज्यपाद संत श्री पावनहारी बाबाजी महाराज के पास लेगये थे। वह दिन पावनहारी बाबा का १६ वर्ष की समाधि का अन्तिम दिन था जिसके कारण कई लाख मनुष्यों की भीड़ दर्शनों के लिये उमड़ पड़ी थी। १६ वर्ष पूर्व जिस प्रकार सबके सामने पावनहारी बाबा एक मकान के अन्दर भगवान रामचन्द्र, सीताजी, श्रीलक्ष्मणजी को चाँदी के पंखे से हवा करते समाधी अवस्था में बैठे थे और मकान बंदकर दिया गया था और पुलिस का पहरा लगा दिया गया था आज उसी प्रकार हवा करते जीवित निकले थे। स्वामी विवेकानंदजी भी इस आश्चर्यजनक घटना को देखने के लिये आये हुवे थे। आपने पावनहारी बाबा के साथ २ स्वामी विवेकानंदजी के भी दर्शन किये और पावनहारी बाबा की अद्‌भुत सिद्धियों के चमत्कार जैसे कि पचासों कनस्तर गंगाजल घी की जगह कढ़ाई में छोड़ने से घी हो जाना और बाद में घी आनेपर उन्हें गंगाजी में छोड़ने पर जल हो जाना और एक आले में हाथ करके दुशाले, अशरफी, रुपये निकाल २ कर ब्राह्मणों को देना आदि अपनी आँखों से देखे जिसका आपके मन पर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। आपको बड़े लाड़चाव से पाला गया और अँग्रेज़ी, संस्कृत, बंगला पढ़ाई गई। समय पाकर आपका विवाह डा० ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती के साथ कर दिया गया। आप यहाँ ससुराल में आकर भी पति सेवा के साथ साथ श्रीकृष्ण की पूजा पाठ करना, साधु संतों का सत्संग करना, नहीं भूली थी, बराबर जारी रहा। बनारस कोठी में रहने पर काशी के सबसे बड़े सिद्ध महात्मा हरिहर बाबाजी महाराज का सत्संग दर्शन आशीर्वाद प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। मिस्टर रोनाल्ड निक्सन आपकी शरण आये तो आपने गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुसार उन्हें दीक्षा दे अपना शिष्य बनाया और उनका नाम निक्सन साहब से श्रीकृष्णप्रेमभिखारी रक्खा और उन्हें मंत्रप्रदान किया। आपके शिष्य बन जाने पर कोट बूट-टोप-नकटाई धारी निक्सन सबको लात मार गले में तुलसी की माला, माथे पर लम्बा तिलक, सर पर चोटी, काषाय वस्त्र धारण कर पूरे परम वैष्णव बन गये। पूज्या माताजी ने अपना गुरू वृन्दावन के सुप्रसिद्ध माध्व गौड़ेश्वराचार्य पूज्यपाद गोस्वामी श्रीबालकृष्णजी महाराज को बनाया। कुछ दिन बाद वैराग्य होने पर आपने अपने पूज्य पतिदेव डा० ज्ञानेन्द्रनाथजी से आज्ञा प्राप्त कर सन्यास धारण किया और अपना नाम यशोदामाई रक्खा। अब यशोदामाई अपने शिष्य श्रीकृष्णप्रेम भिखारी को साथ ले अल्मोड़ा में आई और कुछ दूर दूरी पर एक ग्राम बसाया जिसका नाम वृन्दावन रक्खा और वहीं पर एक बहुत सुन्दर श्रीराधाकृष्ण का मंदिर बना दोनों श्रीकृष्ण भजन में समय व्यतीत करने लगे। और भी कितने ही भक्त कई अँग्रेज आपकी सेवा में आगये और

सत्संग उपदेश का लाभ उठाने लगे। आप बीमार बहुत हुईं इलाज भी बहुत हुवा पर फायदा नहीं हुवा। आपका सारा समय श्रीकृष्णभजन में ही व्यतीत होता था।

भगवान को लाड़ लड़ाया करती थी

आप नित्य प्रति अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्ण की बड़े प्रेम से, श्रद्धा से गद्गद् होकर पूजा किया करती थीं। भगवान के लिये विविध प्रकार के पुष्पों की मालायें बनाती, भगवान को पहनाती और नित्य नया शृङ्गार करातीं, धूप दीप देती, आरती करतीं, कीर्तन करतीं, तन्मय हो जातीं। खूब भगवान को लाड़लड़ाया करतीं सब चीजें पहिले भगवान को भोग लगाती तब बाद में प्रसाद रूप में उन्हें पाती थी। जाड़ों में भगवान के लिये सुन्दर २ ओढ़ने को गद्दे बनाती जिससे भगवान को जाड़ा न लग जाय और गर्मियों में भगवान को पंखा झला करती थीं। हर समय माला हाथ में रहा करती थी उसी पर मंत्र जाप होता रहता था। कभी २ भगवान के सुन्दर २ चित्र बनातीं और सुन्दर भगवान के लिये वस्त्र भी सीया करती थीं। आपके हाथ में एक सुन्दर सुवर्ण मुद्रिका थी जिसमें भगवान श्रीकृष्ण की सुन्दर मूर्ती थी उसे हर समय देखती रहती थीं और सब चीज़ भगवान को अर्पण करके ही पाती थीं। तुलसी का पूजन करती थीं, व्रजरज मस्तक पर लगाती थीं और कभी २ श्री वृन्दावनधाम भी जाया करती थीं। भगवान श्रीकृष्ण के सुन्दर २ पद गाती, कीर्तन करती प्रेम में विभोर होजाती थीं। इस प्रकार अपना समस्त जीवन श्रीराधाकृष्ण के प्रेम में व्यतीत कर अभी कुछ दिन हुये आपने अलमोड़ा के उत्तर वृन्दावन में ही अपना शरीर त्यागन किया। वहीं पर आपकी समाधी बनाई गई जिसका आपके शिष्य श्रीकृष्णप्रेमभिखारी पूजन करते हैं।

बोलो भक्त और भगवान की जय

प्रभुस्मरणम्

(रचियता—रावत, चतुर्भुजदास चतुर्वेदी)

श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥
क्षण भंगुर तन जानकर मत कर इतौ गुमान ।
अस विचार जिय मान के सुमरो नित भगवान ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ १ ॥
काया दिया सरूप है नेह सरूप सनेह ।
ज्ञान ज्यौति उकसाय के कलमष छाँड़ो देह ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ २ ॥
माया ममता में फँसो भूलौ प्रभु को ध्यान ।
हीरा तज पत्थर लियौं भूल बड़ी अज्ञान ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ३ ॥
साथी जेते जगत के वे मतलब के मीत ।
प्रभु चरणों में चित्त दे राखो उतनी प्रीति ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ४ ॥
प्रभु कौ मन्दिर देह है मलिन करो नहिं मीत ।
धर्म कर्म प्रभु भजन में नित चित देकर प्रीत ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ५ ॥
मन वश करबो चहो जो प्रभु पद हो लवलीन ।
दास चतुर्भुज चरण की बन तू प्यासी मीन ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ६ ॥
जो चाहे नर मान तू कर प्रभु सों अनुराग ।
दास चतुर्भुज चरण कौ रखो हिये में लाग ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ७ ॥
चतुर वही नर जगत में जो प्रभु के आधीन ।
दास चतुर्भुज चरण कौ बन तू वह स्वाधीन ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ८ ॥
जब तक पानी देह में तब तक है सन्मान ।
दास चतुर्भुज चरण की राख हिये में आन ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ९ ॥
जो तू चाहे स्वयश को मन सों कर प्रभु भक्ति ।
दास चतुर्भुज कृपा सों तू पावे वह शक्ति ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ १० ॥
प्रभु प्रकाश होता वहाँ जहाँ न है अभिमान ।
दास चतुर्भुज चरण गहि तब तू पूर्ण सुजान ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥ ११ ॥
भये न केते जगत के कह २ अपनी बात ।
दास चतुर्भुज चरण में धन्य वे बीतीं रात ॥

श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१२।।

स्वांस स्वांस में रट सदा राम राम सुख धाम ।
दास चतुर्भुज चरण की करो आस अभिराम ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१३।।

रह तूं इस संसार में कमल बसै जल मांहि ।
दास चतुर्भुज चरन की क्यों न लेइ तूं छांहि ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१४।।

प्रीत सदा प्रभु सों करौ और मीत सब झूंठ ।
मतलब निकसे छांड़ि हैं ज्यों बबूर को ठूंठ ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१५।।

कठिन जगत की वस्तु सब सुलभ राम को नाम ।
जासों सुख हिय में बढ़ै छावै सुयश सुधाम ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१६।।

प्रेम प्रभू से कीजिये छांड़ि जगत जंजाल ।
दास चतुर्भुज कृपा सों डर है रूंखो काल ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१७।।

दीन हीन तन छीन ह्वै अन्य कहू नहिं भाग ।
दास चतुर्भुज चरण को नित प्रति रागो राग ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१८।।

राम रमौ सब देह में रामहि कौ यह ठाँव ।
दास चतुर्भुज समझ मन राम राम सब गाँव ।।

श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।१९।।

जो सुख चाहे जगत कौ कर प्रभू सों तू प्रीति ।
बढ़ै विमल यश सब जगह होय न कछु भय भीति ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।२०।।

जिन पकरे प्रभु के चरण भये वे यह भव पार ।
मुक्ति भये पद मिलो वह लियो जगत को सार ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।२१।।

राम जगत में रम रहौ राम राम कौ खेल ।
राम रमे सब जीव में रामहिं सो कर मेल ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।२२।।

एक राम की आस कर राम भरोसे काम ।
दास चतुर्भुज राखि है जग में तेरो नाम ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।२३।।

यह काजल की कोठरी रहौ सदा मन साध ।
दास चतुर्भुज चरण में कर तू प्रेम अगाध ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।२४।।

काम क्रोध मद लोभ को करो त्याग जिय जान ।
दास चतुर्भुज चरण कों कर तू वह पहचान ।।
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ।।२५।।

तू तेरा में रम रहौ करौ न प्रभु पद प्रेम ।
वृथा बितायो समय को लियो न नैतिक नेम ।।

श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥२६॥

पर धन, पर नारी निरख जे मन को ललचांय ।
होंय नारकी नर वही अपने मुँह की खाँय ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥२७॥

क्यों भूलो भूलो फिरै फूलों जग मद पाय ।
दास चतुर्भुज चरण सों विमुख भयो कर हाय ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥२८॥

काल काल को खा रहा अब चेतो चित लाय ।
दास चतुर्भुज चरण को अब पकरो तुम धाय ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥२९॥

मेरा मेरा जो करै सो हारा जग बीच ।
राम नाम को नहिं भजै रहा नीच का नीच ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३०॥

रोम रोम में रम रहा जिनके राम सुजान ।
दास चतुर्भुज कृपा सों पायो उनने ज्ञान ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३१॥

दया राम की जो चहौ करो प्रभू से प्रेम ।
सब वानरू बन जायेंगे रहि है तेरो नेम ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३२॥

भजन जगत में सार है अन्य काम बेकाम ।
राख हिये में नित्य प्रति भजले सीताराम ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३३॥

कहौ सदा ही शिव शिवा राधा नन्दकिशोर ।
दास चतुर्भुज कृपा सों पावो सुख चहुं ओर ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३४॥

इच्छा जो मन में कछू तो कर प्रभु को ध्यान ।
पावेगा वह परमपद जो पूरौ सन्मान ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३५॥

अपने को पहचान तू मत कर या में भूल ।
दास चतुर्भुज कृपा सों निकरै तेरो सूल ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३६॥

जो चाहैं सुख शान्ति मन, कर प्रभु सो अनुराग ।
दास चतुर्भुज कृपा सों खुल हैं तेरो भाग ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३७॥

सत्य नाम को जापकर सत्य शरण तू पाय ।
दास चतुर्भुज कृपा सों नारायण हर्षाय ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३८॥

निहिचो यह मन राख तू प्रभू कर हैं कल्यान ।
दास चतुर्भुज चरण की अब तू कर पहचान ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥३९॥

राम नाम हिय धार के नित कर सुन्दर काम ।
दास चतुर्भुज जगत में फैले यश शुभ नाम ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द गिरिधर गोपाल ।
हे राम नारायण दीन दयाल ॥४०॥

....:युगल भक्त विनोद:....

प्रेमीजनों का वचन

पिय प्यारी पद पङ्करुह, ध्याय पाय पर-मोद।
'प्रेमनिधी' वर्णन करत, सुन्दर युगल विनोद ॥१॥
एक बार श्रीलाडिली, प्रेम सहित हरसाय।
प्रियतम सो पूँछन लगी, मन्द-मन्द मुसकाय ॥२॥

श्री प्रियाजू का वाक्य—

हे रसनिधान रसिकशेखर श्रीप्राणप्यारेजू! मेरे मन भावन सुख सरसावन भक्तों को आप अमित स्नेह करते हैं और उनकी सार संभाल प्रेम प्रतिपालन करने के लिये सततकाल सदैव सावधान रहते हैं इसका क्या कारण है?

श्री प्रियतमजू का वचन—

हे गुण आगरी, नवल नागरीजू! आपके भक्त मुझे प्यारे लगते हैं इसका कारण तो केवल आपका सरस स्नेह ही है। आपके चरणकमलानुरागी बडभागी रसवन्त सन्त बड़े ही चतुर होते हैं, मुझको आपके प्रेम पाश में बँधा हुआ जानकर वे समझ जाते हैं कि आप यदि प्रसन्न हो जायँगी तो मैं बिना प्रयास सत्वर ही उन पर प्रसन्न हो जाऊँगा और उनकी मन कामना पूर्ण कर दूँगा, अन्यथा मेरी प्राप्ति तो परम दुर्लभ ही है।

श्री प्रियाजू का वचन—

हे प्राणाधार, प्रेमसागर श्रीप्राणवल्लभजू! आपकी प्राप्ति दुर्लभ है तब मेरी प्राप्ति सुलभ कैसे हो जायगी? क्योंकि मैं तो सदा ही आप से अभिन्न हूँ, बिना चन्द्रमा के चांदनी कहीं देखने में आई है श्रीराजकिशोरजू?

श्री प्रियतमजू का वचन

हे राजदुलारी, परमसुकुमारी, श्रीप्राणप्यारीजू! आप कैसी भोली बात करती हैं? मैं तो जगत् का सर्वतन्त्र स्वतन्त्र शासक होतेहुए भी अपनी वैदिक मर्यादा का संरक्षण करने के लिये जीवों से क्षमा याचना करवा कर और विधिपूर्वक साङ्गोपाङ्ग शरणागति स्वीकार करवा कर तब कहीं उनको अपना कृपापात्र बनाता हूँ, परन्तु आपका वात्सल्य रसपूर्ण कोमल हृदय तो जीवों के गुण दोषों का विचार किये बिना ही उन्हें परमकल्याण पद देने के लिये सर्वदा लालायित रहता है और उन्हें तुरन्त अपना कर परम कृपा भाजन बनाने में देर नहीं लगाता है, यही कारण है कि आपकी प्राप्ति सुलभ तथा मेरी प्राप्ति दुर्लभ मान कर सन्तजन आपके चरण कमलों का चञ्चरीक बनना ही उत्तम मानते हैं।

श्री प्रियाजू का वचन

हे चतुर चितचोर रसिक शिरमौर श्रीप्राणप्रियतमजू! आप सत्य कहते हैं, क्या करूँ—इन भूले भटके इन काल, कर्म, स्वभाव, गुण घेरे इन अज्ञानी जीवों को देखकर मेरे मन में बड़ी करुणा उत्पन्न होती है और इनको दिव्य धाम का नित्य निज सुख प्रदान करने के लिये व्याकुल हो जाती हूँ, इनका कर्म कर्मबन्धन तोड़कर सुख सागर में मग्न कर देना चाहती हूँ परन्तु आपकी मर्यादा का स्मरण करके मन ही मन दिल मसोस कर रह जाती हूँ, कभी-कभी तो मन होता है कि चाहें आप रूठ भी जायें परन्तु इन असंख्य आत्माओं का तो उद्धार करके ही छोड़ूँ।

श्री प्रियतमजू का वचन

हे करुणामृत सागरी, श्री मिथिलेश नन्दिनी जू! इसमें रूठने की क्या बात है. मैं तो आपकी रुचि का सदैव पालन करताही हूँ, आपका ऐसा करुणामय स्वभाव देख करके ही मेरे परम स्नेह भाजन महर्षि वाल्मीकि ने "प्रणिपात प्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा" कहकर अपना वचन सार्थक किया है, तथा सम्पूर्ण रामायण को "सीतायाश्चरितं महत्" "इदं रामायणं कृतस्नं" माना है। आप तो दीन, हीन, मलीन, पापी, अधम एवं वध करने लायक अपराधियों पर भी कभी कोप नहीं करती हैं,

इतना ही नहीं उन पर परम करुणा करने का उपदेश भी आप-अपने प्रिय शिष्य श्री हनुमानजी को देती हैं "कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति" अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों को उचित है कि सभी पर करुणा ही करनी चाहिये, क्योंकि कोई किसी का अपराध नहीं करता है। जीव स्वयं काल कर्म परवश है, वह बिचारा क्या किसी का अनिष्ट कर सकता है? धन्य है देवि! आपकी अनन्त करुणा को।

श्री प्रियाजू का वचन

हे श्री कोशलेन्द्रकुमार, परम उदार, हृदयहार जू? आप भी तो "सन्मुख होय जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासौं तब हीं।" आदि श्री मुख वचनों द्वारा जीवों को अभय वरदान का परम आश्वासन प्रदान करते हैं, तब तो हम दोनों की दयालुता की श्रेणी समान ही है। मेरी विशेषता तो केवल प्रेमी जनों का आनन्द बढाने के लिये ही बतला रहे हैं।

श्री प्रियतमजू का वचन

हे परम आह्लादिनी, सरस वचनवादिनी, श्री प्राणेश्वरी जू? यद्यपि मेरी दया भी जीवों पर स्वाभाविक ही रहती है परन्तु वह मर्यादित और अधिकारी भेद से फलदायिनी होती है परन्तु सत्य पूछे तो कभी कभी आपका ही रुख देखकर ऐसे ऐसे जीवों का भी उद्धार करना पड़ता है जो उस योग्य हैं ही नहीं। आपतो बहाना ढूंढती रहती हैं तथा किंचित भी अवसर मिला कि उनकी सिफारिश करने लगती है, क्या करूं विवश होकर मर्यादा मेट कर भी आपके कृपापात्रों को अपना लेता हूँ और क्षमा प्रदान कर उनकी सदैव रक्षा करता हूँ, नहीं तो क्या लंका निवासियों को भला मेरे मनोहर दर्शन कभी मिल सकते थे, अथवा उन अक्षम्य अत्याचारियों को मेरा परम धाम मिल सकता था? परन्तु आपकी कृपा जो न कराले थोड़ा ही है प्रियतमे!

श्री प्रियाजू का वचन

हे श्रीराजनन्दन, अखिल लोकवन्दन, सच्चिदानन्दघन हृदयेश्वरजू! आपने जब इतनी दया की है तो इन कलिमल ग्रसित पामर जीवों को क्यों भूल बैठे हो? ये भी तो आपके ही है न! इनको सच्चा सुख प्रदान कर दुःसह दुःखों से छुड़ाने वाला दूसरा कोई कहां है प्राणाधार!

श्री प्रियतमजू का वचन

हे स्नेह सुधारस भोरी, श्रीराजकिशोरीजू! आपके ही प्रेमाग्रह से बार-बार शास्त्र और सद्ग्रन्थों द्वारा मेरे 'दिव्य धाम की झांकी' कराने का सुअवसर प्रदान करता ही रहता हूं। आपके ही आग्रह और अनुग्रह वश इस कलियुग में भी श्रीरामानन्द स्वामी के नाम से आचार्यवतार धारण कर आपके चलाये हुए 'श्रीसम्प्रदाय' का उद्धार किया। यद्यपि आपके द्वारा प्रवर्तित इसी श्री सम्प्रदाय में व्यास, वशिष्ठ, शुक, बौधायनादि महाभागवतों ने दीक्षित होकर जगत् का परम कल्याण किया है तथापि कलियुग में मैंने अपने द्वादश महाभागवत प्रधान सहित अवतीर्ण होकर ऊँच नीच का भेद मिटाकर, परम उदार, परम समर्थ, प्रेमाभक्ति प्रधान श्री वैष्णवधर्म का अभ्युदय किया है, परन्तु इस पर भी ये अधमजन न समझें तो मैं क्या करूँ हृदयेश्वरीजू!

श्री प्रियाजू का वचन

हे सकल सद्गुणाकर, नटनागर, रससागर मनमोहन प्यारेजू! आप तो जीवों के अपार अपराधों को क्षमा कर बार-बार दया दिखाते हैं तो भी हतभागी श्री चरणकमलानुरागी नहीं बनते, परन्तु अब मैंने भी अपने प्यारे परिकर एवं पार्षदों द्वारा नाना प्रकार के सन्त-सुजन भक्त आचार्यादि स्वरूप में, नर-नारी ऊँच-नीच आदि सभी स्वरुपों में प्रकट होकर मेरे श्रीसम्प्रदाय के आश्रित सुजन आत्माओं द्वारा नाम, रूप, लीला, धाम, गुण, यश आदि द्वारा आपका पुण्य स्मरण कराकर अखिललोकका कल्याण करने का समुचित विस्तार कर दिया है। तथा आपामार सभी श्रेणी के जीवों के लिये आपके प्रेमधाम का द्वार खोल दिया है।

हे चित चोर, प्रेम किशोर, रसिक शिरमौर, राजकुमारजू ! आप उन सबके अपराध भुलाकर अपनी कृपादृष्टि का भाजन अवश्य बनावेंगे, जो मेरे मार्ग से चल कर आपके पास तक पहुँच जाँय प्राणाधारजू !

श्री प्रियतमजू का वचन

हे प्राणेश्वरीजू ! यह बात तो मैं प्रथम ही कह चुका हूँ, आप तो बड़ी भोली हो इसलिये स्नेहाधिक्य के कारण बात भी भूल जाया करती हो। मैंने मर्यादा का बार-बार अतिक्रमण करना उचित न समझ कर तथा अपने कोमल स्वभाव के वश होकर अब तो यह भी एक सुदृढ़ मर्याद बनाली है कि जो जीव किसी भी भाँति हमारे स्नेहीजनों की संगति में आजायेंगे उनका अवश्य उद्धार हो ही जायगा, उनमें भी जो आपके सम्बन्धी हैं वे तो मुझे प्राणों से भी प्यारे हैं। जिनको आप कृपा कर अपनाने का उपक्रम करना चाहती हो उन बडभागियों के हृदय में मैं प्रथम ही प्रेमांकुर उत्पन्न कर देता हूं। जिन पर आपकी कृपा दृष्टि पड़ जाती है उनको मैं अपने पास आने का सर्वाधिकार सौंप देता हूँ, जिनका सम्बन्ध आपसे हो जाता है उनको संसार के समस्त पाप तापों से छुड़ाकर दिव्यधाम में जाने के प्रथम ही "जीवन मुक्त महारस भोगी। परमईश परम संयोगी।" बना देता हूँ और जिनको आप अपने दुर्लभ दर्शन का सुख प्रदान करना चाहती हो उनके साथ तो सदैव छाया की भांति रहने में ही परमानन्द मानता हूँ।

श्री प्रियाजू का वचन

हे विश्वमनमोहन प्राणप्यारेजू ! आपकी मधुर सुमञ्जल वाणी प्रेमसुधारस सानी सुनकर चित्त में परम आह्लाद होता है, जैसे आपको मेरे भक्त प्यारे हैं। वैसे ही मैं भी आपके प्रिय भक्तों को प्राणाधिक प्रिय मानकर प्यार करती हूँ, आपके प्यारे भक्तों पर मैं सर्वस्व निछावर करने को तैयार रहती हूँ, अधिक क्या कहूँ, केवल उन स्नेहसागर सन्तजनों की प्रीति का प्रतिपालन तथा आनन्द की अभिवृद्धि के लिये ही मेरी ललित लीलायें हुआ करती हैं प्राणवल्लभजू !

प्रियतम, प्रेमी आपके, मेरे प्राण समान।
'प्रेमनिधी' लहरे सदा, भक्त सुखी जिय जान।
यदि काहू तन पायके, होय प्रीतिरस भंग।
तो छुड़ाई ता देहसों, देऊँ 'प्रेमनिधि' संग।

श्रीप्रियतमजू का वचन

हे साकेताधीश्वरी, सर्वेश्वरी श्रीप्राणप्रिया[illegible] आप धन्य हैं। आपकी दया धन्य है, आ[illegible] आश्रितों की बलिहारी है, तथा आपकी प्रेम[illegible] भीनी, नवलनवीनी, परमप्रवीणी, मधुरभीनी वा[illegible] पर मैं न्योछावर जाता हूं। मेरा और आपका पु[illegible] संवाद सुनकर ये आश्रित जन परमरसिक [illegible] कृतार्थ हो रहे हैं और कुछ आपकी लीला की [illegible] गाकर परमानन्द लुटाना चाहते हैं, अब इन[illegible] ओर कृपाकटाक्ष की किरण प्रकाशित कर प्रेम[illegible] लहरी के झोंके लहराये जायँ।

कृपामूर्ति, रसआगरी, 'प्रेमनिधि' गुण खानि।
हे अभिमतवरदायिनी, सहज स्नेह सुखदानि।
मैं निशिदिन निरखत रहौं, तव मुख चन्द्र उदार।
नयन चकोरनसे पगे, 'प्रेमनिधी' रसधार।

\+ \+ \+

प्रेमीजनों का वचन

सन्त सकल सुनकर विमल, रसप्रद युगल विनोद।
जयति जयति प्रियतम प्रिया, कहन लगे सह मोद।
'प्रेमनिधी' मतिमन्द क्या, वर्णन करे अगम्य।
दिव्य दम्पति भाव शुचि, सहज भावना गम्य।

माघ पू. सं. २००२ } प्रेमियों की पदरज का भिक्षु
जनकपुरधाम } अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव

सूचना—भगवान के लीला स्वरूप ये सं[illegible] करते हैं। इसमें सुन्दर उपदेश के संग-संग [illegible] भक्ति वर्धक श्रीमुख वचन का लाभ भी प्रेमीजनों [illegible] प्राप्त होता है। 'प्रेम पञ्चामृतम्' में ऐसे-ऐसे [illegible] संवाद है, पाठकों की रुचि होगी तो अन्य सं[illegible] भी प्रकाशित किये जायेंगे।

भगवान् का विश्वास

(लेखकः—श्री अवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव)

गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने स्पष्ट समझा दिया कि—"कवनिऊ सिद्धि कि बिनु विश्वासा" तथा "श्रद्धा बिनु नहिं भक्ति दृढाई । जिमि खगेश जल की चिकनाई ।" श्रद्धा और विश्वास को शिव पार्वती का स्वरूप बताकर आपने मंगलाचरण में ही कह दिया कि इन श्रद्धा और विश्वास के बिना योगीजन अपने अन्तःकरण में निवास करने वाले ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकते, दर्पण के बिना अपना मुख आप नहीं देख सकते ।

श्रद्धा विश्वास के बिना कोई प्रभु का भजन नहीं कर सकता और 'वारि मथे बरु होय घृत, सिक्ता ते बरु तैल । बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ।" यह सन्तों का दृढ सिद्धान्त है, इसलिये भव दुःख से मुक्त होना चाहें तो भजन अवश्य करें, तथा भजन करने वाले को "योऽसौ विश्वंभरो देवः सभक्तान् किमुपेक्षते" यह दृढ़ विश्वास रखना ही चाहिये । नास्तिकता, दुःख, तृष्णा, असन्तोष, स्पर्धा, ईर्षा, द्वेष, स्वार्थपरायणता, कायरता, भीरुता, ये सब अविश्वास की प्रजा है । आनन्द, निर्भयता, निश्चिन्तता, उदारता, आस्तिकता, प्रेम, सन्तोष, सद्विचार ये सब विश्वास का पवित्र परिवार है । आपका कर्त्तव्य है कि आप अपने आत्मा का, देश का, समाज का तथा सकल विश्व का कल्याण साधने के शुभ यज्ञ में एक आहुति प्रदान अवश्य करें इसलिये भगवान् के विश्वास की पूर्ण आवश्यकता है ।

विज्ञानशाला के द्वार पर लिखा रहता है कि "बिना विश्वास के अंदर प्रवेश मत करें ।" यह तो भौतिक विज्ञान की बात है, उस दिव्य विज्ञान के वक्ता ने स्पष्ट कह दिया कि 'संशयात्मा विनश्यति' आज का संसार बिना विश्वास के [illegible] कराहता है, जब जड़ ही कट गयी तब फल की क्या आशा ? जब हम प्रभु का ही, अपने "प्राण के प्राण, जीव के जीव, सुख के सुख राम" का ही विश्वास खो बैठे तब सांसारिक जीवों का विश्वास कैसे कर सकेंगे ? 'मूलं नास्ति कुतो शाखा" यही कारण है कि पति पत्नी का, पिता पुत्र का, गुरु शिष्य का, सास पुतोहू का, भाई भौजाई का, सेठ नौकर का किसी का किसी पर विश्वास नहीं रहा । सर्वत्र दंभ-पाखंड-कपट-धूर्तता का साम्राज्य है । सबको अपनी चिन्ता, अपना दुःख, अपना स्वार्थ तथा अपनी मनमानी चलाने की चाह चुडैल की भांति चूस रही है ।

भोजन, वस्त्र, निवास, सुख, दुःख, उन्नति, अवनति, वृद्धि, विनाश का क्रम किसी एक सूत्र धार के संकेत पर बिना ननु नच किये संसार में सर्वत्र व्यापक रूप से किसी अज्ञात शक्ति के संचालन में नियमित रूप से हो रहा है । चौरासी लाख योनियों में एक मनुष्य को छोड़कर सभी अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उस प्रभु प्रदत्त प्रसाद को पाकर निश्चिन्त जगते और सोते हैं परन्तु मनुष्य को घमण्ड है अपनी बुद्धि का, धन का, जन का, विज्ञान का तथा न जाने और किस-किस वस्तु का । यह सब होते हुए भी ये एक प्रभु का विश्वास खोकर अपने हाथों अपने विनाश का अप्रतिम यन्त्र बना हुआ है । आज मानव जाति का धन, मन, वचन, बुद्धि, विज्ञान मानव जाति का ही भयङ्कर विनाश करने पर तुला हुआ है । कहीं एकता नहीं, प्रेम नहीं, अपने ही आचरण विचार और वचनों में विचित्र विषमता भगवान के विश्वास को ठुकराने के भयङ्कर परिणाम का डिंडिमघोष कर रही है ।

॥ श्री ॥

॥ श्री गंगाष्टक ॥

(र०—रावत चतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी भरतपुर)

(१)

पतित पावन अति सुहावन सलिल निर्मल जो सदा।
शुद्ध बुद्धि करै हमारी मातु जय गङ्गे सदा॥
विष्णु पद से निकल शिव शिर परम शोभित जो रहै।
संसार के दुःख शोक सारे सो हमारे सब बहै॥

(२)

काम धेनु समान जग का जो करै पालन सदा।
धर्म की दृढ़ नीव बाँधे राख हिन्दुन की श्रद्धा॥
शक्ति शाली सर्वदा सर्वत्र जो अभिराम है।
उस जगत जननी को मेरा कोटि कोटि प्रणाम है॥

(३)

भीष्म माता जग सुहावन जयति जय श्री अम्बके।
दुष्ट संहारन करो नित जो रहै वस दम्बके॥
माननीय महान महती शुद्ध जग में तुम महो।
तुम समान न और कोई मातु मम रक्षक अहो॥

(४)

हम शरण में आपके हैं त्राहि माम भुवनेश्वरी।
सदा शिव के संग शुभ कल्याण देहु महेश्वरी॥
विश्व रूपण्यै नमस्ते ब्रह्म रूप नमोस्तुते।
शान्ति और सुख देन हारी जगत मातु नमोस्तुते।

(५)

हम अबोध अजान सब हैं ज्ञान ना तव रूप का।
दे सुबुद्धि कराय दीजै ज्ञान अद्भुत रूप का।
कर कृपा हमको सु दीजै भक्ति शक्ति दयावती।
होवैं हम सब शक्ति शाली तेरे बल पर भगवती।

(६)

चन्द्र आधे से सुशोभित मुकुट माथे दिप रहो
जल कुम्भ कमल अभय सुवर कर चार में धारे रहो
अमीधारा सदस सोहै वस्य वाहन मगर जो।
ध्यान कर यह रूप का वर भक्ति पाते विमल जो।

(७)

नित्य प्रति सुमिरन करत यश गांय हम भागीरथी।
धर्म कर्म निवाह कर हम सब बने सुमहारथी।
गंगे हरि वर देऊ मुझको अभय कर विद्याधरी
तरन तारन करन वारी जीव आवे जिहि धरी

(८)

वार वार प्रणाम तुमको जग्रत दुख हरनी अहो
चतुर्भुज कल्याण कीजै धन सुयश दीजै महो
हम रहैं अनुरक्त निश दिन मातु गंगे चरन में
दुख शोक सब मिट जांय मेरे मातु तेरी सरन में

(पृष्ठ १५ का शेष)

बिना विश्वास के आप क्षण भर जीवित नहीं रह सकते हैं। माता को विश्वास है कि पुत्र मेरे प्रेम का प्रतिफल प्रदान करेगा इसीसे प्यार करती है। पत्नि पति को, शिष्य गुरु को, पुजारी देवता को आत्म समर्पण विश्वास पर ही करता है. जहां विश्वास नहीं वहां वैमनस्य पहुँचा ही बैठा है। आज स्वर्ग नर्क-वैकुण्ठ, शुभा-शुभ कर्म फल, ईश्वरीय शासन सब पर विश्वास खोकर हम एक दूसरा, एक दूसरे का रक्त पान कर रहे हैं परन्तु प्रभु का विश्वासी इन अत्यारों से मुक्त आनन्द में मस्त अमृत रस पाकर पूर्ण तृप्त रहता है।

जिसको भोजन वस्त्र और निवास की चिन्ता विकल कर रही है वह क्या भजन करेगा? कर्त्तव्य करना दूसरी बात है और विश्वास हीन धैर्य हीन होकर चिन्ता के मारे मरते रहना दूसरी बात है। भगवान् का विश्वास रखने वाला सब कुछ करते हुए निर्लिप्त रहता है; वह जो कुछ करता है अपने प्यारे के लिये, उसकी आज्ञा का पालन करने के लिये, उसके आत्म स्वरूप सन्तानों की सेवा के लिये। अपने लिये तो उसको कुछ करना धरना अवशिष्ट रहता ही नहीं है. उसका घर भार तो "जग जाको दास कहै हों" उसी पर है, वह तो "भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो" लेकर कृतार्थ है, धन्य है, तृप्त है।

विश्वास रखने से भजन करने का पूरा समय मिल जाता है। किसी बात की चिन्ता तो रहती ही नहीं है। सर्वशक्तिमान् की रक्षा में रहने वाला ध्रुव. प्रहलाद, विभीषण तथा श्रीहनुमानजी की भांति पूर्ण निर्भय रहता है। सभी बातों से निश्चिन्त रहना ही भजनानन्द का मुख्य लक्षण है। प्रभु का विश्वासी जो काम प्रारम्भ करता है बड़े पराक्रम से उठाता है, क्योंकि उसको अपने स्वामी की कृपा का पूर्ण बल प्राप्त है। अंगदजीने "सुमिरि रामप्रताप पद रोपा" तो त्रैलोक्य विजयी रावण की राजसभा के छक्के छुड़ा दिये, कोई टस से मस न कर सका, यह "बालि तनय बांकुरे" के दृढ विश्वास का ही फल नहीं तो और क्या था? प्रभु का विश्वासी लोक परलोक के किसी स्वार्थ सम्पत्ति, भय अथवा लोभ के वश कदापि नहीं होता है।

जो ढीले विचार के संशयात्मा होते हैं उनको इस लोक में सुख तथा परलोक में सद्गति कदापि प्राप्त नहीं हो सकती है। जो संसारी लोगों के भरोसे रहता है वह कोई भारी कार्य नहीं उठा सकता है, बिना आत्मबल (विश्वास) के कोई कार्य उठा भी ले तो पूरा होने में सदैव संशय ही बना रहता है। प्रभु के विश्वासी को कोटि कोटि विघ्न आवें तो भी कोई अपने मार्ग से डिगा नहीं सकता है। उसको रोकने वाला कोई नहीं है। गरमी-ठन्डी, सुख-दुःख, हानि लाभ सबमें सर्वत्र वह अपने प्रियतम का ही वरद हस्त देखता है।

एक महात्मा का उपदेश है कि श्रीसीतारामजी का पूर्ण विश्वास करले तो राजा, प्रजा, रङ्क, धनी, मूर्ख, विद्वान् सब उसको एक समान मानते हैं, क्योंकि उसका स्वामी बहुत बड़ा है, महा शक्ति सम्पन्न है, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है तथा बड़ा ही दयालू है।

एक मनुष्य खाली हाथ तीर्थाटन करने परदेश में जा रहा था, उसको एक सन्तने पूछा कि, भाई! कहां जा रहे हो? उसने कहा कि बहुत दूर एक तीर्थस्थान की यात्रा में जा रहा हूँ, महात्माने कहा भैया! साथ कुछ खर्च भी नहीं लिये हो, काम कैसे चलेगा? यह सुनकर वह विश्वासी भक्त बोला कि – जिसने यह पृथ्वी और आकाश संभाला है, जिसकी अणु अणु में सत्ता व्याप्त है, क्या वह मुझको भोजन न देगा? क्या दुनिया में उसके बिना दूसरा भी कोई कहीं कुछ देने वाला है? यह सुन कर सन्त बड़े प्रसन्न हुए और उसकी श्रद्धा का अनुसरण करने लगे।

एक परमहंस त्यागी वैराग्यवान थे उनसे किसी ने पूछा कि आप अपने निर्वाह के लिये कुछ साथ रखते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि प्रिय

मित्र! मैं चार पदारथ सदा साथ रखता हूँ। भक्त ने पूछा भगवन्! वे चारों पदार्थ कौनसे हैं, आपके पास कुछ देखने में तो नहीं आता है?

सन्त ने कहा देखो—एक तो यह कि मैं सर्वत्र एक ईश्वर का ही साम्राज्य देखता हूँ दूसरे किसी का नहीं। दूसरा यह कि समस्त जगत् के जीवों को ईश्वर का ही दास समझता हूं, स्वतन्त्र सत्ता किसी की कहीं देखता ही नहीं हूँ। तीसरा यह कि—जगत् का सभी व्यापार उसी एक सर्वेश्वर के संकेत पर ही चलता हुआ अनुभव करता हूँ तथा चौथा यह कि उसका कार्य सर्वत्र समान रूप से अव्याहत गति से (बिना रोक टोक) चलता हुआ प्रत्यक्ष देखता हूं। यह सुनकर भक्त चरणों पर गिर गया और बोला प्रभो! आप जैसे अकिञ्चन ही इस अनन्त के चरण कमल की कृपा रस के भाजन बन सकते हैं, धन्य है, जयजयकार हो।

भगवान् का विश्वास छोड़ने से तो भगवान् की सत्ता पर भी अविश्वास उत्पन्न हो जाता है, भगवान् का अस्तित्व स्वीकार करने वाले आस्तिकों को तो दृढ़ विश्वासी होना ही चाहिये, प्रभु ने उत्पन्न किया है तो आहार देने वाला भी वही है, काठ-पत्थर-पानी और आकाश के रहने वाले सभी जीवों का आहार पहुँचाने की व्यवस्था में उसकी चतुराई से आगे आज तक कोई नहीं बढ़ा है, बरफ के पहाड़ों में तथा काठ पत्थर के भीतर भी कीड़ों के मुँह में पत्ता आदि आहार पहुंचते लोगों ने प्रत्यक्ष देखा है। भरोसा उसका करना चाहिये जो अजर-अमर तथा सर्वशक्तिमान हो, जिसके जिलाने से लोग जीते हों, उत्पन्न करने से उत्पन्न होते हों तथा मारने से मरते हों, ऐसा तो एक सर्वेश्वर प्रभु श्रीराम ही—है तब दूसरों का मुँह ताकने से—भय खाने से क्या प्रयोजन? एक मनुष्य जप-तप-व्रत-उपवास भजन तो खूब करे परन्तु प्रभु कृपा का दृढ़ विश्वास न रखे तो किया कराया सब व्यर्थ है, दूसरा यदि साधन, भजन, तप, त्यागादि उतना नहीं भी कर पाता है परन्तु पूर्ण विश्वासपूर्वक शरणागति का दृढ़ अवलंब ग्रहण किये हुए है तो वह अवश्य कृतार्थ होगा, यह ध्रुव सत्य है।

एक महात्मा बहुत दिनों से नाना प्रकार का कष्ट सहकर एकान्त में प्रभु का भजन करते थे, वहां जाकर एक प्रेमी भक्त ने साष्टाङ्ग प्रणाम कर के पूछा कि प्रभो! कुछ शिक्षा प्रदान करने की कृपा करें जिससे संसार की घोर वेदना से छुटकारा मिले। सन्त ने कहा कि भैया! उपदेश देने का समय तो है नहीं जीवन ही क्षण भर का है। एक काम करो, गांव में एक ब्राह्मणी है उसके पास जाओ, कुछ अवश्य सिखावेगी, भक्त उस ब्राह्मणी के समीप गया और सब वृतान्त सुनाया। ब्राह्मणी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा अच्छा आज यहीं रहो मेरी, दिनचर्या देखा करो, यह भी एक ऊंची शिक्षा ही है, भक्त वहीं तीन दिन रहा, उसकी चाल चलन देखने लगा, बस ब्राह्मणी साधारण भक्तों की भाँति प्रातः काल उठ कर स्नानादिक से निवृत्त होकर कुछ पूजा पाठ करके चूल्हा चक्की में लग जाय तथा भोजनादि करके निश्चिन्त सो रहे फिर सायंकाल वही कार्य क्रम। चौथे दिन ब्राह्मणी ने पूछा भैया! मेरी दिनचर्या से तुमने क्या सीखा? भक्त बोला कि खाने सोने के बिना और कुछ भी नहीं। ब्राह्मणी बोली-भैया! यह तो सभी मनुष्य करते हैं परन्तु कुछ मेरी भावना भी सीखो, देखो मैं सदा एक प्रभु के ही भरोसे रहती हूँ। जो कुछ प्रभु भेजता है उसी में सन्तुष्ट रहती हूँ। दूसरे किसी की कुछ भी आशा किंवा प्रयोजन कदापि नहीं रखती हूँ। दूसरे को अपने पालने वाला भी कभी नहीं समझती हूँ। किसी को भय देने वाला किंवा मारने वाला समझकर किसी अवस्था में भयभीत कभी नहीं होती हूँ। एक प्रियतम प्राणाधार के बिना अन्य किसी से किसी प्रकार का आत्मीय संबंध भूलकर भी नहीं बांधती हूँ। प्रभुकी प्राप्ति का

(शेष पृष्ठ २४ पर)

श्री अवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'संतप्रिया' व्याख्या सहितम्

श्री भरद्वाज मुनि प्रणीतम् वेदपाद स्तोत्रम्

अर्थात्

वेद वेद्य श्री सीतानाथ स्तवम्

श्रीमद्राम ! रघूत्तंस ! सच्चिदानन्द लक्षण !
भवन्तं करुणावन्तं गायेत्वा मनसा गिरा ॥१॥

श्री श्रीजनकात्मजाजू के समेत हे रघुकुल मणि श्री रामभद्रजू ! 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित सच्चिदानन्द लक्षण अत्यन्त करुणा सागर आपके पवित्र गुण गणों का गान मन और वाणी से मैं निरन्तर किया करता हूँ ॥१॥ श्रुति ने "रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति 'राम' पदेनासौ पर ब्रह्माभिधीयते ॥" कहकर परब्रह्म प्रभु को जिस श्री राम नाम से संबोधित किया है मुनि ने यहाँ उन्हीं को अपने आराध्य के स्वरूप में स्मरण किया है इसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये आप आगे पुनः कहते हैं:—

रामे दूर्वादल श्यामे जानकी कनकोज्वला।
भाति मद्दैवते मेघे विद्युल्लेखेव भास्वरा ॥२॥

नवदूर्वादल के समान हरिताभ श्यामसुन्दर मेरे इष्टदेव प्रभु श्रीरामजी के साथ स्वर्ण के समान अतीव गौर कमनीय श्री मिथिलेश राजदुलारीजू ऐसी सुन्दर शोभा देती हैं जैसे नवीन श्याम सजल घनघटा में चमकती हुई विद्युल्लतिका ॥२॥ ऐसी सुन्दर युगलछवि में मेरा चित्त अनन्य निष्काम होकर लग गया है यह भावना दृढ़ करने के लिये मुनीश्वर पुनः कहते हैं—

त्वदन्यं न भजे राम निष्कामान्ये भजन्तु तान्
भक्तेभ्यो ये पुरा देवा आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः ॥३॥

जिन चरणों का अकिञ्चन कामना रहित परम भागवत आराधन करते हैं मैं तो उन्हीं आपके श्री चरण कमलों का आराधन भजन करता हूँ, आपके बिना अन्य किसी को नहीं भजता हूँ। आयु, कीर्ति, प्रजा आदि लौकिक पदार्थों का दान अपने भक्तों को जिन देवताओं ने पूर्वयुग में दिया है उन देवताओं का भजन जो करना चाहें वे करें परन्तु हे श्री रामजी ! मैं तो आपके बिना अन्य किसी का भजन नहीं करता हूँ ॥३॥ भक्त भगवान् को छोड़कर सांसारिक पदार्थों की कामना में कभी नहीं फंसता है इसलिये श्री भरद्वाज ऋषि पुनः कहते हैं—

भजनं पूजनं राम ! करिष्यामि नवानिशम।
श्रियं नेच्छामि संसाराद्भयं विन्दति मामिह ॥४॥

मैं अन्य देवताओं का, मनुष्यों का, सभीचराचर का आश्रय त्याग कर रात दिन आपका ही भजन पूजन, स्मरण करता हूँ, क्योंकि मैं संसार का ऐश्वर्य, धन, प्रजा कुछ नहीं चाहता। इन सांसारिक पदार्थों में फंसने वाला महान् भय प्राप्त करता है, दुःख जाल में फंसता है परन्तु आपका किसी प्रकार भजन करने वाला इन विपत्तियों से मुक्त हो जाता है-" पतितः सस्खलितो वार्तः क्षुत्वा वा विवशो गृणन्। ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्।" जिस सर्वेश्वर से भय स्वयं डरता है उस प्रभु श्री रामका नाम गिरते, पड़ते, सङ्कट में, छींक आते समय, आलस्य जमुहाई लेते विवश होकर भी कोई ले तोभी सभी-दुःखों से अवश्य छूट जाता है। क्योंकि-" भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम।" जिसके भयसे पवन बहता है, सूर्य नियम पूर्वक उदय अस्त

होता है, अग्नि जलता है, पानी बरसता है तथा मृत्यु जिसकी आज्ञानुसार दौड़ता रहता है वही प्रभु भजनीय है। यदि कोई कहे कि जब आप कुछ नहीं चाहते हैं तब भजन करने का क्या प्रयोजन? इसके उत्तर में कहते हैं कि

राम रामेति रामेति वदन्तं विकलं भवान्।
यमदूतैरनुक्रान्तं वत्सं गोरिव धावतु ॥ ५ ॥

हे प्राणेश्वर प्रभु ! नरक में ढकेलने वाले पापी विषयों (यमदूतों) द्वारा आक्रान्त अत्यन्त विकल, हे श्रीराम ! हे, श्रीराम इस प्रकार आपका नाम लेलेकर पुकारने वाले इस दीन हीन सेवक की रक्षा करने के लिये बछड़े की बोली पर दौडकर जैसे गाय आती है वैसे आप कृपा कर पधारिये ॥५॥

स्वच्छन्दचारिणं दीनं राम रामेति वादिनम्।
तावन्मामनु निम्नेन यथा वारीव धावतु ॥६॥

सर्वेश्वर की सत्ता भूल कर स्वतंत्र (उच्छृंखल स्वच्छंद) होजाना ही जीवों के लिये विपत्तियों की जड़ है, यही कारण है कि "स ब्रह्मः सःशिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्" प्रभु श्रीराम जो अणु-अणु में रमण कर रहे हैं उनका आश्रय सन्त जन एकछत्र त्रिभुवन का साम्राज्य मिलने पर भी नहीं छोड़ते हैं।" दासभूताः स्वतः सर्वे ब्रह्माद्याः सकलं जगत्। आत्म दास्यं हरेः स्वाम्यं मनसा त्वं सदा स्मर।" ब्रह्मा-रुद्र, इन्द्र आदि समस्त लोक पालकों समेत अखिल ब्रह्माण्ड प्रभुका ही दास है अतएव हे जीव! तू नित्य निरन्तर प्रभु का मैं दास हूँ तथा प्रभु मेरे स्वामी हैं यह भाव सदैव मनमें दृढ रखा कर इन शास्त्र वाक्यों का तथा आचार्य परम्पराका आदर्श दिखाते हुए मुनि कहते हैं कि 'मायिक जीवों की सङ्गतिमें पड़कर अपने को स्वतन्त्र मानकर उच्छृंखल स्वच्छन्द मनमाना आचरण करने वाले लोक वेद की मर्यादा का उल्लंघन कर चलने वाले परन्तु एकमात्र आपका ही आश्रय लेकर "हरे राम, हरे राम, राम राम हरे, हरे।" पुकारने वाले इस सेवक की रक्षा करने के लिये आप शीघ्र ही जैसे नीचे की ओर जलकी धार छूट कर आती है वैसे ही कृपा कर आतुरता पूर्वक पधारें ॥ ६ ॥

राम त्वं हृदये येषां सुखं लभ्यं वनेऽपि तैः।
मृदु च नवनीतं च क्षीरं सर्पि मधूदकम्॥७॥

यदि कोई संशय करे कि लौकिक पदार्थों के देने वाले देवताओं का यदि आराधन न करेंगे तो फिर निर्वाह कैसे होगा? इसके उत्तर में "स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर। द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥" तथा "अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदार धीः। तीव्रेण भक्ति-योगेन यजेत पुरुषं परम ॥" आदि सन्त और शास्त्रों के सिद्धान्तों का सारतत्व समझाते हैं कि-'आपके स्मरणमात्र से भक्त का योगक्षेम (अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति का नाम है योग तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा का नाम है क्षेम) अनायास सिद्ध हो जाता है, हे श्रीरामभद्रजू ! आप जिनके अन्तःकरण में वास करते हैं उनको वन में भी सभी सुख सुलभतापूर्वक प्राप्त हो जाते हैं। कोमल मधुर फल-अन्न, माखन, दूध, घी, मधु तथा सुस्वादु जल आदि आपके भक्तों को सर्वत्र सदैव सुखपूर्वक मिलते हैं। अर्थात भगवद्विमुख प्राणी पूर्वकृत पुण्य के फलस्वरूप कुछ दिन पाप करते हुए भी भले सुख भोगता प्रतीत हो परन्तु अन्त में महाविपत्ति जाल में अवश्य फंसता ही है। परन्तु भक्तजन तो सदा सभी अवस्थाओं में अपने ही प्राणवल्लभ की सान्निध्य का सुख भोगता हुआ परमानन्द में मग्न रहता है।

श्रीराम जानकी जाने ! भुवने भवने वने।
स्वभक्त कुलजातानामस्माकभविता भव ॥८॥

श्रीभरद्वाज मुनि पुनः प्रार्थना करते हैं कि हे श्रीजानकी हृदयवल्लभ श्रीरामजी ! अपने भक्तों का आप सदैव पक्षपात करते हैं। यही कारण है कि "न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः" कहकर भी आपको "ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्" कहना पड़ा है, एक भक्त के नाते उसकी इकहत्तर पीढ़ी तारने को तैयार रहते हैं, अतएव

मुझको भी अपने ही भक्तों की परम्परा में, श्रीवैष्णवकुल में उत्पन्न जानकर लोक परलोक में, घर में, वन में सर्वत्र मेरे समर्थस्वामी सदैव रक्षक बने रहें ॥८॥

प्रार्थये त्वां रघूत्तंस समाभूर्न्मे कदाचन।
सभ्यस्तीर्थेषु सर्वत्र पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात् ॥६॥

मान-प्रतिष्ठा में मतवाले मनुष्य अपने अवगुण नहीं समझ पाते हैं। तथा उनकी दृष्टि में सभी अपने से नीचे ही प्रतीत होते हैं। अन्त में अहंकार में चूरम चूर होकर अपने विनाश का कारण स्वयं ही बन जाते हैं यही कारण है कि विचारशील सन्तों ने "प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा गौरवं चाति रौरवम्। अतिमानं सुरापानं त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत्" यह सुन्दर उपदेश दिया है। यह तो लौकिक प्रतिष्ठा की बात हुई, यदि कदाचित् धार्मिक समाज में, सन्तों के बीच में कोई सभ्य मानकर पूजा गया उसका पारा तो और भी चढ जाता है तथा पूज्य एवं आराधनीय सन्तों से पुजवाना प्रारम्भ किया तो उसकी रक्षा स्वयं प्रभु करें तभी बच सकता है नहीं तो क्षण-क्षण के उस भागवतापराध से त्राण पाना असम्भव ही है, इसलिये यहाँ भरद्वाज ऋषि प्रार्थना करके यही माँगते हैं कि "हमको तीर्थ में ही रहना पड़ता है अतएव सभ्य सन्तों के द्वारा सत्कार प्राप्त होना सहज संभाव्य है परन्तु हे प्रभु! पापीजनों के दिये हुए दान का प्रतिग्रह तथा सभ्यजनों द्वारा प्राप्त सम्मान ये दोनों मुझे कभी ग्रहण न करना पड़े ऐसी कृपा करिये, हे रघुकुल मणि श्रीराघवेन्द्रजू! इसलिये मैं बार बार आपको प्रार्थना करता हूँ। तीर्थ में किंवा कहीं सर्वत्र सर्वदा आप कृपा कर आप इन दो बातों से मुझे बचा लीजिये ॥६॥

सर्वं मदर्थं कुरुतोपकारं श्रीराम माकर्णय कर्ण नित्यम्।
मूर्धं नमालोकय नेत्र जिह्वे स्तुहि स्तुतं गर्त सदं युवानम् ॥१०॥

बिना तन-मन समर्पण किये भगवान् का भजन नहीं बन सकता है। 'हृषीकेन हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते" इन्द्रियों द्वारा मन लगाकर भगवान् की सेवा करना ही भक्ति का प्रधान लक्षण है। इसीलिये मुनिराज अपने इन्द्रिय समूह को समझाते हैं कि-"हे कान! तुम परम रमणीय, भक्तजन जीवन, पुण्य चरित्र वाले प्रभु श्रीराम के श्रवणीय गुण गणों का ही सदैव श्रवण कराओ। हे मस्तक! तुम सर्व लोकशरण्य, सकलदेवाधिदेव वन्दित प्यारे प्रभु के ही चरणारविन्दों में नमन किया करो। हे नेत्र! जिसकी रूप माधुरी पान कर सहज शत्रु भी वैर भूल कर निछावर होने को तैयार हो जाते हैं उस सौन्दर्य, माधुर्य रूपरस महोदधि, श्रीरामजी की चित चुरावनी मङ्गलमधुर मूर्ति का ही सदा दर्शन कराया करो। हे जिह्वे! तुम जगन्मङ्गल, त्रैलोक्य पावन, सकल पाप-ताप दोष दुरित नाशक प्रभु के प्रिय नामों का संकीर्तन किया करो। स्तुति प्रार्थना करने योग्य एकमात्र श्रीराम प्रभु का ही स्तवन किया करो, तथा हे मन! हृदय स्वरूप सुन्दर गुफा मन्दिर में शिवभुपण्डि—शुक मानस मराल, सुन्दरातिसुन्दर, मधुरातिमधुर श्रीसीतारामजी की सलोनी छबि ही सदैव पधराया कर। मेरा रोम रोम राम में ही रमण करे, रोम रोम में रामजी रम जायं। मेरा तन, मन, इन्द्रियां तथा आत्मा सर्वतोभावेन सर्वेश्वर साकेत नायक प्रभु श्रीराम की सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर कृतार्थ बने ॥१०॥

अर्थात् अनन्य भाव से आपका ही भजन बने, यह मन-वाणी इन्द्रियां भूलकर भी संसार में अन्यत्र कहीं आसक्त न हो जायँ। अपने आराध्य की अनन्यता के लिये पुनः प्रार्थना करते हैं—

भवान् रघूत्तंस तु दैवतं मे यं सच्चिदानन्द घन स्वरूपम्।
एकं परंब्रह्म वदन्ति नित्यं वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः ॥११॥

'राम' शब्द का कोई अन्य अर्थ लगाकर किसी विजातीय विदेशी नाम में न घटा ले एतदर्थ श्री भरद्वाज ऋषि स्पष्टीकरण करते हैं कि—'रघुवंश में उत्पन्न होने वाले हे श्रीरामचन्द्रजी! आपही एक मेरे इष्टदेव हैं। वेद वेदान्त के तत्त्व को जान·

कर जिन ब्रह्मविदांन एक निश्चित अर्थ में परब्रह्म, सच्चिदानन्द घनस्वरूप, नित्य निर्विकार कह कर जिसको पुकारा है, आप वही श्रुतिसारतत्व भक्तजन सर्वस्व आनन्दकन्द रघुनन्दन मेरे एक-मात्र आराध्य हैं ॥ ११ ॥

भवत्कृपा पाङ्ग विलोकितेन वैकुण्ठवासः क्रियते जनेन । ज्ञात्वा भवन्तं शरणागतोऽस्मि यस्मात्परं नापरमस्तिकिञ्चित् ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! आपकी केवल कृपा कटाक्ष के प्रभाव से ही आपका जन अनायास ही परम दुर्लभ दिव्यधाम वैकुण्ठ का वास प्राप्त कर लेता है, यही जानकर तथा जिससे परतत्व कोई नहीं है एवं जिसके बिना अपर तत्व भी कोई नहीं है ऐसा दृढ विचार कर सर्वतन्त्र स्वतंत्र परात्पर आपके ही श्रीचरणों की शरणागति स्वीकार करता हूँ ॥१२॥

दीनान्भवद्भक्त कुल प्रसूतान्भवत्पदाराधन हीन चित्तान् ।
अनाथबन्धो, करुणैकसिन्धो, पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥१३॥

हे अनाथों के नाथ ! यदि और कोई साधन सामर्थ्य किंवा आपसे अधिक करुणावाला समर्थ स्वामी प्राप्त होता तो हम आपको इतना सङ्कोच कष्ट न देते परन्तु हे दयानिधे ! हमने सुना है कि आप "प्रणत कुटुम्बपाल रघुराई" हैं। आपने ही अपने श्रीमुख से—"मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति" "एकोऽपि वैष्णवः पुत्रः कुल कोटिं समुद्धरेत" कहा है, इसलिये आपके चरणों की भक्ति से रहित होने पर भी आपके भक्तों की परम्परामें श्री वैष्णव सन्तति होकर जन्म लेने के अधिकार से हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि जैसे पिता अपने पुत्रों का पालन करता है वैसे ही हमपर प्रसन्न होकर आप हमारा उद्धार करें ॥१३॥

भवान् भव व्याघ्र भयादि भीतं जराभिभूतं सह लक्ष्मणेन ।
सदैव मां रक्षतु राघवेश ! पश्चात्पुरस्तादधरा-दुक्तात् ॥१४॥

हे राघवेन्द्र प्रभु श्रीराम भवरूपी व्याघ्र तथा अन्य काम-क्रोधादि हिंसक प्राणियों से भयभीत, जराव्याधि ग्रस्त, अत्यन्त दीन हीन अनाथ की आप कृपा करके श्री लक्ष्मणजी के सहित ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सर्वत्र सदैव रक्षा करें ॥१४॥

कामाद्य मध्ये परिवर्धमानं रोगं मदीयं भवनामधेयम्। दूरीकुरुत्वं यदहं त्रिलोक्यां भिषक्तमंत्वांभिषजं-शिचनोमि ॥१५॥

कामादि पापरूपी कुपथ्य से निरन्तरं बढ़ने वाला मेरा भवरोग नामक रोग घोर पीड़ा दे रहा है। इस कुरोग को नष्ट करने के लिये मैं सर्वत्र खोज चुका, तीनों लोक में कोई वैद्य यह महारोग छुडाने में समर्थ न निकला, अतएव अब "भजामि रामं भवरोग वैद्यम्" मेरे वैद्यराज आप ही बनिये, मैंने ठीक-ठीक पता लगाकर आपको ही भिषक्-शिरोमणि चुना है, अतः चिकित्सक-धर्म का पालन करते हुए मेरी उचित चिकित्सा आपको करनी पड़ेगी, मेरा भवरोग आपके बिना अन्य कोई छुड़ा ही नहीं सकता ॥१५॥

श्री रामचन्द्रः स जयेद जस्त्रं लङ्कापुरी द्रोणगिरौ पयोधौ ।
यस्य प्रसादाद भवद्धनू मानणो रणीयान्महतो महीयान् ॥१६॥

भगवान के प्रताप से भक्त भी अमोघ संकल्प हो जाते हैं, सूर्य किरणों की सानिध्य में काच भी असह्य तेज सम्पन्न हो जाता है, यह बात प्रकट करते हुए आप कहते हैं कि अब श्रीरामभद्रजू का सदैव सर्वत्र जय जय कार हो, जिनकी अतुल कृपा से लंकादहन में, द्रोणाचल लाने में तथा समुद्र लंघनादि समय में श्री हनुमानजी "महतो महीयान्" (बड़े से भी बड़े) बन गये तथा लङ्का प्रवेश पर श्री किशोरीजू की खोज के समय "अणोरणीयान्" छोटे से भी छोटे बन गये थे। अर्थात् आपकी कृपा कटाक्ष के प्रसाद से असंभव भी संभव हो जाता है तथा संभव भी असंभव हो जाता है। कृपा की

वज्रादपि कठोर तथा वज्र को पुष्प से भी कोमल कर देना, मशक को ब्रह्मा तथा ब्रह्मा को कीट से भी अधम कर देना आपकी भृकुटी विलास का चमत्कार है ॥१६॥

सीतापते राम रघूत्तमेति यो नामानि जल्पेद्युधितस्य तत्क्षणात् ।
दिशो द्रवन्त्येव युयुत्सवोऽपि भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः ॥१७॥

घोर दुःखमूल भव संग्राम में ताल ठोक कर लड़ने वाले आत्मशत्रु विजय की बलवान इच्छा से लड़ते हैं, उन्होंने बड़े-बड़े धीर-वीर योगीन्द्रों के छक्के छुड़ा दिये हैं इसलिये उन्हें अपने बल का घमण्ड भी थोड़ा नहीं है परन्तु क्या कहूँ प्रभो! आपके नाम रूपी महा दारुण अमोघ अस्त्र में कितना अनन्त सामर्थ्य है कि एकबार जो कोई आपके चरण कमल की कृपा कटाक्ष का दृढ़ विश्वास रूपी धनुष हाथ में लेकर आपके नाम स्मरण रूपी टंकार करता है कि बड़े बड़े भयंकर प्रबल रिपु हृदय में भयभीत हो होकर दशों दिशाओं में भाग जाते हैं तथा हे सीतापते! हे राम! हे रघुपते! हे राजाराम! इस प्रकार आपके नाम संकीर्तन के कर्कश बाणों की झड़ी लगाते ही वे प्राण लेकर भाग जाते हैं। अन्त में विजय आपके नाम जापक की ही होती है, "सहित सहाय कलि काल भीरु भागि है।" "महा अजय संसार रिपु जीति सके सो वीर" धन्य है प्रभो! आपके नाम की ॥१७॥

अनादि मध्यान्तमनन्तमाद्यं परं स्वयं ज्योतिष मप्रमेयम् ।
विलोकये दाशरथे! कदात्वामादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ॥१८॥

अब प्रियतम के दर्शन की उत्कण्ठा में विकल होकर मुनि पुकारते हैं कि "आदि-अन्त-मध्य राम साहिबी तुम्हारी" हे अनादि, हे अनन्त! हे आद्य पुराण पुरुषोत्तम! परम ज्योतिर्मय प्रकाशस्वरूप, अगाध गुण गणराशि, हे दशरथ राजकुमार! अन्धकार से दूर, परम तेजस्वी, आदित्य वर्ण आपके मनोहर सगुण साकार श्री विग्रह का शुभ मंगलमय दर्शन कब होगा, प्राणनाथ? ॥१८॥

श्री राघव स्वीय पदारविन्दे सेवां भवान्नः सततं ददातु ।
वयं स्वजन्मान्तर सञ्चितानि ययाति विश्वा दुरितां तरेम ॥१६॥

हे श्रीरघुनन्दन आनन्दकन्द! आप अपने श्रीचरणारविन्द की सेवाका सुख सतत काल प्रदान करने की कृपा करिये। आपकी सेवा रूपी दिव्य नौका पाकर हमलोग जन्मजन्मान्तरों में किये हुये पापरूपी घोर सागर से सहज ही पार हो जायँगे। अर्थात् आपके चरणों की सेवासे विमुख न भवसागर पार जा सकते हैं और न अपने कर्मबन्धनों की बेड़ी तोड़ सकते हैं ॥१६॥

भो चित्त, चेत्कामयसे विभूतिं त्वमेव संसर्पय वीरमेकम् । रघूत्तमः श्रीरमणः स्तदा यः श्रीणामुदारो धुरीणो रयीणाम् ॥२०॥

हे चित्त! तूं बडा चटोरा है. कामना का त्याग तो कर नहीं सकता है परन्तु मैं एक सुन्दर मार्ग बताता हूँ, यदि यह बात मानले तो तेरा कल्याण तथा कामनासिद्धि दोनों परिपूर्ण रूपसे हो जायगा। हे मन! तूं मनमोहन रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी के चरण शरण चला जा, क्योंकि वे श्रीनिवास हैं, लक्ष्मी उनकी दासी हैं, सभी धनिकों में वे धुरन्धर उदार दाता है, उनके द्वार पर सदैव याचकों को अभयदान मिलता है। उनके आश्रित को किसी का आसरा नहीं लेना पड़ता, उस दरबार का भिक्षुक फिर कभी दुबारा भीख नहीं मांगता, वह तो इतना बड़ा धनिक-सुखी संतुष्ट हो जाता है कि वह स्वयं ही संसार का संकट नष्ट करने में समर्थ हो जाता है ॥२०॥

वन्देरविन्देक्षणमम्बुदाभमाकर्ण नेत्रा सुकुमार गात्रा ।
यं जानकी हर्षवती वनेऽपि प्रियं सखायं परिषस्वजाता ॥२१॥

कमलनयन, सजलघनश्याम भगवान श्रीराम भद्रजूका मैं बन्दन करता हूं, जिनके अत्यन्त प्रिय सुखद आलिंगन का आनन्द प्राप्त कर अति सुकुमारी, विशालदीर्घनयना श्रीजनक राजकुमारि भयङ्कर वन में भी हर्षित होकर रहती थीं। अर्थात् प्रियतम प्रभु का संग ही सकल सुखों की खान है तथा उनका वियोग ही दुःख का भण्डार है, भक्त को यह भाव कभी न भूलना चाहिये ॥२१॥

सीताजाने, नैव जाने त्वदन्यं त्यक्ता श्री स्त्रीः पुत्रमामुःकदां हे।

त्वां वै स्मृत्वा देवयानाधिरुढ स्तत्वायाभि ब्रह्मणावन्दमानः ॥२२॥

हे श्रीसीतानाथ। आपके बिना मैं अन्य कुछ भी अपना नहीं जानता हूँ, मैं धन-पुत्र स्त्री परिवार की माया ममता त्याग कर आपके शरण आया हूँ। आपका स्मरण करने वाले देवताओं के द्वारा वन्दित होकर विमानों में बैठकर दिव्यधाम चले जाते हैं, इसलिये मैं भी ब्रह्मादि देव पूज्य परमाराध्य आपके चरणों की शरण प्राप्त हुआ हूँ ॥२२॥

अहं भरद्वाज मुनिर्निरन्तरं श्रीराममेकं जगदेकनाथं।

तं वर्णये मुक्ति रसादि वित्तदं कविं कवीना मुपम श्रवस्तमम् ॥२३॥

मैं भरद्वाज मुनि जगत के एक मात्र स्वामि केवल श्रीरामजी का ही भजन स्मरण करता हूँ। जिनकी कृपा से स्वर्ग-पातालादि दिव्य भोग तथा मुक्ति सुख भक्तों को प्राप्त होता है, कविजनों में सर्व श्रेष्ठ कवि जिनकी सुन्दर कीर्तिका यश का गुणगान करते हैं मैं भी उन्हीं प्रभुका निरन्तर भजन-स्मरण कीर्तन करता हूँ ॥२३॥

पठन्ति स्तुतिं ये नरा ऋद्धि कामा
समृद्धिं चिरायुष्यमायुष्य कामाः।
लभन्तेऽत्र निःसंशयं पुत्र कामा-
लभन्तेऽत्र पुत्रांल्लभन्तेऽत्र पुत्रान् ॥२४॥

अब स्तोत्र पाठ का फल कहते हैं कि इस स्तुति का जो पाठ करेंगे वे जो चाहेंगे प्राप्त होगा, ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि, वृद्धि, आयुष्य, पुत्र, पौत्रादि सब कुछ प्राप्त होगा, पुत्रार्थियों को पुत्र होगा, पुत्र होगा अवश्य पुत्र लाभ होगा ॥२४॥

वेद पादमिदं स्तोत्रं स्नात्वा भक्त्या सकृन्नरः।
यः पठेद्राघवस्याग्रे जीवाति शरदः शतम् ॥२५॥

जो भरद्वाज मुनि प्रणीत "वेदपाद स्तोत्र" नाम का यह स्तोत्र प्रातःकाल स्नान करके भक्तिपूर्वक एक बार भी नित्य श्री सीतारामजी के मन्दिर में पाठ करता है वह सुख से सौ वर्ष जीता है तथा अन्त में प्रभु की प्राप्ति होती है ॥२५॥

इति श्री भरद्वाज ऋषिणा प्रोक्तं वेद पादाभिधं ऋक् चरण युतं समाप्ति मम मत्।

(शेष पृष्ठ १८ का)

समर्थ साधन उनकी ही शरणागति समझ कर अन्य किसी भी साधन को प्रभुकी कृपा से प्रबल (समर्थ) भूलकर भी नहीं मानती हूँ अतएव अन्य साधनों का अवलंब सर्वथा त्याग कर उनकी ही कृपा के बल पर सदैव भूमती रहती हूँ। जो मेरे लिये परमकल्याण प्रद है वही मेरा प्रभु कराता है यह भाव दृढ़ रखकर उन पर निछावर हूँ।

यह सुनकर भक्त चरणों पर गिर पड़ा और उपदेश ग्रहण कर कृतार्थ हो गया। भगवान् अनन्त करुणा वरुणालय भारत की भूली प्रजा को अपने चरण कमलों का प्रेम तथा अटल विश्वास प्रदान कर जगत् के जीवों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें यही बार-बार प्रार्थना है।

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में पूर्व आचार्य श्री महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्धसन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं व समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

'नाम-माहात्म्य" भगवन्नाम प्रचार की दृष्टि से निकलता है इसका प्रचार जितना अधिक होगा उतनी ही भगवन्नाम प्रचार में वृद्धि होगी, अतः कृपा कर समस्त प्रेमी पाठक इसे अपनायें। इसका मूल्य बहुत कम केवल २≡) है। आज ही आप मनीओर्डर द्वारा रुपया भेजकर इसे मंगाना आरम्भ कर दीजिये और अपने इष्ट मित्रों को भी इसे मंगाने के लिये उत्साहित कीजिये। नमूना मुफ्त मंगावें।

पताः—व्यवस्थापक 'नाम-माहात्म्य' श्री भजनाश्रम
मु. पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

रजिस्टर्ड नं. ए ५४६

प्रेम-भक्ति

प्रभु को प्रेमा भक्ति भावे ।

सकल जगत को एक सूत्र में, जो प्रभु बांधि चलावें ।
सो प्रभु प्रेमा भक्ति कारण, यशुमति से बँध जांवें ॥
ब्रह्मादिक निज मस्तक जिनके, चरणों मांहि झुकावें ।
उनको प्रेम से ब्रज बालाएँ, छाछ पे नाँच नचांवें ॥
ज्ञानी, ध्यानी, योगीजन भी, ढूंढ-ढूंढ थक जांवें ।
सो प्रभु प्रेम से रथ अर्जुन को, सारथी होइ चलावें ॥
दुर्योधन के छोडि पदारथ, साग विदुर घर खांवें ।
प्रेम से जूँठे फल सिवरी के, मांगि-मांगि प्रभु पांवें ॥
प्रेम से करमा के घर खिचड़ी, रुचि-रुचि भोग लगावें ।
दास मलूक का सूखा टुकड़ा, बिन चुपड़ा खा जावें ॥
गजगणिका अरु गीध को तारे, ध्रुव को दरश दिखावें ।
द्रुपद सुता की लज्जा राखी, आकर चीर बढ़ांवें ॥
धना भक्त और सेन भक्त का, कारज आप बनांवें ।
प्रेम से नरसी के यहां आकर, भात प्रभु भरि जांवें ॥
शारद शेष महेश हु थाके, वेद भेद नहिं पांवें ।
प्रेम से वेही खंभ फोरि कर, भक्त प्रह्लाद बचांवें ॥
जब-जब भक्त बुलावें प्रभु को, दौरि-दौरि प्रभु आंवें ।
'सन्त' सदा भज ऐसे प्रभु को, जन्म मरण मिट जांवें ॥

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित व गौरगोपाल मानसिंहजी का संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान भजनाश्रम वृन्दावन [मथुरा] से प्रकाशित

अंक ६

विषय सूची

भाद्रपद संवत् २००६

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक :- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओं से १॥≡) एक प्रति का ≡)

कता। देखिए—दूध रहने पर पानी उसके यातना
बिक जाता है। आज नैतिक पतन के कारण इसके

वृन्दावन

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन सितम्बर सन् १९५२ | अंक ९

* प्रार्थना *

(रचयिता—पं० श्रीगोविन्ददास 'सन्त' धर्मशास्त्री)

श्रीकृष्णचन्द्र कृपालु भजु मन, नन्दनन्दन यदुवरम् ।
आनन्दमय सुखराशि व्रजपति, भक्तजन संकटहरम् ॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलक उर, वनमाल कौस्तुभ सुन्दरम् ।
आजानु भुज पट पीत धर, कर लकुटि मुख मुरली धरम् ॥
वृषभानुजा सह राजहिं प्रिय, सुमन सुभग सिंहासनम् ।
ललितादि सखिजन सेवहिं, लिए छत्र–चामर–व्यञ्जनम् ॥
पूतना–तृण–शकट–अघ–बक, केशि व्योम विमर्दनम् ।
रजक–गज–चाणूर–मुष्टिक, दुष्ट कंस निकन्दनम् ॥
गो–गोप–गोपीजन सुखद, कालीय विषधर गंजनम् ।
भव भय हरण अशरणशरण, ब्रह्मादि मुनि मन रंजनम् ॥
श्याम–श्यामा करत केलि, कालिन्दी तट नट नागरम् ।
सोइ रूप मम हिय बसहु नित, आनन्दघन सुख सागरम् ॥
इति वदति 'सन्त' सुजान, श्री सनकादि मुनिजन सेवितम् ।
भव भीति हर मम दीन बन्धो ! जयति जय सर्वेश्वरम् ॥

संवत् २००६

लेखक
पं० श्री गोविन्द... 'मस्त' धर्मशास्त्री

सत्यनारा

(लेखक—पं० श्रीराजनारायणजी द्विवेदी)

प्रस्तुत व्रत का प्रचार प्रायः सारे भारत में है। शुभ संस्कारों त्योहारों के समय यह व्रत किया जाता है। पूर्णमासी और संक्रान्ति के दिन इसको करते हैं। पर श्रद्धा-भक्ति युत किसी दिन भी किया जा सकता है। व्रत-कथा का आविर्भाव है स्कन्द पुराणान्तर्गत रेवाखण्ड। वहीं से लेकर इसका प्रचार धार्मिक जगत में हुआ है।

यह कथा बड़ी महत्त्वपूर्ण है, और रहस्यों से भरी है। पर खेद है कि उन रहस्यमय गूढ़ तत्त्वों को पहचानने की चेष्टा नहीं होती। जिस भाव तथा प्रभाव को लक्ष्य कर कथा की सृष्टि हुई है, या यह कहा जाय कि व्रत पालन करने पर जोर दिया गया है उस गहराई में सर्वसाधारण नहीं पहुँच पाता। लोगों की धारणा है कि सत्यनारायण का नाम लेकर कथा सुन प्रसाद भक्षण करना ही ध्येय है! पर इसमें तात्त्विक विवेचन बड़ा ही निराला है। विद्वानों की दृष्टि उन विवेचनों पर गई है, किन्तु उसके प्रचार में आलस्य तथा कठिनाई है। वस्तुतः इस व्रत का संबंध हृदय से है। लेकिन लोग इसे बुद्धि की कसौटी पर रखकर स्वार्थानुकूल प्रश्रय देते हैं। सृष्टि की रक्षा हेतु धर्म जरूरी है धर्म धारण करने की वस्तु है न कि मजाक करने का विस्तृत क्षेत्र! सभी धर्मों का आश्रय है सत्य। धर्म का उद्देश्य है विश्व बन्धुत्व को बढ़ाना, मनुष्य-मनुष्य में जो कृत्रिम भेद हैं उसको मिटाना। और यह काम सत्य से ही सुलभ है। सत्य एक व्रत है; संसार में कठिन से कठिन व्रत सत्य का है।

जो सत्य जानता है, और मन, वचन तथा मा[न] से सत्य का आचरण करता है, वही परमेश्वर को पहचानता है। इस आचरण से वह त्रिकाल द[र्शी] हो जाता है। उसे इस देह में मुक्ति मिल जाती है। जो कोई सत्य रूपी नारायण का व्रत करना चाहे और उस पुण्य को लेना चाहे उसे चाहिये कि सब जगह हर समय सब बातों में सत्य का ही आचरण करे। वैसा करने से प्रभुत्व और अतु[ल] ऐश्वर्य की ध्रुव प्राप्ति होती है।

गांधीजी का कथन है—जो मनुष्य अपनी जिह्वा को कब्जे में नहीं रख सकता उसमें सत्य का अधिष्ठान नहीं। गांधीजी कहते थे कि मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उस पर क्रोध होने के बजाय अपने ही पर क्रोध होता है। क्योंकि मैं जानता हूं कि अभी मेरे अन्दर असत्य का वास है। 'परमेश्वर सत्य है यह कहने के बजाय सत्य ही परमेश्वर है यह कहना मुझे उत्तम लगता है।' सत्य अहिंसा का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।

सत्य का अर्थ होता है-यथार्थ कथन, सत्य का अर्थ है-ऋत सृष्टि का नियम या किसी महान् कार्य का विधान। सत्य से ही सूर्योदय होता है, सत्य से ही वायु चलती है और सत्य से ही पृथ्वी विश्व को धारण करती है। सत्य से लोक पलते हैं। सत्य का अर्थ है प्रतिज्ञा-पालन। एक बार मुंह से जो बात निकल जाय उसका पालन करना सत्य, सत्य ही है। असत्य स्वयं कमजोर है, और है परतंत्र। बिना सत्य के आधार के वह खड़ा ना[हीं]

हो सकता। देखिए—दूध रहने पर पानी उसके साथ बिक जाता है। आज नैतिक पतन के कारण सत्य का आधार ले चोर बाजार में असत्य का धुआँ धार है। ब्लैक मारकेट का जोरदार गरम बाजार है। यदि सत्य के नाम पर असत्य इतना कारगर हो जाता है, तो स्वयं स्वतंत्र सत्य कितना होगा? इसका हिसाब कौन करे।

लोगों में दो वृत्तियाँ प्रधानतः रहती हैं—लोभ और स्वार्थ। इन दोनों के कारण सारी भय दिल में निवास करता है। सत्यनारायण में इन्हीं दोनों की पृष्ठ भूमि पर सत्य की महिमा का चित्र खींचा गया है। नैमिषारण्य में ८८ हजार ऋषियों ने इसी सत्य की प्रतिष्ठा हेतु उक्त वन में एक असाधारण अधिवेशन किया था। जिसके अगुआ थे महर्षि सूतजी। नारद द्वारा सत्यनारायण का प्रचार, उसकी महिमा, उसके द्वारा होने वाले फलाफलों का वर्णन। उपाख्यानों में सत्य का सन्निवेश बड़ा ही उत्तम है।

अस्तु; उपरोक्त लोभ के सहारे कहा गया है कि सत्य का पालन करो। अर्थात् सत्यरूपी नारायण को अपनावो, तुम्हारी संतति बढ़ेगी; धन मिलेगा। इतना ही नहीं जो चाहोगे सो पावोगे। सब दुःख दूर हो जायगा। और सत्य भूलोगे, उसको गुप्त रखोगे तो तुम्हारे कुल का नाश हो जाएगा; धन-धान्य नष्ट होगा।

"सत्य-पालन सभी वर्णों का धर्म है" यह बतलाने के लिए इस तत्व का प्रचार करने के लिए सत्यनारायण की कथा के भीतर ब्राह्मण-राजा-लकड़हारा बनियाँ प्रभृति की चर्चा हुई है। सत्य के पूर्व कथित तीनों अर्थ प्रतिज्ञापालन, यथार्थ कथन और सृष्टि विधान में लिए गये हैं। साधु बनिया ने पहले की प्रतिज्ञा भुला दी थी। फलतः सत्यदेव के कोप भाजन हुए और परिणाम जेल यातना हुई। चन्द्रकेतु राजा भी विमुख हुआ। इसके बाद लीलावती की धर्मबुद्धि जागी तब चन्द्रकेतु के मन में न्याय का विचार आया। कंजूसी के विचार के कारण साधु बनिया को नाव भरी संपत्ति से हाथ धोना पड़ा। पुनः लत्ता-पत्ता देख पछतावा के साथ भग्न हुआ। सत्यपरायण हुए। कलावती कन्या ने पति प्रेम में सत्य का नियम तोड़ कर इस प्रसाद से वंचित हुई। परिणाम यह हुआ कि नाव के साथ पति का लोप हो गया। तुंगध्वज राजा ने वर्णाभिमान के कारण सत्यरूप प्रसाद का अनादर किया। उसके धन धान्य सुसज्जित राज्य का संहार हो गया। कलावती और तुंगध्वज दोनों ने जब सत्य की शरण ली तब इनका पहले जैसा पूरा हो गया।

सत्यनारायण व्रत कथा का यही रहस्य है। इस कथा में प्रसाद भक्षण विशेष महत्व रखता है। अतः कथा के अवसान में कहा जाता है कि सत्य प्रसाद लो। इस सत्यनारायण को स्मरण करते हुए घर जाओ। इसका यथार्थ प्रचार करो। इस पर निष्ठा रखो। समाज या प्रकृति के नियम को न तोड़ना ही कल्याण प्रद है। और यही सत्य है। जो सत्य की सड़ पर चलता है उसकी सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। सत्यनारायण के व्रत और कथा के इस रहस्य को जो समझ लेता है वह सत्यरूप नारायण की कृपा और प्रसाद को पा लेता है। जो कोई सत्य की उपासना करता है उसका सब दुःख दूर हो जाता है। बन्धन, भय और शंकायें सदा अलग रहती हैं। सत्यनारायण की महिमा का यशोगान सब को बराबर करना चाहिए। मन, वचन और कर्म से सदा सत्य का आचरण करना लोक मर्यादा को बचाना है। संसार का हाहाकार-विषाद और अशांति मिटानी हो तो सत्य का ही आश्रय लिया जाय।

ओम् शान्तिः शान्तिः

नाम माहात्म्य

(लेखक श्री रामलालजी पहाड़ा)

परमात्मा का नाम ही सत्यं शिवं सुन्दरम् है नामी से नाम बड़ा है और सबको सुलभ है। यह बात रामचरित्र मानस में अच्छे विस्तार से समझायी गयी है, तो भी अनेक बार पढ़कर भी नाम के बड़प्पन की बात बहुत थोड़े जनों के समझ में आती है। सत्य ही यह बात कहने और समझने में कठिन है। यदि पूर्व पुण्य के प्रताप से कुछ समझ में आभी जाय तो क्रियात्मक रीति से साधन बहुत कठिन प्रतीत होता है। हर एक काम की रीति रहती है। उसी रीति से (शास्त्रानुकूल विधि से) करने से मनको शांति होती है अन्यथा शास्त्ररीति छोड़ कर मनमानी करने से न सिद्धि, न सुख और न सुगति मिलती है। नामोच्चारण या नाम संकीर्तन या नाम जप साधन करने की भी रीति है। नाम की महिमा में बहुत कुछ कहा गया है और कलियुग के लिए अन्य उपाय है नहीं। केवल नाम का ही आधार है। रामरक्षा स्तोत्र में कहा गया है

"भर्जनं भव बीजानां मर्जनम् सुख संपदाम्। तर्जनं यम दूतानां राम रामेति गर्जनम्। 'राम राम' का गर्जन ही संसार के दुःखों को दूर करता, सुखसंपत्ति बढाता और यमदूतों (कलियुगी दुष्ट जनों) को धमकाता है। इस तरह महिमा के विषय में प्रायः अनेक ग्रन्थों में कहा गया है। देश में करोड़ों नर नारी नाम जप में लगे हुए हैं। किन्तु वह सब प्रायः "वाचारम्भण" हो रहा है। दुर्भाग्य से शासक और शासितों का नैतिक ह्रास बढ़ रहा है और देश में अशांति की तरंगें तीव्रतम वेग से काम कर रही है। इस से यही प्रमाणित हो रहा है कि "नाम-जप" आदि कार्य नाम मात्र को हो रहा है। अधिकांश नर नारियों के मन में श्रद्धा नहीं। सब कोई रामराज्य की बातें करते हैं किन्तु अन्तस्थ राम को बाहर निकाल कर "राज्य" पर आरूढ़ करने वाले बहुत थोड़े हैं। यहां तो 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' हैं संसार में 'कलिप्रभाव विरोध चहुँ ओरा' होने से श्रद्धा शिथिल पड़ गई है जिससे विश्वास पूर्वक काम करना कठिन हो गया है।

संसार प्रत्यक्ष और स्थूल है अतः शीघ्र ही मन को अटका लेता है। सूक्ष्म तत्व को समझने को स्थूल व्यवहार का उदाहरण लेना उपयोगी होगा। प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि "नाम" के पर्य्याय में 'संज्ञा, आस्पद, अभिधान, ह्वयं," आदि का उपयोग होता है किन्तु नाम इन सबों से भिन्न है और लोक व्यवहार में उसीकी (नाम की) महिमा है। उसके बिना लोक व्यवहार का ठीक ठीक होना कठिन है। इस भिन्नता को समझने के लिए निम्न उदाहरण ठीक होगा यथा "रामलाल, पहाड़ा, पेंशनर, हरिगंज, खंडवा" में 'रामलाल" तो मुख्य नाम है और शेष संज्ञा आदि हैं। पत्र योग्य स्थान पर पहुंचने के लिए नाम का ही लिखना आवश्यक होगा। ऐसे ही देन लेन आदि के व्यवहार में जब तक नाम नहीं लिखा जायगा तब तक वह व्यवहार पूरा नहीं होगा। सब जगह नाम देखकर व्यवहार किया जायगा। ठीक यही बात सूक्ष्म जगत में है। नाम और रूप दोनों उपाधि हैं। ईश्वर के विषय में ज्ञान के समीप पहुँचने के लिए सुगम उपाय है। 'नाम' भी दो प्रकार के हैं मुख्य नाम और गौणनाम। इन्हीं गौण नामों का उल्लेख विष्णु सहस्र नाम में है। मुख्य नाम मोक्ष दाता है और गौण नाम लौकिक सुख की योजना करने में सहायक होता है। मुख्य नाम स्वतंत्र है और निरपेक्ष रहकर प्रभाव प्रकट करता है। गौणनाम

सापेक्ष है। "अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और दैव" का जब सामंजस्य होता है तब 'गौण' नाम का जप सहायक होता है। यदि कहीं इन पांचों की ताल बिगड़ गई तो वह जप "वाचारम्भण" हो जाता है। "वाचारम्भण" से यथार्थ लाभ नहीं होता। क्रियात्मक ढ़ंग से "अंतस्थ राम" को व्यवहारिक रूप देना ही नाम + उच्चारण है। नाम का अर्थ यश है अतः लोक व्यवहार में "राम के गुण" का यथाशक्ति दिग्दर्शन करना ही नाम को ऊपर उठाना है और विपरीत काम करना ही नाम को गिराना है। खेद! महाखेद! आज देश में "राम" का नाम गिरगया है और रावण का नाम ऊंचा हो गया है। "सीता" का हरण करने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई है "रावण" का साक्षात्कार जगह-जगह हो रहा है। नाम जपनें अर्थ पर ध्यान देना आवश्यकता है। नामजप से कौन से प्रयोजन को पूरा करना चाहते हैं; इसका निश्चय पूर्व ही कर लेना आवश्यक है जैसा कोई बच्चा मां या बाप का नाम पुकारता है तो उसके मन में कुछ प्रयोजन को पूरा करनें का विचार रहता है। श्रुति में कहा है

"तज्जपस्तदर्थ भावनम्"।

प्रयोजन की भावना को स्थिर रख जप करना श्रेष्ठ है। नाम जप पर ऋग्वेद में भी बहुत कुछ कहा गया है—

(१) नामानितेशतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे
मंत्र सूक्त ३।३७।३

हे अनन्त प्रज्ञ या कर्म कर्ता परमात्मा तेरे नामों का सब (चारों प्रकार की) वाणियों से हम गायन करते हैं।

(२) मर्ताअमर्त्यस्यतेभूरि नाम मनामहे।
विप्रासो जात वेदसः ८।११।५

विप्रासो—विशेष रीति से व्यववहार में प्रकट करने वाले। हमअंतर्बाह्य एक होकर काम करने वाले मरण शील मनुष्य हे सर्वज्ञ परमात्मा तुझ अमर तत्व का "नाम" बहुत ही चाहते हैं।

(३) विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये
अग्नि गीर्भिर्हवामहे ८।११।६

विप्रं और विप्रासः अर्थात् भगवान और भक्त दोनों का सामंजस्य दर्शाया है। हम आचरण में प्रकट करने वाले मरणशील मनुष्य प्रत्यक्ष अग्नि (सर्वश्रेष्ठ) देव की वाणियों से विनय करते हैं। जिस सर्वश्रेष्ठ परमदेव अग्नि की वाणियों से स्तुति करते हैं उस देव को व्यवहार में प्रत्यक्ष दिखाने की अभिलाषा करते हैं।

(४) नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते
रणयन्त संदृष्टौ ६।१४।

जो मनुष्य तेरे यज्ञिय (यज्ञमें लिये जाने वाले लोक व्यवहार में काम आने वाले) नामों को चित में धारण करते हैं वे कल्याण मय प्रत्यक्ष संसार में आनन्द से रहते हैं। व्यवहारिक नामों से काम लेकर संसार में आराम से जीवन निर्वाह करते हैं।

इस तरह ग्रन्थों में नाम की महिमा बहुत गायी गयी है। नाम की शक्ति को समझ युक्ति से "नाम-जप" करने पर इष्ट का लाभ होता है अन्यथा परिश्रम निष्फल रहता है। इसलिए मानस में सामान्यतः कहा गया है 'जासु नाम भव भेषज' जो जिस नाम को भव-भेषज समझता हो उसी नामी को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करे। यही असली मर्म है। मानसकार "राम" नाम को ही श्रेष्ठ मानते हैं।

* बिखरे मोती *

(लेखक— "एक हँस" बलेआरी, पटना)

(१) धन में कभी आसक्ति मत होने दो एवं न कभी उसे अपनी चीज समझो। जिसका धन है, उसी की सेवा में उदारता एवं दक्षता के साथ निरन्तर खुले हाथों लगाते रहो।

(२) धन उपार्जन करो, पर धन का लोभ मत करो। लोभ पाप का मूल है।

(३) जिस मनुष्य के मन में धन का लोभ उत्पन्न हो गया है, उसका प्रयत्न करने पर भी पाप से बचना बहुत कठिन है।

(४) धन को ही इष्ट मानने वाले धनिकों का, ऐसे धनियों के आस पास रहने वाले उनके साथियों का और धन लोभियों का संग मत करो। उनका संग बुद्धि में भ्रम पैदा करके धन का लोभ जाग्रत कर देगा और तुम्हें गहरे पाप के गर्त में ढकेल देगा।

(५) धन का अभिमान बड़ी बुरी वस्तु है। धनाभिमानी जन माता, पिता, गुरु, साधु, सन्त, महात्मा, विद्वान और विभु (भगवान) तक का अपमान कर बैठते हैं।

(६) धन-दुर्मदान्ध से ऐसा कौन सा पाप है, जो नहीं होता है। धन का नशा चढ़ा कि मनुष्य पागल होकर गहरी खाई में गिरा।

(७) धन का दुरुपयोग-सदुपयोग कर्त्ता की बुद्धि पर निर्भर करता है।

(८) धन से अन्नदान, भूमिदान, शिक्षादान, कुआं, तालाब, आराम आदि निर्माण सत्कार्य भी हो सकते हैं। और शराब, व्यभिचार, हिंसा, अस्त्र शस्त्र निर्माण आदि दुष्कार्य भी हो सकते हैं। जिनके पास धन हो, उन्हें सात्विक बुद्धि से धन का सदुपयोग करना चाहिए। धन सहज ही बुद्धि बिगाड़ता है फिर प्रथम से ही बिगड़ी बुद्धि हो तो तब तो कहना ही क्या है।

(९) जिनके पास धन अधिक है, वह अधिक सुखी है इस भ्रम को त्याग दो। वरं जिसके पास जितना धन अधिक है उतनी ही उसके मन में अभाव की भावना अधिक है। जितनी ही अभाव की अनुभूति अधिक है उतना ही दुःख अधिक है। अवश्य ही धन हीन व्यक्ति के दुःख का स्वरूप दूसरा होता है और बड़े धनी के दुःख का दूसरा; पर जहां जितनी ही कामना की आग बढ़ी हुई होगी, उतना ही ताप-जलन अधिक होगी। यह निश्चय है।

(१०) धन को कभी अनावश्यक महत्व मत दो-बटोरने में भी और दान करने में भी। धन से ही दान, सत्कर्म वा सेवा होगी, यह धारणा ठीक नहीं। सच्चे दान, सत्कर्म और सेवा में मन के भाव की महत्ता है, धन की कदापि नहीं। महिमा त्याग की है, धन की नहीं।

(११) धन को गरीबों की सेवा में लगाओ।

(१२) किसी को सताने वा तंग करने में जो मनुष्य धन का उपयोग करता है, उसके लिए तो धन वह अभिशाप है और उसे भयङ्कर नारकीय यन्त्रणा प्राप्त कराने में प्रधान कारण होता है।

(१३) धन को सेवा-परायण बनाना चाहिए भोग परायण नहीं।

(१४) जो धन केवल संग्रह करने के लिए ही आता है, वह तो जैसे गढ़े में एकत्र हुआ बिना बहता जल सड़ कर गन्दगी फैलाता है। वैसे ही मनुष्य के मन को अत्यन्त

गन्दा कर डालता है और जैसे गढ़े का पानी सड़कर सूख जाता है वैसे ही वह धन भी गन्दगी फैलाकर अन्त में सूख जाता है। सूखे जल की जमीन में दरारें पड़ जाती हैं, वैसे ही यह सूखा धन भी हृदय को विदीर्ण कर डालता है।

(१५) जो धन अन्यायमार्ग से नहीं आता, अपने हक का और अपनी मेहनत की सच्ची कमाई का आता है, वही धन धर्म में सहायक होता है।

(१६) छल, छद्म, अन्याय और असत्य के आश्रय से जो धन आता है, वह तो पाप बुद्धि पैदा करता है। और उस पाप ही बढ़ाता है।

(१७) धन पाकर मनुष्य को सौभाग्य प्राप्त हुआ है या दुर्भाग्य, इसका ज्ञान धन के व्यवहार से लगता है।

(१८) यदि धन धर्म में सहायक है तो वह मनुष्य के लिए सौभाग्य है और यदि पाप में सहायक है तो दुर्भाग्य है।

(१९) याद रक्खो! धन का होना ही सौभाग्य का चिन्ह नहीं है।

(२०) याद रक्खो! धन मनुष्य की बुद्धि के अनुसार सुख सुविधा के लिये है, उसे परेशान करने के लिए नहीं। जिस धन से मनुष्य एक दूसरे की भलाई करता है, वही धन सार्थक है। धन को मनुष्य का सेवक बन कर रहना चाहिए। स्वामी बनकर कदापि नहीं।

(२१) धन संसार निर्वाह के लिए आवश्यक है, परन्तु उसको इतना आदर कभी मत दो कि जिसमें वह इष्ट देव या भगवान् के आसन पर अधिकार कर ले।

(२२) धन का गौरव उसके पर पीड़ा निवारणार्थ किये जाने वाले विसर्जन में है, न कि अनावश्यक संग्रह में। धन का यथा योग्य सदुपयोग करो। उसके द्वारा सुयोग्य पात्र की पूजा करो परन्तु धन की पूजा कभी न करो।

(२३) हक का कमाओ, हक का खाओ और शुद्ध हक का ही सदा सेवन करो। दूसरे धन को भयानक विष समझो।

(२४) दूसरे का हक मार कर धन कमाने की कल्पना करना भी बड़ा पाप है।

(२५) व्यवहार करते समय भगवान को याद रखना चाहिये।

(२६) जिसके साथ व्यवहार किया जाय, अपना स्वार्थ त्याग कर उसके हित की दृष्टि से किया जाय।

(२७) दूसरों के सच्चे गुणों का तो वर्णन किया जाय, पर अवगुणों की चर्चा न की जाय। इस प्रकार आचरण करने से व्यवहार का भी सुधार होता है और सब के साथ प्रेम भी बढ़ता है।

(२८) मनुष्य मिथ्याज्ञान के कारण दुःखी रहता है। अन्यथा वह आनन्द स्वरूप है, वह अपने आपको स्वयं दुःखी मान बैठा है, इसीलिये वह दुःखी है अन्यथा उसके पास दुःख का क्या काम। अपनी बुद्धि के समुचित उपयोग द्वारा वह सदैव दुःख भावना से निर्लिप्त रह सकता है।

(२९) यदि हमारे मन का भयरूपी अन्धकार दूर हो जाय तो हमारे लिए विश्व का पाप रूपी दुःख समुदाय भी समाप्त हो जाय। यदि हमारा मन उज्ज्वल एवं प्रसन्न बन सके तो विश्व भी आनन्द के सागर में अवगाहन करता हुआ दिखायी देने लगे।

(३०) स्वाधीन अन्तःकरण वाला पुरुष रागद्वेष रहित अपने बस में की हुई इन्द्रियों के द्वारा विषयों में विचरता हुआ प्रसाद-प्रसन्नता को प्राप्त होता है। इस दैवी आनन्द से समस्त सांसारिक दुःखों का नाश हो जाता है। सांसारिक भोग से क्रमशः वैराग्य प्राप्त कर वाह्य सुख दुःखों की अपेक्षा कर अपने प्रकाश मय अन्तःकरण में ही ब्रह्म चिन्तन करने से शान्ति प्राप्त होती है। ऐसे ही ब्रह्मनिष्ठ साधक ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्म निर्वाण प्राप्त करते हैं। हृदय से अज्ञान रूपी ग्रन्थि का कट जाना ही मोक्ष है।

सतसंग का प्रभाव

[लेखक—श्री किशोरीलालजी मेहरां]

मनुष्य को सतसंग करना चाहिये। मनुष्य को पांच चोरों ने अपने भयानक पंजों में पकड़ रखा है। यह चोर काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार हैं। जिस तरह हो हाथ पैर मार कर किसी सूरत इन को दूर करना चाहिये और यह सब तब हो सकता है जब सतसंग करें। एक समय एक ग्राम में २ मित्र रहते थे तिनका नाम राम और शाम था एक दिन राम ने शाम को कहा—शाम आज अमुक ग्राम में ऐक गनिका आई है बहुत अच्छा गाती और नाचती है। हमारे संग चलोगे तब शाम ने कहा—ना भाई आज तो अमुक ग्राम में एक संत महात्मा आये हैं मैं तो वहां जाउँगा। चलो तुमे भी साथ ले चलूँ तब राम ने कहा - ना भाई मैं नहीं जाता क्या पड़ा है यह साधू संतों के पास। शाम—अच्छा जैसी तुमारी मर्जी मैं तो संत समागम में जाऊंगा तब दोनों ने अपना-अपना रास्ता लिया। गडधुलो का टैम था दोनों को रास्ते में रात पड़ गई। जब राम रास्ते में जा रहा था तो रास्ते में कोई भारी गठड़ी से ठोकर लगी देखता है। यह तो मोहरों की थैली है; उस ने थेली उठा ली तब वह उस ग्राम में पहोंचा और गनिका के यहां गया। वहां जाकर देखता है। गनिका नाच रही हैं और महेफील लगी है। यह देखकर राम भी वहां बैठ गया और जब गनिका सामने आती तो एक मोहर दे देता अब गनीका जब घुम के आती तो मोहर देता तो महेफिल में उसी का नाम होने लगा जब महफील खतम हुई तो राम घर गया उधर शाम जब संत समागम में जा रहा था तो रास्ते में पैर में एक कांटा चुभ गया। बड़ी मुशकल से वहां पहुंचा सत्संग से निपट कर घर आया तो पैर में बहुत दर्द होने लगा। जब राम ने सुना की शाम की तबीयत खराब है तो शाम के घर आया, आकर कहने लगा—

शाम मैंने पहले कहा था कि मेरे साथ चल मेरे साथ जाता तो कितना अच्छा था कि रास्ते में मालामाल हो जाता सतसंग करने का मजा पा लिया। अब शाम सोचने लगा कि तो अच्छे काम से गया था रास्तेमें कांटा चुभ गया और यह बुरे काम से गया तो धन मिल गया यह क्या कारण है।

राम ने कहा—अब तो हमारे संग जाया करोगे।

शाम—ना भाई पहले एक दफे साधूजी के पास जाकर इस बात का निश्चय किया जावे।

राम—यह भी देखले तब दोनों वहां से साधू की कुटिया में पहुंचे प्रणाम करके बैठ गये।

साधू ने आसीरवाद दिया अब शाम ने कहा-महाराज जी इस बात का फैसला करें कि मैं तो आपके यहां आ रहा था तो पैर में कांटा चुभ गया इतना दुख पाया और यह रोज गनीका के यहां जाता है और कल गया तो रास्ते में मोहरों की थैली मिली इस का क्या कारण है?

साधू ने सब बात सुनकर कहा—भक्त पूर्व जन्म में तुमने बहुत पाप किया उसके दंड स्वरूप तुमको उसी वक्त फांसी होती लेकिन इस जन्म में सतसंग के प्रभाव से सुली का कांटा बन गया और राम ने पूर्व जन्ममें अच्छे कर्म किये उसके प्रभाव से उसी वक्त राजगद्दी पाता लेकिन इस जन्म में कुकर्म में फंसा रहने से राजगद्दी के बदले मोहरों की थैली मिली। वह भी गनीका के यहां दे आया, यह सतसंग का प्रभाव है इसीसे कहा है कि किसी अच्छे का संग करो अब शाम और राम के मन का भरम चला गया दोनों रोज सतसंग करने लगे सो ऐ अधम आत्मा! सतसंग कर, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, का जप करना चाहिये।

श्री भगवन्नाम कीर्तन और गोस्वामी श्री तुलसीदासजी की रामायण का अध्ययन ही सकलार्थ दायक है

परम पूज्यपाद १००८ वीतराग ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज के सदुपदेश

(प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा)

[१] मनुष्य को किसी न किसी का दास अवश्य ही होना पड़ता है। श्रीराम समुद्र, भक्तबादल और सन्त वायु के समान हैं। मनुष्य जितना भगवान का चिन्तन करेगा उतनी ही ज्ञान की वृद्धि होगी। वह जिस रस का जितना आस्वादन करता है उसी रस द्वारा अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर भगवान में प्रविष्ट होता है। वेद ही श्रीरामायण के रूप में प्रगट हुवा है और श्री वालमीकीजी ही गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज के रूप में प्रकट हुये थे। इसकी उपासना करने से ही लोगों का कल्याण हुवा है। उत्तरी भारत में कोई भी स्त्री पुरुष, युवक, वृद्ध ऐसा न मिलेगा जिसे श्रीरामायणजी की एक आध चौपाई याद न हो। समस्त भारत में गोस्वामी तुलसीदासजी की जयन्ति मनाई जाती है। सन्तों की जयन्ति मनाने से ईश्वर का स्मरण हो जाता है। मनका प्रतिबिम्ब आकृति है। यह मनुष्य की प्रत्येक दशा को बता देती है। इसी प्रकार श्री तुलसीदासजी की आकृति से उनकी ओर ध्यान आकर्षित होगा। भगवान के ध्यान के समान ही श्री तुलसीदासजी का ध्यान भी कल्याणकारी है। श्रीरामायणजी में प्रत्येक नीति तथा भाव विद्यमान हैं। यदि शासक श्रीरामायण के अध्ययन के द्वारा शासन करे तो सम्पूर्ण प्रजा को सुखी रख सकता है। श्रीरामायण का अध्ययन ही सकलार्थ दायक है।

\+ + + + + +

[२] आज बहुत जोर शोर के साथ कहा जा रहा है कि हम रामराज्य स्थापित करेंगे और स्वराज्य से पहिले भी कहा जाता था कि हमारे स्वराज्य लेने का उद्देश्य भारत में रामराज्य स्थापन करना ही है। क्या आज भारत में रामराज्य स्थापित किया जा रहा है? श्रीरामायण पढ़ो तो मालूम होगा कि श्रीराम राज्य में तो वर्णाश्रम धर्म का पूर्णरुपेण पालन हुवा करता था और सभी अपने-अपने वर्ण आश्रम के अनुसार चलकर अपना कल्याण किया करते थे परन्तु आज तो वर्णाश्रम धर्म को विध्वंस किया जा रहा है क्या यही रामराज्य है? रामराज्य में तो मातायें पतिव्रता हुवा करती थीं परन्तु आज तो खुल्लमखुल्ला माताओं को पातिव्रत धर्म से च्युत करने और उनके लिये तलाकबिल हिन्दू कोडबिल बनवा कर उन्हें मिसिया बनाने पर उतारु हैं! क्या यही रामराज्य का आदर्श है? श्रीरामराज्य में तो जीवमात्र को सुख था और कुत्ते की बात पर भी ध्यान दिया गया था और उसे सताने वाले ब्राह्मण तक को दंड दिया गया था। परन्तु आज तो अपनी बात सुनाने सन्तों को, साधुओं तक को जेलों में ठूंस दिया जाता है। भगवान श्री रामचन्द्र बंदरों को कितना प्यार करते थे आज उन्हीं निरपराध बंदरों को गोली का शिकार बनाया जा रहा है क्या यही रामराज्य का नमूना है! अहिंसक सरकार को मछली खाने, मुर्गी पालने का—प्रचार करना और रामराज्य की दुहाई देना कदापि शोभा नहीं देता। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह श्री रामायणजी का पाठ करे और श्री रामायणजी के अनुसार अपना शास्त्रनुसार जीवन बना कर वर्णा-श्रम धर्म का पालन कर अपना कल्याण करे।

\+ + + + * + +

[३] श्री रामायणजी का पाठ करो, श्री रामायण का

पाठ करने से आपमें धर्मरक्षा करने की शक्ति आयेगी। आप जब श्री रामायण में पढ़ेंगे—

शिबि दधीचि हरिचन्द नरेसा।
सहे धर्म हित कोटि कलेसा॥

क्या आप इसके पढ़ने पर भी अपने सामने धर्म मिटता देख सकेंगे। नहीं नहीं कदापि भी नहीं धर्म पर विपत्ति देखकर आपका धर्म रक्षा करने के लिये खून अवश्य खौलेगा और कुछ न कुछ धर्म रक्षा का प्रयत्न अवश्य ही करते बनेगा। धर्म पर विपत्ति हो और धर्मरक्षक भगवान के सच्चे भक्त बैठे-बैठे देखते रहें यह हो नहीं सकता और न बैठे-बैठे देखते रहना शोभा ही देता है। भक्त कायर नहीं होते भक्त तो वीर होते हैं और अपने इष्टदेव के प्यारे धर्म की रक्षा प्राण देकर किया करते हैं। भगवान का अवतार ही जब धर्म रक्षा के लिये हुवा करता है तो फिर भला भगवान का भक्त अपने भगवान के प्यारे धर्म को मिटता कैसे देख सकेगा। यदि वह भक्त कुछ भी नहीं कर सकेगा तो भगवान से धर्म रक्षा के लिये प्रार्थना तो अवश्य ही करेगा। धर्म रक्षा के लिये श्री रामनाम की माला जपना, श्री रामजी से प्रार्थना करना यह भी बहुत बड़ा कार्य करना है। यही तो हमारा सबसे बड़ा बल है जो हमारे काम आवेगा। श्री राम जय राम जय जय राम' इसे श्री समर्थ गुरु रामदास स्वामीजी महाराज जपा करते थे और इसी के बल पर उन्होंने छत्रपति शिवाजी महाराज को खड़ा कर हिन्दू धर्म की रक्षा कराई थी।

\+ + + + + +

[४] मातायें यदि श्री रामायण का पाठ करें और माता श्री अनुसूयाजी के बताये अनुसार अपने पातिव्रत धर्म का पालन करें तो वह अपना तो कल्याण करेंगी ही साथ ही में वह अपनी इक्कीस पीढ़ी को भी तार देंगी। मातायें रामायण पढ़ेंगी और जब वह अपने लिये तलाक बिल, हिन्दू कोड बिल बनाने की बात सुनेंगी तो क्या वह इसे अपना घोर अपमान न समझेंगी और इसका घोर विरोध करने के लिये चण्डी का रूप धारण न करेंगी? आज श्री भगवन्नाम कीर्तन और श्री रामायणजी का पाठ न करने के कारण ही हमारी यह दीन हीन दशा हो रही है। श्री रामायण के अनुसार चलने से ही देशोत्थान होगा नहीं तो अब पतन अवश्यम्भावी है। सबको नित्य प्रति रामायण का पाठ करना चाहिये और नित्य—

'श्री राम जय राम जय जय राम'

का कीर्तन करना चाहिये यही कल्याण का मार्ग है।

अवकाश

(लेखक—श्री० सतीशचन्द्र शर्मा "सन्तोषी")

शैशव विताया खेल कूद में लगा के मन, अब भी उस जीवन को जग में तरसाते हैं।
यौवन बिताया धन काम की पिपासा में, डूबे हुये हैं किन्तु मन में न अघाते हैं।
वृद्ध हुये फिर भी न छोड़ सके, माया मोह, स्वार्थ की सरिता में कैसे बहे जाते हैं।
कहा जो उनसे 'सन्तोषी' हरि पूजा को, तो खिन्न मन बोले अवकाश कहाँ पाते हैं।

श्री भगवन्नाम कीर्तन, श्रीगंगा-स्नान, और श्रीगीताजी का पाठ ही हमारा कल्याण करेगा

परमपूज्यपाद १००८ श्री स्वामी महामण्डलेश्वर श्री नृसिंहगिरिजी महाराज के सदुपदेश

[प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा]

भारत के सुप्रसिद्ध श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य १००८ महामण्डलेश्वर पूज्यपाद श्री स्वामी श्री नृसिंहगिरीजी महाराज बड़े ही विख्यात सन्त हैं। यहाँ पर आपके कुछ सदुपदेश दिये जाते हैं। इसमें जो भी गलती हो वह हमारी ही समझनी चाहिये पूज्यपाद महामण्डलेश्वरजी महाराज की नहीं।

[१]

जहाँ पर श्री रागद्वेष है वहाँ पर फिर भला शाँति का क्या काम ? रागद्वेष वाले मनुष्य को कभी भी शाँति नहीं मिलती इसलिये रागद्वेष से बचते रहना चाहिये इसी में भलाई है।

\+ + + + + +

[२]

प्रश्न — महाराजजी स्त्री का क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर—स्त्रियों को चाहिये कि वह अपने पतिव्रत धर्म का पालन करें। इसी में उनका कल्याण है, यही उनके लिये सबसे बड़ी चीज़ है।

\+ + + + + +

[३]

प्रश्न—महाराजजी क्या स्त्रियों को ॐ का अधिकार है या नहीं ?

उत्तर—स्त्रियों को ॐ का अधिकार नहीं है शास्त्र निषेध करता है।

प्रश्न—क्या ब्राह्मण क्षत्री वैश्य ॐ बोल सकते हैं ?

उत्तर—हाँ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य ॐ बोल सकते हैं।

प्रश्न – क्या ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य ॐ जप भी सकते हैं ?

उत्तर—नहीं जप नहीं सकते। हाँ मन्त्र के साथ लगाकर जप सकते हैं जैसे कि ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ नमः शिवाय आदि। खाली ॐ नहीं जप सकते। गृहस्थियों को अधिकार नहीं है सन्यासी को ही अधिकार है।

प्रश्न—महाराजजी श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज का कहना था कि यदि स्त्री ॐ जपती है या बोलती है तो नर्क में जायेगी क्या यह ठीक है ?

उत्तर—यह तो वह बिलकुल ठीक कहते हैं। आजकल पहली बातों को कोई मानता ही नहीं जो जी में आता है सो ही करते हैं इसी से आज हमारी अवनति हो रही है।

प्रश्न—स्त्री गायत्री जप सकती है या नहीं जप सकती ?

उत्तर—गायत्री जप से स्त्री को उलटा पुण्य की जगह पाप होता है इसीलिये स्त्री को कभी भी गायत्री का जप नहीं करना चाहिये हाँ श्री भगवन्नाम जप कीर्त्तन करना चाहिये इसी में उनका हित है, कल्याण है।

\+ + + + + +

[४]

धर्म की रक्षा करना राजाओं के ही आधीन हुवा करती है। यदि राजा धर्मात्मा होता है तो वह धर्म की रक्षा करता है। आजकल राजा धर्मात्मा नहीं है इसीलिये आज कल धर्म की रक्षा नहीं हो रही है। आजकल सभी हमारे

सनातन धर्म को मेटने पर तुले हुये हैं। बहुत से तो आज सनातन धर्मी बनकर सनातन धर्म को मेटने में लगे हुये हैं यह कितना बुरा हो रहा है? कोई सच्चा सनातन धर्मी होगा जो अपने धर्म पर दृढ़ होगा, नहीं फिसल रहे हैं।

\+ + + + + +

[५]

अच्छी चीज को देखने से पुण्य की उत्पत्ति होगी और बुरी चीज को देखने से पाप की उत्पत्ति होगी। जैसे कि यदि तुम अपने नेत्रों से श्रीयमुनाजी महारानी को देखोगे तो तुम्हें पुण्य की उत्पत्ति होगी और यदि तुम नेत्रों से किसी नग्न स्त्री को देखोगे तो पाप की उत्पत्ति होगी इसलिये अच्छी चीजों कोही देखना चाहिये जिससे पुण्य की उत्पत्ति हो और पापों से बचें।

\+ + + + + +

[६]

यह संसार असत्य है, झूँठा है कल्पित है। इसमें यदि कोई सत्य वस्तु है तो वह एक मात्र सत्य वस्तु परमात्मा है उसी की प्राप्ति की कोशिश करना चाहिये।

\+ + + + + +

[७]

इसलिये कल्याण के लिये तीन चीजें हैं। (१) श्रीभगवन्नाम, (२) श्री गंगा (३) श्री गीता। श्रीभगवन्नाम का कीर्तन से कल्याण होगा, श्रीगंगा का स्नान, पूजन, आराधन करने से भी कल्याण होगा और श्रीगीताजी के पाठ करने से भी कल्याण होगा। इसलिये श्रीभगवन्नाम कीर्तन करो, श्रीगंगा का स्नान करो, श्रीगीताजी का पाठ करो बेड़ा पार है।

—:❀ श्री भगवन्नाम जप कराइये ❀:—

श्री वृन्दावन में लगभग ८०० गरीब माइयां प्रति दिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घन्टे परम मंगलमय श्री भगवन्नाम जप एवं संकीर्तन करती हैं। इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र व पैसों की सहायता दी जाती है। एक माई प्रति दिन एक लाख श्री भगवन्नाम जप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुग में संसार सागर से पार उतरने का एक मात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम जप करना ही शास्त्रों में वर्णित है। सभी महानुभावों को स्वयं अधिक से अधिक भगवन्नाम जप करने की चेष्टा करनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओर से गरीब माइयों द्वारा श्री भगवन्नाम जप कराना चाहें वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रम में लगभग ८०० गरीब माइयाँ आती हैं। जिनमें से इस समय ५०० माइयाँ दानदाताओं की ओर से भजन कर रही हैं। बाकी माइयों से भजन कराने के लिये हम सभी सज्जनों से निवेदन करते हैं कि अपनी अपनी श्रद्धा व प्रेम अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने माह के लिए आप चाहें अवश्य भजन कराइयेगा एवं अपने इष्ट मित्रों को भी भजन कराने के लिये प्रोत्साहित कीजियेगा।

एक माई को नित्य प्रति साढ़े चार आने की सहायता दी जाती है। इस हिसाब से एक माह का ८।≡) और एक वर्ष का १०१।) खर्च लगता है। पत्र व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजने का पताः—

मन्त्री, श्री भगवान भजनाश्रम मु० पोस्ट, वृन्दावन (यू० पी०)

"विनय पत्रिका" में वैष्णव भक्ति का प्रकरण

(ले०—श्री० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी एम. ए. साहित्य-रत्न)
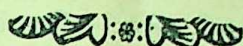
अनन्त शक्ति-सौन्दर्य समन्वित अनन्तशील की प्रतिष्ठा करके गोस्वामीजी को पूर्ण आशा होती है कि उसका आभास पाकर पूरी मनुष्यता को पहुंचा हुआ हृदय अवश्य ही द्रवीभूत होगा"।

सुनि सीतापति शील स्वभाव,

मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

. चरम महत्व के भव्य मनुष्य आद्य रूप के सम्मुख भव विह्वल भक्त हृदय के बीच जो भाव तरंगें उठती हैं, उन्हीं की माला यह "विनय पत्रिका" है, महत्व और भाव तरंगों की स्थिति परस्पर बिम्ब प्रतिबिम्ब समझनी चाहिए। कलियुग द्वारा अत्यन्त पीड़ित होने पर भगवान के सम्मुख उपस्थित किया जाने वाला यह एक प्रकार का आवेदन पत्र है, कलियुग की शिकायत सी है। इसका सरनामा लम्बा चौड़ा, मुसलमानी ढंग का है, यह भगवान राम के सम्मुख उपस्थित होने के पूर्व ७ द्वारों से प्रविष्ट होती है, प्रत्येक द्वार पर एक द्वारपाल विराजमान है। प्रत्येक द्वारपाल की स्तुति सम्बन्धी पद है। यथा।

गणेश, सूर्य, शिव : १२ पद, १ द्वारपाल के नाते तथा ११ एकादश रुद्र के नाते :

दुर्गा, गंगा और यमुना।

इस द्वार के भीतर दो वन दिखाई देते हैं। १. सीधी ओर आनन्दवन है जिसके अधिष्ठाता श्री शंकरजी हैं। यह है मुक्ति क्षेत्र काशी (२) दूसरा बांई ओर है चित्रवन। इसके अधिष्ठता हैं श्री हनुमान। यह है भगवान की नित्य लीला का प्रमोदकानन। सातवें द्वार पर, चित्रवन में, श्री हनूमानजी विराजमान हैं।

एक पद द्वारपाल के नाते है, तथा ११ पद एकादश रुद्र के नाते हैं।

इसके बाद "राज भवन" में पहुंचते हैं। वहां पर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और माता जानकी हैं। तब जाकर कहीं भगवान राम के सम्मुख पहुंच पाते हैं। अन्त में पद २७९ में यह कह कर कि।

\+ \+ \+

मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की परी।

रघुनाथ सही है, ग्रन्थ का उपसंहार कर दिया गया है। वैष्णव मत के सातों अंग इसमें उपलब्ध हैं यथा।

१ दीनता—अपनेको तुच्छ समझना। समस्त असफलताओं का स्वयं ही उत्तरदायी होना। पद संख्या ९२, १२२, १४८, १५६, व १८६।

२. मान मर्षता—सब प्रकार के अभिमान का ध्वंस करके केवल अपने इष्टदेव की कृपा पर अवलम्बित रहना. पद संख्या ९४,९५,९६.

३. भय दर्शन—जीव को भय दिखाकर राम के सम्मुख करना, पद संख्या १८,२६,६६,६७.

४. भर्त्सना—मन को डाटना पद संख्या ९०,१९८, १९९,२००,२०१, व २०२.

५. आश्वासन—इष्टदेव के गुणों पर विश्वास रख कर मन को धैर्य बंधाना पद संख्या ९६,९७,९८,९९,१००, १२०, व १३७.

६. मनोराज्य—विद्यामय बड़े बड़े मन्सूबे बांधना और उनकी पूर्ति के लिए इष्टदेव से विनती करना। पद संख्या १३८,१७२,२११,२१८,२३४,२६९,२७०.

७. विचारणा— दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन तथा उनकी कठिनाई दिखाकर मत को भक्ति की ओर लाना पद संख्या १११,११५,१२३,१३६,१६७,१८६, २२०, २२१. इसी प्रकार इसमें वैष्णव मत के अनुसार शरणागति के छओं नियम स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किए गए हैं. देखिये.

१. अनुकूल का संकल्प अनुकूल गुणों को धारण करने का दृढ़ निश्चय ताकि इष्टदेव रीझकर कृपा कर दें, पद संख्या १३,२२,२४,६३,१०४,१०५,१२७,२०४,२०६.

२. प्रतिकूल का वर्णन प्रतिकूल गुणों का त्याग पद संख्या १७४,१९८,१९९.

३. इष्टदेव अवश्य ही रक्षा करेंगे, ऐसा विश्वास पद संख्या १३०,१५२,१६४,१७३,२१३,२३६.

४ गोप्तृत्व का वर्णन प्रभू के गुणों का स्मरण. पद संख्या ९९,१६७,१४४,१ ०,२६४.

५. आत्म निक्षेप तन मन व कर्म से अपने आप को इष्ट देव पर वार देना पद संख्या १०३,१०४,१८७,२६३.

६ कार्पण्य अपने अवगुण कह कर शरण की भिक्षा मांगना पद संख्या १४३,१८५,१८७,२३४.

इस प्रकार विनय पत्रिका में शरणागति के नियमों का भी समुचित निर्वाह है अतः यह वैष्णव का एक सांगोपांग क्रमबद्ध ग्रन्थ है।

यहां पर यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि पत्रिका में भी गोस्वामीजी ने शंकर के अद्वैत को ही नाया है। साथ ही उसका इस प्रकार समन्वय किया कि उसमें विशिष्टाद्वैतवादी तो क्या द्वैत तथा मध्य वलम्बी भी अपना मत ढूंढ सकते हैं और ठीक क्योंकि माया रूप में जड़ को चाहे कुछ कहलो शंकराचार्यजी का इससे कोई विरोध नहीं है। ब्रह्म के भाग ईश्वर, जीव और जगत: जड़: माया के कारण आते हैं अस्तु।

राज दरबार की नीति पद्धति का पूरा पूरा करते हुए गोस्वामीजी भगवान राम के मुख से निर्णय भी सुनवा देते हैं कि सत्य है सुधि में हूं लही यही भगवान विषयक प्रेम प्रकर्ष, भक्ति का सबसे फल है।

—:०:—

—: भजन :—

(लेखक—श्री० धनेश्वर झा वैद्य B. A. विद्यालंकार कूच विहार)

रे मन राम राम तू बोल । जीवन के अनमोल सुबोल ॥

बंधन बाधा विघ्न बिपुल कर्क शक पार ले खोल ।
भंजन कर निज कर बंदीपन ले स्वतंत्रता मोल ॥

बेटी-बेटी प्रिय पति पति ममता मत ले मोल ।
पंच तत्त्वकी भंगुर काया फिर वींटा है गोल ॥

चार दिवस के चक्र समोप म चलयो—वनका बोल ।
झरजायेगा फूल पलास का होगा क्या मन तोल ॥

धन, जन, तन बल का गौरव है मग माया का गोल ।
मत रख 'बंधु' अक्ष पर पत्थर शूल फूल पथ डोल ॥

* झूला *

(रचयिता—पं० श्रीगोविन्ददास 'सन्त' धर्म शास्त्री)

[१]

झूला झूलत युगल किशोर ।
नंद नँदन वृषभानु दुलारी, भक्तन के चित चोर ॥
यमुनाकूल कदम्ब की डरियाँ, पावन परम सुठौर ।
मलयाचल चन्दन को झूला, सुन्दर रेशम डोर ॥
प्रेम मगन ह्वै सखियां झुलावत, विनय करैं कर जोर ।
'सन्त' सदा भज राधा माधव, जेहि विधि चन्द्र चकोर ॥

[२]

झूलत श्यामा श्याम हिंडोले ।
अरस परस गल बहियाँ डारे, मधुर-मधुर कछु बोले ॥
ललिता और विशाखा आदिक, बचन कहत अनमोले ।
चरन कमल के करत सुहावन, सुन्दर रव रमझोले ॥
दृश्य मनोहर युगल छवि को, लखि सुख जात न तोले ।
'सन्त' सदा भज राधा माधव, भव भय दूरहि डोले ॥

श्री भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देने वाले एवं मा[illegible] भजन कराने वाले एवं मासिक चन्दा एवं वार्षिक सहायता देने वाले सज्जनों की नामावली

५१) श्री० सीतारामजी श्रीकिशनजी आगरा
३१) " छीतरमलजी रामदयालजी "
३१) " साधूरामजी कालीचरन "
३३) " राधादेवीजी "
२१) " बनवारीलाल कासीराम "
१८।।।) " खुशीरामजी श्रीगोपालजी "
१८।।।) " बन्शीधरजी प्रेमसुखदासजी "
११) " अदीरामजी हीरालालजी "
११) " बाबूलालजी विशम्भरनाथजी "
११) " नारायणदासजी सूरजभानजी "
११) " गयाप्रसाद रतनलाल "
११) " किशनसाहजी छाजूरामजी "
६'=) " द्वारकादास एण्ड कम्पनी "
५) " घनश्यामदासजी कालीचरन "
१००) " हीरालालजी विट्ठलदासजी अमरावती
२५) " छीतोबाई अहमदाबाद
२०) " रामचन्दजी देशाई "
१०) " जी० के० अग्रवाल इटावा
२०२।।) " हनुमानदासजी वामला कलकत्ता
१०१।) " विश्म्भरदयालजी "
१०१) " दुर्गादत्तजी सर्राफ "
८४।= " मातूरामजी डालमिया "
२५।-) " छगनलालजी राठी "
८।।) " पूरनमलजी सर्राफ "
२१) " भीखमचन्दजी करनपुर
२१) " रघुनाथरायजी मंगलचन्द "
२१) " श्रीरामजी अयोध्या प्रसादजी "
२१) " नानूरामजी भानीरामजी "
१६।।।=) " हुकमचन्द आसकरनजी "
१६।।।=) " गिरधारीलाल सूरजरतनजी "

१५) श्री० मूलरायजी संतरामजी करनपुर
११) " हुक्मचन्दजी आसकरनजी करनपुर मण्डी
११) " मोहनलालजी चिरन्जीलाल "
११) " गिरधारीलालजी सूरजरतनजी "
११) " कामर्सियल कम्पनी "
११) " श्रीकृष्ण ट्रेडिंग कम्पनी "
८।≡) " भंवरलालजी श्रीगोपालजी "
८।≡) " विरधीचन्दजी मेवारामजी "
८।≡) " राधाकिशनजी रामकिशनजी "
८।≡) " जीवनरामजी सारड़ा "
८।≡) " रामेश्वरदासजी "
८।≡) " वीदमलजी विस्वानाथजी "
८।≡) " चांदनमलजी विहाणी "
७) " गनपतरायजी बृजकिशोर "
५) " ज्योतीप्रसादजी मदनलाल "
५) " सोहनलालजी मेहता "
५) " संतोक चन्दजी सेठीया "
१०१।) " कालीचरनजी पोद्दार कानपु[illegible]
८।≡) " हरीरामजी वेरीवाला "
२०) " रघुनाथजी सूरजकरनजी कारन[illegible]
१०) " हरीकिशनजी शिवप्रतापजी "
५) " हरेकृष्णजी किसनगं[illegible]
३००) " सूरजमलजी बाबूलालजी ट्रस्ट खु[illegible]
२५।-) " किशनलालजी तोदी गोदी[illegible]
११) " सूरजमलजी "
८।≡) " जैनारायण कन्हैयालाल "
११) " श्रीकिशनजी सरावगी गया
८।≡) " रामदयाल श्रीरामजी चौ[illegible]
८।≡) " शंकर भगतजी

राशि		नाम	स्थान
७६।।।)	श्री०	जीवन कुंवरजी	जोधपुर
८।≋)	"	गौरीशंकरजी कोठारी	जैतसर
८।≋)	"	जगनसिंहजी ठाकुर	"
१५)	"	गीताबाईजी	जलपाईगुडी
५)	"	जगमोहनलालजी	आनसा
२५१)	"	गोपीकिशनजी	तुम्सर
१०११)	"	नृसिंहदासजी	"
१०११)	"	अशोककुमारजी जैपुरिया	"
५०।।=)	"	रामकिशनजी रामनाथ	जैपुरिया
१०११)	"	गोवर्धनदासजी	तनसुखिया
२५।-)	"	कैसोरामजी केडिया	तुसरा
१३५०)	"	मुरलीधरजी श्यामसुन्दरजी	देहली
८४।=)	"	भोलूरामजी श्यामलालजी	"
२५।-)	"	किशनलालजी सर्राफ	"
२०)	"	हरीप्रसादजी मुरादाबादवाला	"
१६।।।=)	"	राधाकिशनजी डालमिया	"
१०)	"	परमानन्दजी बद्रीदासजी	दरभंगा
८।≋)	"	कोलेश्वर राउत बीन	धूबड़ी
१०११)	"	रुकमनीदेवीजी पोद्दार	नागपुर
१०११)	"	बन्शीधरजी शारड़ा	"
८८)	"	गुप्तदान	"
५१)	"	भारमलजी बन्शीलालजी	"
५१)	"	जेठाभाईजी रामदासजी	"
५१)	"	भीकूलालजी सारदा	"
२५)	"	विरधीचन्दजी	"
२५)	"	बालमुकन्दजी पोद्दार	"
२५)	"	मूलचन्दजी	"
२५)	"	उमीयाशंकर भाई नारायणजी	"
२५)	"	बनवारीलालजी अग्रवाल	"
२५)	"	भागीरथमलजी मूलचन्दजी	"
२१)	"	चिरन्जीलालजी बिशम्भरदयालजी	नागपुर
२१)	"	रामप्रसादजी मथुरादास	"
२१)	"	राधाकिशनजी किशनलाल	"
२१)	"	ठाकुरदासजी चन्द्रभानजी	"
२१)	"	मोतीलालजी राधाकिशनजी	"
२१)	श्री	विजय लक्ष्मी स्टोर	"
२१)	"	गिरधारीलाल रामानन्दजी	नागपुर
२१)	"	गोविन्दरामजी सूरजमल	"
२१)	"	जयनारायणजी जुगलकिशोर	"
११)	"	शिवनारायणजी किशनलाल	"
११)	"	मदनगोपालजी शारदा	"
११)	"	तुलसीरामजी सतानन्दजी	"
११)	"	कन्हैयालालजी ज्वारीलाल	"
११)	"	गुलाबचन्दजी कावरा	"
११)	"	सूरजकरनजी बालमुकन्दजी	"
११)	"	झूमरमलजी रामवल्लभजी	"
११)	"	शिवभगवानजी श्यामसुन्दरजी	"
११)	"	शिवभगवानजी	"
८।≋)	"	बद्रीनारायणजी नथूमलजी	"
८।≋)	"	केशरदेवजी सर्राफ	"
८।≋)	"	छगनलालजी भंवर	"
८।≋)	"	चन्द्राशर्मारजी	"
८।≋)	"	देवीदासजी चुन्नीलालजी	"
८।≋)	"	रामनिवासजी रामकुंवारजी	"
८।≋)	"	गुप्तदान	"
८।≋)	"	रतनलालजी	"
८।≋)	"	हरीरामजी खेतान	"
५)	"	रामनिवासजी वासुदेव	नरेना
५०)	"	मथुरादास तुलसीरामजी	पुखिया
५)	"	बच्चूलालजी नरबदाप्रसाद	पेन्डरा
१०११)	"	गंगादेवीजी पोद्दार	बम्बई
२५)	"	मनुलालजी जेष्ठालालजी	"
२५)	"	हीरालालजी मानिकलालजी	"
८।≋)	"	प्रभाशंकरजी याग्निक	"
१५)	"	मोहनलालजी चोधरी	बरदवान
८।≋)	"	रामकुंवार गजानन्दजी	"
१६।।।=)	"	नारायणदासजी हरगोविन्दजी	बरगढ़
८।≋)	"	सीतारामजी केशवदेवजी	बिलहा
५)	"	इन्द्रजीतसिंहजी हैडमास्टर	विजयनगर

५१) श्री० वासुदेव जी गोयन्का वृन्दावन
२२) " गंगाराम जी "
५०) " मोहनलाल जी लडिया भाटेपाड़ी
२५।-) " बद्रीदासजी मदनलालजी भिवानी
५) " लक्ष्मीनारायणजी केदारनाथ भीलवाड़ा
५) " गजाधरजी मानसिंहका "
१०१) " रामसरनदासजी मेरठ
८।≡) " राजमुनिजी शिवप्रतापजी सेठी "
३३।।।) " मांगीलालजी दरगढ मदनगंज
८।≡) " राधाकिशनजी कनकनी "
२५) " रामदयालजी रघुनाथजी रायसिंहनगर
२५) " रामचन्दजी गिरधारीलालजी "
२५) " रतनलालजी मोतीलालजी "
२५) " गंगाविशनजी चाननमलजी "
२५) " जीवनरामजी मंगतरायजी "
२१) " मंगलचन्दजी थानमलजी "
२१) " पूरनमलजी ओंकारमलजी "
११) " बालमुकन्द धर्मचन्द "
११) " रामजीलालजी बनवारीलाल "
११) " सन्तलालजी गजानन्दजी "
८।≡) " भोगरामजी "
८।≡) " रामसरनदास रामकुवार "
८।≡) " फकीरचन्द रामलाल "
८।≡) " हनुमानमलजी "
८।≡) " बीकानेर जमीदार कम्पनी "
८।≡) " रायसिंह नगर इन्डस्ट्रीज Co. "
८।≡) " शिवरतनजी रामलालजी "
८।≡) " शिवकरनदास हीरालालजी "
८।≡) " हंसराजजी दिलसुखरायजी "
८।≡) " पूरनचन्द वीरेन्दकुमार "
८।≡) " सुरेन्द्रसिंह गुरवचनसिंह "
८।≡) " हरीकिशन रतनलाल "
८।≡) प० भावरमलजी रायसिंह नगर

८।≡) श्री गजानन्दजी शर्मा रायसिंह नगर
८।≡) " गुप्तदान "
११४॥≡) " प्रभूदयालजी लश्कर
११२॥) " नन्दरामजी नारायणदासजी "
११२॥) " ललताप्रसाद नन्दकिशोर "
२८=) " श्री निवासजी "
११) " बालमुकन्दजी "
५१) " पुरुषोत्तमदासजी श्रीनिवासजी घाहेटी लातुर
१०१।) " भगवानदेईजी सरदारशहर
१०१।) " महादेवीजी चमडीया "
१०१।) " गनपतरायजी सिन्हानिया "
६८।।।) " महावीरप्रसादजी चिरन्जीलालजी सरदार शहर
११६) " फुटकर सज्जनों से प्राप्त सादुल शहर
३१) " जोधारामजी किशोरीलाल "
२५) " सरदारमलजी मोटारामजी "
२१) " गोरधनदासजी रामजीदासजी "
११) " उदैरामजी मनीरामजी "
११) " रामदयालजी देवीशाहजी "
११) " सुखलालजी हीरालालजी "
११) " हुकमचन्दजी गौरीशंकरजी "
८।≡) " हरदेवदासजी मुसद्दीलालजी "
८।≡) " पीरदानजी प्रेमचन्दजी "
८।≡) " जयनारायणजी जयदयालजी "
८।≡) " तोलारामजी शुभकरनजी "
८।≡) " बनारसीदासजी सूरजभानजी "
८।≡) " बालकिशनजी मुरलीधरजी "
५) " सेडमलजी सन्तरामजी "
५) " रामदयालजी भानीरामजी "
५) " अरजुनदासजी गोरधनसिंहजी "
५) " धनसुखदासजी आसारामजी "
१०१।) " रामकिशनदासजी श्रीगंगानगर
८।≡) " दीवानचन्दजी "
८।≡) " गुप्तदान

२४।–)	श्री	मोहनलालजी भीमजी	शेगाँव
१६॥।=)	"	हनुमानदासजी हरलालका	"
८।≡)	"	डालमचन्दजी महेश्वरी	सुजानगढ़
३३॥।)	"	स्वर्गीय शान्तीदेवीजी	हाथरस
२५)	"	रमेशचन्दजी महावीर प्रसाद	"
५)	"	गंगाप्रसादजी तिवारी	हट्टा
८५)	"	फुटकर सज्जनों से प्राप्त	
७३२२।) योग			

श्री० भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम का आय-व्यय का हिसाब महीना १ का
मिती वैसाख सुदी ६ सं० २००६ से जेठ सुदी८ सं० २००६ तक का

आय	
२१३२=)	सहायता प्राप्त
४६२०=)	माई भजन प्राप्त
३८४–)	मासिक चन्दा प्राप्त
१८६)	वार्षिक चन्दा प्राप्त
७३२२।)	

व्यय	
७७८७॥।–)।	भजन करने वाली माईयों में पैसा बाँटा
१४०)	वृद्ध माइयों तथा अपाज माइयों को दीना।
५६८)	वेतन कर्मचारियों को तथा काम करने वाली माईयों को दीना
४०)	कार्यकर्त्ताओं की रसोई खर्चा का लागा
६७)	पोस्टेज लागा
३८०॥≡)	फुटकर खर्चा का लागा
९०१३॥।)।	

नोट—इस माह में व्यय से आय बहुत कम है। रुपये १६९१॥)। की कमी रही है। अतः सभी दानी सज्जनों से प्रार्थना है। कि इस मंगलमय कार्य में अपनी श्रद्धानुसार सहायता दान करने की कृपा करें।

सहायता भेजने का पता:—मन्त्री श्री० भगवान भजनाश्रम पो० वृन्दावन (मथुरा)

❀ सूचना ❀

वृन्दावन के किसी मन्दिर व स्थानों से "भजनाश्रम" का कोई सम्बन्ध नहीं है। भजनाश्रम के लिये अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी बीमा या मनीआर्डर द्वारा मंत्री श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा। प्रत्येक दान की रसीद श्री भगवान-भजनाश्रम के नाम की छपी हुई दाता महानुभाव की सेवा में भेजी जाती है।

—: सहायता :—

लगभग ८०० गरीब माइयों की सहायता कीजिये। अपनी श्रद्धानुसार अन्न, वस्त्र आदि वितरण कराइये। जानकारी के लिये पत्र व्यवहार कीजिये। —मन्त्री, भगवान-भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)

हिसाब १ श्रीभगवान भजनाश्रम एवं बृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देनेवाले एवं माई भजन, मासिकचन्दा, सालाना चन्दा देने वाले सज्जनों की नामावली

१६॥।=) श्री गंगासहायजी चौकचन्दजी ओझर
८।≡) " लीलाधरजी "
८।≡) " घीसालालजी शिवजी "
८।≡) " वीनराजजी जानकीलालजी "
८।≡) " गोपीनाथ जीलक्ष्मीनारायणजी ,,
८।≡) " कन्हैयालालजी रुड़मलजी "
८।≡) " बाबूलालजी झापड़ूजी "
८।≡) " गघुलालजी " "
८।≡) " भगवानदासजी ,, "
८।≡) " दशरथजी " "
५०) " सरस्वतीदेवीजी अलीपुरद्वार
२५।-) " गुलाबचन्दजी पलोड़ अजमेर
२०) " रामचन्दजी देसाई अहमदाबाद
८।≡) " दामोदरदासजी केडीया अमरावती
८।≡) " डूगरसीदासजी कन्हैयालालजी ,,
१०) " जी० के० अग्रवाल इटावा
१०२) " वैजनाथजी केशवदेवजी कलकत्ता
१०१॥) " वैजनाथजी परसरामजी जपुरिया,,
१०१॥) " साविश्रीबाईजी मौर "
१०१।) " मुन्नादेवी "
१६॥।=) " कन्हैयालालजी मून्दरा "
२५।) " रामनिवासजी कुमरिया "
२०) " श्यामलालजी रावत "
५०) " मगनजी कन्डारी
२५) " रामनारायणजी सोडानी कानपुर
८।≡) " हरीरामजी विरदमलजी "
२०) " सूरजकरनजी रघुनाथजी कारन्जा
१०) " हरेकृष्ण दासजी शिवप्रतापजी ,,
२५।-) " छबीलदासजी जीवनजी कोभाकोड़
८।≡) " जमुनाबाई जी करकेड़ी
१००) " हनुमानदासजी विलारूरायजी खामगांव

२१) श्री सुन्नालालजी काडा खेजरोली
६।।।) " दाऊरामजी "
८४।=) " राधाकिशन एण्ड कम्पनी गौहाटी
२०२॥) " वैजनाथजी सारडा चाईबासा
५०) " भागीरथमलजी देवकीप्रसादजी जलपाईगुड़ी
२५।-) " हनुमानदासजी जुगसलाई
११) " मोहनचन्दजी मोहनलालजी जामागुड़ीहाट
५००) " ज्योतीप्रसादजी जगन्नाथजी देहली
१२१।) " राजकिशोरजी टन्डन "
१६।।।=) " राधाकिशनजी डालमिया "
८।≡) " रघुवन्शी किशोरजी "
१०१।) " तनसुखरामजी हरीरामजी दलसिंहपाड़ा
६।=) " उदेरामजी गंगारामजी देशनोक
६।)॥ " फुटकर प्राप्त "
८।≡) " बद्रीप्रसादजी परमानन्दजी दरभंगा
३०३।।।) " सावलरामजी गोयन्का धामनगांव
५०) " रामचन्दजी भगवानदासजी घूवड़ी
८।≡) " कैलाश्वर राउत दीनजो "
१६।।।=) " नारायणदासजी हजारीमलजी डूगरगढ़
१०१।) " पुरनमलजी सारडा नागपुर
२१) " हुकमचन्दजी सारडा "
११) " उमरावसिंहजी भालोटिया "
११) " हनुमानदास रनछोड़दास "
११) " एक सज्जन "
८।≡) " रामेश्वरलालजी मौर "
२५।-) " लक्ष्मीचन्द भेरूदानजी नापासर
१८।।।) " गिरधारीलाल प्रभुदयाल "
१८।।) " नकतमलजी भगवानदासजी "

६।=)	श्री	तकतमलजी हनुमानदासजी	"
६।=)	"	रामबक्सजी गोविंदरामजी	"
६।=)	"	मानिकलालजी सत्यनारायण	"
१५)	"	पन्नालालजी शिवप्रतापजी	"
४१≡)	"	फुटकर लोगों से प्राप्त	नोखा
१५)	"	नृसिंहसिंहजी पूनमचन्दजी	"
११)	"	हुकमचन्दजी पूरनमलजी	"
११)	"	राधाकिशनजी भँवरलालजी	"
११)	"	गनेशनारायणजी बद्रीदासजी	"
५)	श्री	बद्रीनारायणजी	नागौर
१०५)	"	कपिलदेवजी पान्डे	पान्डू
११)	"	तनसुखरायजी रामधनजी	पद्मपुर
५)	"	विश्वनाथ गौरीशंकरजी	"
५)	"	जेठमलजी काशीरामजी	"
२०)	"	भोलानाथजी विशम्भरलालजी	पेंडरा
११२॥)	"	रामकिशनदासजी	बीकानेर
११२॥)	"	जुगलकिशोरजी गणेशीलालजी	"
५१)	"	जेठमलजी तुलसीरामजी	"
२१)	"	पीरदानजी प्रेमचन्दजी	"
१००)	"	एक सज्जन	वरधा
१०१।)	"	श्रीरामजी	"
२००)	"	आसानन्दजी गोपालदासजी	बंगलौर
१०१।)	"	वासुदेवजी हरलालका को मांजी	बंबई
८॥)	"	पुरुषोत्तमदासजी बन्शीधरजी	"
५१)	"	अन्तूरामजी रामेश्वरजी	
			बिलासपुर
४८)	"	नानगरामजी मुरलीधरजी	"
८।≡)	"	गुप्तदान	"
१००)	"	विसुदासजी	बाढ़
३०)	"	लक्ष्मीबहनजी	वृन्दावन
१६॥।=)	"	नारायणदासजी हरगोविन्दजी	वरगढ़
११)	"	नन्दकिशोरजी खन्डेलवाल	
			बुधवाराहाट
८।≡)	"	शंकरलालजी चौधरी	बीदासर
८।≡)	"	स्वामीदयालजी कटियार	भिन्ड
८।≡)	"	इन्द्राकुमारीजी	"
८॥-)	श्री	जगदीश प्रसादजी अग्रवाल	
			भाटापारा
१०१।)	"	खमानचन्दजी मुरारका	मेदनीपुर
१६॥।=)	"	शान्तिबाईजी मुरारका	"
२५।-)	"	पूसारामजी कस्तूरचन्दजी	
			मूर्तीजापुर
२५।-)	"	बक्तावरीबाईजी	"
२५।-)	"	रामनिवासजी दरगढ	मदनगंज
८।≡)	"	राधाकिशन जी काकाणी	"
२५॥)	"	पातोरामजी अग्रवाल	मकरापाड़ा
१०१।)	"	किशनलालजी सिन्घनिया	
			रायपुर
२५।-)	"	जीवनलालजी सिन्घानिया	"
१०१।)	"	रामनिवासजी सारड़ा	राजनांदगांव
१०१।)	"	नृसिंहदासजी चिनघटिया	"
१०१।)	"	किशोरीलालजी भिवानी वाले	"
८।≡)	"	बलभद्रजी अग्रवाल	"
८।≡)	"	महारामदासजी हजारीमलजी	"
१०१।)	"	गजानन्दजी बछराजजी	रतनगढ़
२०)	"	कोडामलजी लक्ष्मीनारायण	लाडनूं
१०१।)	"	मोतीलालजी छोगमलजी	
			श्री गंगानगर
५१)	"	गिरधारीलालजी राधाकिशनजी	"
५१)	"	हजारीमलजी सुगनचन्दजी	"
५१)	"	गनेशीलालजी नानकचंदजी	"
५१)	"	भूदरमलजी रतीरामजी	"
५१)	"	मेघराजजी सोहनलालजी	"
११)	"	दुरगादत्तजी प्यारेलालजी	"
८।≡)	"	दुरगादत्तजी टेकचन्दजी	"
८।≡)	"	वतोरायजी "	"
१६॥।=)	"	लूनकरनजी झगर	"
६०)	"	गोपालचन्दजी कासीरामजी	
			सगरीयामन्डी
२१)	"	प्रयागदासजी राधाकिशनजी	"
२१)	"	जेठमलजी हन्सारिया	"

२१)	श्री	राजस्थान मिलस सगरीयामयान्डी	२५।-)	श्री	बजरंगलालजी नानकचन्दजी
१८॥।)	"	रामगोपालजी चाननमलजी "	१६॥ =)	"	हनुमानदासजी हरलालका
१८॥)	"	रामसायजी सीतारामजी "	२६॥)	"	दौलतरामजी सार्दुल
११)	"	शिवनारायण नागरमलजी "	२५।-)	"	गोपीलालजी राधेलालजी
११)	"	नोरनारायजी मुन्डेवाला "	१०)	"	माधोरामजी
११)	"	चतुरभुजजी मोतीलालजी "	२१)	"	मथुरादासजी मोहता
६।=)	"	तोलारामजी रामप्रतापजी "	२१)	"	एक सज्जन
५)	"	पूरनमलजी रामजीदासजी "	२१)	"	बन्सीलालजी अमरचन्दजी
५)	"	गनेशनारायणजी जगदीशप्रसादजी ,,	११)	"	रामेश्वरलालजी तिवारी
२५ -)	"	जगनलालजी खत्री सूरतगढ	११)	"	कन्हैयालालजी गनेशीलाल
२५।-)	"	पृथ्वीराजजी द्वारकाप्रसाद "	११)	"	रामकरनजी हनुमानबक्सजी
२५।-)	"	गंगाबिशनजी वाहेती "	११)	"	भीखमचन्दजी लखमीचन्दजी
१६॥।=)	"	जानकीदासजी " "	८ ≡)	"	मनसारामजी मनोहरदासजी
१६॥।=)	"	सरदारीसिंहजी ,, "	८।≡)	"	सुजानसिंहजी मेहता
१३॥ =)	"	बद्रीनारायणजी सोहनलालजी ,,	५)	"	अग्रवाल स्टोर्स
१६॥।=)	"	जुहारमलजी झावरमलजी "	१००)	,,	घनस्यामदासजी हरसुखलालजी
१६॥।=)	"	हीरालालजी सोगानी "	२१)	"	नानूरामजी भानीरामजी
११)	"	सूरजमलजी सरावगी "	११)	"	जुहारमलजी खेमचन्दजी
८।≡)	श्री०	कासीरामजी सोमानी सूरतगढ	६।=)	"	मोतीरामजी रतनचन्दजी
८।≡)	"	राधाकिशनजी झवर "	५)	"	घमण्डीरामजी बजाज
८।≡)	"	लक्ष्मीनारायण भगवानदासजी"	५)	"	हजारीमलजी मोदी
१०१।)	,,	विशालचन्दजी ठाकुरदासजी सन्धवा	८।≡)	"	सुगनचन्दजी अग्रवाल हिन्दूमल
७५॥≡)	"	शंकरजी घीसारामजी "	३६५≡)॥	"	फुटकर लोगों से प्राप्त
			६६७७॥-)		योग

श्रीभगवान भजनाश्रम एवंवृन्दावन भजनाश्रम का आय-व्यय का हिसाब मही १ का मिती जेठ सुदी ९ सं० २००९ से आसाढ़ सुदी ८ सं० २००९ तक का

आय		व्यय	
२३२६॥।)॥	सहायता प्राप्त	७७९३≡)॥।	भजन करने वाली माईयां ने पैसा बांटा
४१७८॥।)॥	माई भजन की बाबत प्राप्त	१३०)	वृद्ध माईयों तथा अपाज माइयों को बांटा
१२९)	वार्षिक सहायता प्राप्त	४५८)	वेतन कर्मचारियों को तथा काम करने वाली माईयों को दीनी
४०)	मासिक चन्दा प्राप्त	४०)	कार्यकर्त्ताओं की रसोई खर्चा लागा
		२०)	पोस्टेज खर्चा
		४६७।-)।	खुदरा खर्चा का लागा
६६७७॥-)		८९३८॥-)	

नोटः-इस माह में व्यय से आय बहुत कम हुई। रुपये २२६१) की कमी रही है। अतः सभी दानी सज्जनों से प्रार्थना है कि इस मंगलमय कार्य में अपनी श्रद्धानुसार सहायता दान करने की कृपा करें।

सहायता भेजनेका पताः— मन्त्री श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन

॥ श्री हरिः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन

[श्री भगवन्नाम प्रचारक प्रमुख धार्मिक एवं पारमार्थिक संस्था]

[एक्ट २१ आफ़ १८६० द्वारा रजिस्टर्ड]

का

संक्षिप्त विवरण

श्री वृन्दावन धाम हिन्दुओं का प्रधान तीर्थ है, इस स्थल की पावन रज में लोट लोट कर भगवान श्रीकृष्ण ने इसे पूजनीय बना दिया है और इसी कारण समस्त भारत से लाखों हिन्दू श्रद्धा और प्रेम से यहां की यात्रा करते हैं। साथ ही बहुत सी वृद्ध एवं अनाथ विधवायें भी अपना शेष जीवन बृजधाम में व्यतीत करने के पावन उद्देश्य से अपना घर बार तथा सगे सम्बन्धी छोड़कर यहां आ जाती हैं। भारत इस समय एक निर्धन देश है और यहां यह सम्भव नहीं है कि हज़ारों की संख्या में आई हुई इन विधवाओं और वृद्धाओं के सम्बन्धी उनके भरण पोषण के लिये उनको प्रति मास सहायता भेज सकें और इसी कारण यह विधवायें वृन्दावन में अपनी उदर पूर्ति के लिये प्रत्येक यात्री से गिड़-गिड़ा कर भिक्षा माँगती हुई दृष्टिगोचर होती थीं। अब से ३३ वर्ष पूर्व इस दुरावस्था को देख कर अनेक सद्गृहस्थ तथा धनी मानी धार्मिक सज्जनों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने सम्वत् १९७३ में 'श्री वृन्दावन भजनाश्रम' नाम से एक परमोपयोगी संस्था की स्थापना की। और उसे चलाने के लिए एक सुदृढ़ ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। ट्रस्टियों के निर्णय से यह विधान बनाया गया कि भजनाश्रम में नित्य जितनी माइयां आवें उनसे ४॥ घन्टे प्रातः तथा ४॥ घन्टे सायं श्री भगवद् कीर्तन कराया जाय और उन्हें उदर पोषण के लिये अन्न एवं पैसे दिये जावें। भजनाश्रम स्थापित होते ही नित्य प्रति सैंकड़ों की संख्या में गरीब तथा आश्रयहीन वृद्धायें तथा विधवायें आश्रम में आने लगीं और परम पावन, कल्याणकारी श्री भगवन्नाम कीर्तन करते हुए अपना मानव जीवन सफल करने लगीं। इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होते देख कर एक द्वितीय संस्था 'श्री भगवान भजनाश्रम' के नाम से सम्वत् १९९० में स्थापित की गई तथा उसका भी ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। इन दोनों भजनाश्रमों का प्रबन्ध योग्य ट्रस्टियों द्वारा सुचारु रूप से हो रहा है।

इस समय इन आश्रमों में लगभग ८०० अनाथ गरीब स्त्रियां जिनमें अधिकांश निराश्रित विधवायें हैं नित्य प्रति अनन्त भगवद्नामों का कीर्तन करती हुई भगवद्-भजन में लीन रहती हैं। अष्ट प्रहर कीर्तन भी अलग होता है। इन भजन करने वाली माइयों को सवेरे ४॥ घन्टे भजन करने पर =)॥ ढाई आना अन्न के वास्ते दिया जाता है। तथा शाम को ४॥ घन्टे भजन करने पर =) दो आना ऊपर खर्च के वास्ते दिया जाता है और समय-समय पर आवश्यकतानुसार वस्त्र भी दिये जाते हैं और २०० के लगभग अपाहज वृद्धायें जो आश्रम में आने के अयोग्य हैं अपने घरों में बैठी हुई भगवद् भजन किया करती हैं जिन्हें भी कुछ सहायता दी जाती है।

भारत व्यापी तेजी के कारण इस समय इन संस्थाओं का खर्च लगभग रु० ८५००) आठ हजार पांच सौ रु० प्रति मास हो गया है जब कि स्थायी आय, मासिक चन्दा तथा ब्याज केवल ३०००) रुपये मासिक है। आज हम इसी कमी की पूर्ति करने के लिये आप जैसे धनी मानी तथा धार्मिक महानुभाव की सेवा में अपील करते हुए निवेदन करते हैं कि आपकी अतुल दानराशि में से अधिक से अधिक भाग इन संस्थाओं को प्राप्त होना चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा आपके धन का सदुपयोग का विश्वास दिलाते हुए हम यह भी बता देना चाहते हैं कि इन संस्थाओं में दिये गये आपके धन से अनेक प्राणियों का उदर पोषण होगा एवं कोटि-कोटि भगवन्नाम जप के पुण्य प्रताप का आपको पूर्ण लाभ होगा।

हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमान्‌जी हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान देंगे और श्रद्धानुसार संस्थाओं की सहायता करते हुए जनता-जनार्दन की अधिकाधिक सेवा के पावन अनुष्ठान में सहायक बनेंगे।

प्रार्थी:—जानकीदास पाटोदिया,
प्रधान

नोट—१. प्रार्थना है कि आप जब वृजधाम की यात्रा को पधारें तो इन आश्रमों में पधार कर यहाँ के कार्यों का अवलोकन करें, एवं आश्रम के लिये जो दान करना चाहें वह भजनाश्रम में ही देवें अन्य किसी मन्दिर में नहीं।

२. अपने एवं अन्य नगर के धर्म प्रेमी दानदाताओं के कुछ नाम व पते भी हमें भेजने की कृपा करें जिससे हम उनसे संस्थाओं की सहायता के लिये अपील कर सकें।

३. बीमा या मनीआर्डर द्वारा सहायता मन्त्री श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन [मथुरा] तथा मन्त्री श्री वृन्दावन भजनाश्रम, पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से भेजिये।

४. कृपया सहायता एक मुश्त भेजिये अथवा मासिक या वार्षिक सहायता भेजने की कृपा कीजियेगा।

५. आश्रम की ओर से ऐसा प्रबन्ध भी है कि जो दानी महानुभाव अपनी ओर से भजन कराना चाहते हों वह ८।≡) रु.मासिक प्रत्येक माई के हिसाब से भेजकर जितनी माइयों द्वारा चाहें भजन करा सकते हैं। प्रतिदिन ६ घण्टे में हर एक माई लगभग एक लाख भगवन्नाम उच्चारण कर सकती है।

६. वृन्दावन के किसी मन्दिर, मठ व अन्य स्थानों से भजनाश्रम का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिये भजनाश्रम के लिये किसी अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी मनीआर्डर या बीमा द्वारा श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं व समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

श्री भगवन्नाम जप कराइये

श्री वृन्दावन में लगभग ८५० गरीब माइयां प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घन्टे परम मंगलमय श्री भगवन्नाम जप एवं संकीर्तन करती हैं। इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र व पैसों की सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्री भगवन्नाम जप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

कलियुग में संसार सागर से पार उतरने का एक मात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम जप करना ही शास्त्रों में वर्णित है। सभी महानुभावों को स्वयं अधिक से अधिक भगवन्नाम जप करने की चेष्टा करनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओर से गरीब माइयों द्वारा श्री भगवन्नाम जप कराना चाहें वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रम में लगभग ८५० गरीब माइयां आती हैं। जिनमें से इस समय लगभग ५०० माइयां दानदाताओं की ओर से भजन कर रही हैं। बाकी माइयों से भजन कराने के लिये हम सभी सज्जनों से निवेदन करते हैं कि अपनी-अपनी श्रद्धा व प्रेम अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने माह के लिये आप चाहें अवश्य भजन कराइयेगा एवं अपने इष्ट मित्रों को भी भजन कराने के लिये प्रोत्साहित कीजियेगा।

एक माई को नित्य प्रति साढे चार आने की सहायता दी जाती है। इस हिसाब से एक माह का ८।≈) और एक वर्ष का १०१।) खर्च लगता है। पत्र व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजने का पताः–

मन्त्री–भगवान भजनाश्रम
मु० पोस्ट, वृन्दावन।

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित व गौरगोपाल मानहिंजीका संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान भजनाश्रम वृन्दावन [मथुरा] से प्रकाशित

अंक १०

विषय सूची

आसोज संवत् २००६

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक :- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) : संस्थाओं से १॥≡) एक प्रति का ≡)

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन अक्टूबर सन् १९५२ | अंक १०

रसिया

[रचयिताः—श्री रामलाल]

मनमोहन मुरलीवारे की लीला ललित कही ना जाय ।
आगम-निगम-पुरान गये थकि, सारद-नारद-सेस गये वकि ।
पार न पायो व्यास बापुरो महिमा रही-सही बतराय ।। लीला ।।
वृन्दावन की ग्वारिन-गोपी, धरि-धरि सीस प्रेम की टोपी ।
गुलचा मारि गवावैं गारी, मीठी-मीठी दही चखाय ।। लीला ।।
अलबेलो है ब्रज को छैला, रार मचावै फोरै घैला ।
पनघट की यह दान-चातुरी रहि-रहि तनिक सही ना जाय ।। लीला ।।
जमुना-तीर, कदम की छैयां, राधा नाचे गहि-गहि बैयां ।
बंसीबटकी रास-माधुरी अनुपम अनत लही ना जाय ।। लीला ।।
चिरजीवे जसुमति को लाला, नन्दराय को कारो ग्वाला ।
'रसिक लाल' बिन मोरमुकुट गति जगमें और चही ना जाय ।। लीला ।।

युगल प्रेम विनोद

(लेखकः— श्री० अवधकिशोरदासजी श्री वैष्णव "प्रेमनिधि")

प्रेमीजनों का वचन

प्रेममूर्ति, प्रिय, प्रेमधन, प्रेमविवश, रसमोद।
"प्रेमनिधी" प्रियतम-प्रिया, बरसत प्रेम-विनोद॥
मदमाती इठलाती प्रिया, गज-गामिनि रसखानि।
हँसि कोकिल-कलवादिनी, मधुर प्रेम बरसानि।

श्रीप्रियाजू का वचन

हे रसिक रसलम्पट श्रीराजराजेश्वरकुमारजू! आपके एक-एक प्रेमरसभरित विलक्षण गुण-गणों का अवलोकन कर मेरा मन तो आपके प्रेम पाश में और भी अधिकाधिक बँधता ही जाता है। हे जग मंगल मनमोहन प्यारेजू! आप मुझ पर जब स्वयं अनन्त प्यार करते हैं तब तो छबीले छुयलकी मदन मद हारिणी मधुर दिव्य मूर्ति नयनों में श्याम तारा बनकर बस जाती है, हृदय आनन्द समुद्र में मग्न हो जाता है, और सबकुछ भूलकर मन प्रेम समाधि में तल्लीन होजाता है प्राणेश्वरजू!

मोको अतिप्यारे लगे, प्रियतम राजिवनैन।
मनमोहन मन में बसो, सदा सरस सुख दैन॥
'प्रेमनिधी' प्रति छनहि छन, बाढत प्रेम तरङ्ग।
मृदु मुसकन युत निरखि मुख, चढत चौगुनो रङ्ग॥

श्री प्रियतम प्रभुजी का वचनः—

हे रूप राशि, चन्द्रवदनि श्री राजकिशोरीजू! मैं तो स्वयं आपके गुणों की थाह नहीं पा रहा हूं। कभी-कभी जब आप प्रेम प्रणय वश मान कर बैठती हो उस समय आपके क्षणिक वियोग से भी मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है और मैं अपने तथा आपके गुण दोषों को विचारने लगता हूँ तब आपमें ही समस्त ललित परम कलित गुणों का भंडार देखकर मैं अपने दोषों का निवारण करने स्वयं आपको मनाने की चेष्टा करने लगता हूँ। हे हंस-गामिनि प्रिय भामिनिजू! मेरे प्रेमी भक्त जन भी आपकी सेवा पाकर कृतार्थ होजाते हैं तथा आपकी कृपा के बलपर मुझको वश कर लेने में परम समर्थ हो जाते हैं।

प्राणप्रिया हृदयेश्वरी, करुणा रूप निधान।
'प्रेमनिधी' तरसत रहौं, करहु प्रेमरस दान॥

श्री प्रियाजू का वचन—

हे रस वर्धन, मदन मद मर्दनहारे श्री प्राण वल्लभ जू! आपके सरस रसीले गुण गरबीले वचन सुनकर हृदय में परमानन्द होता है। आपके कोटि काम कमनीय परम रमणीय रसविग्रह का अवलोकन कर कौन ऐसा हतभागी होगा जो तन, मन निछावर करने में देर लगावेगा? हे चतुर चित चोर श्री कौशल किशोरजू! आपके सरस सोहावन मुनिमन लुभावन पावन चरणारविन्दों में प्रेम करने वाले परम धन्य हैं और कृतार्थ हैं, हे प्राणेश्वर! विभूषणों से विभूषित आपकी छटा का वर्णन तो कौन कर सकता है परन्तु विभूषणादि विहीन भी आपका अतिशय सौन्दर्य धाम परम ललाम श्रीअंग ही समस्त अवयव अंग कर प्रेम का सरस रंग चढाने में चूकता नहीं है। कितने प्रेमीजन तो आपके स्वाभाविक श्रीविग्रह की माधुरी में ही मस्त रहते हैं, जिसके "रोम रोम पर कोटि कोटि शत काम" निछावर होते हैं उनका अंग संग पाकर विभूषण ही स्वयं विभूषित होते हैं रसनिधानजू!

श्री प्रियतमजू का वचन

हे दिव्य प्रेम रस वर्षिणी, रसिक मन आकर्षिणी, श्री हृदयेश्वरी जू! आपकी स्नेहसानी सुखदानी प्रिय वाणी सुनकर मेरा मन तो और भी आपके प्रेम पंक में गड़ गया है, जिसको निकालना

अब अशक्य ही नहीं असम्भव भी है। आपकी हृदय हारिणी प्रेम प्रचारिणी हँसी, आपका सुषमा निधान मोद मंगल धाम श्री मुखारबिन्द, आपकी भव भीति हारिणी मनोन्माद कारिणी मञ्जुल वाणी, आपकी हंस और गजगति को तुच्छ करने वाली मधुर मतवाली चाल, एवं स्नेह सरस, प्रेम रस घन आनन्द निधान शोभा सुखधाम, आपका शील स्वभाव मेरा मन वशीभूत करने में क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं करता है यही कारण है कि मैं अखिल ब्रह्माण्ड का नायक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होते हुए भी आपके वशीभूत रहता हूँ प्राणवल्लभाजू ।

प्राणवल्लभा प्रिय लगो, मोको राजदुलारि ।
प्रेमनिधि जोगवत रहौं, तन-मन सरवस वारि ॥

श्रीस्वामिनीजू का वचन—

हे कमलदल लोचन, सकल सोच विमोचन श्री प्राणेश्वरजू ! आपकी रमणीय इस मूर्ति का दर्शन कर राक्षस भी मुग्ध हो गये, और 'वध लायक नहिं पुरुष अनूपा' कह कर युद्ध से विराम चाहने लगे। महामूढ मन्दमति राक्षसी भी वरण करने को उत्सुक हो गई, तब उत्तम नायकायें आपकी चेरी बन जायें इसमें आश्चर्य ही क्या है? अरण्यवासी ऋषि भी आपके कान्ताभाव में मग्न होगये तथा मिथिला की कुलवधुएं भी मनसा वरण करके कृतार्थ हुईं उन्हें कृतार्थ करने के लिये ही तो आपने गोपीवल्लभ नाम धराया है हृदयभूषणजू ! हे हृदयधन, सकल तापशमन सुकुमार श्रीराजकुमारजू ! मैं तो आप पर इतनी आसक्त हो गई हूं कि श्रीचन्द्रकलादि सखियों के सिखाने पर केलि-कौतुक रस सम्पादन के हेतु भी भलीभांति मान नहीं कर पाती हूँ, आपके परम सुन्दर गुणमन्दिर श्रीमुखारविन्द को निरखते ही सब रोष प्रेमरस वर्धक ही बन जाता है प्रेमार्णव प्राणेश्वरजू !

रसलम्पट राजीवदल लोचन परमविशाल ।
निरखत रहे न धीरता प्रेमनिधी रसवाल ॥

श्रीप्राणेश्वरजू का वचन—

हे श्रीप्राणेश्वरीजू ! मुझे तो राक्षसों के तथा इन प्रेमीजनों के प्रेम को मर्यादामार्ग का संरक्षण करने के लिये तोड़ना ही पड़ा, परन्तु आपने तो त्रिजटा की सजातीय राक्षसीजनों को भी अभय दान कर कृतार्थ किया है। मैं तो आपके चरणनुपूर की एक ही झनकार पर बिना मोल बिक गया और उसी समय "मनसाविश्व विजय" पत्र भी आपको समर्पण कर दिया, स्वरूप संग्राम में आपकी होड लगाने का कभी नाम भी लेना भूल गया, मैं तो जब आपके ललित श्रीवदनारविन्द को देखता हूँ तब चकोर की भाँति निहारते ही रह जाता हूँ।

श्रीप्रियाजू का वचन—

हे सुन्दरभुज विशाल, प्रणतपाल, नृपतिलाल, श्रीप्राणप्यारेजू ! आपके दृगविशाल और सुन्दर तिलक भाल तो जादूगरी के पिटारे ही हैं, जिस पर आप चितवन की चोट चला देते हैं वह उसी क्षण लोट पोट हुए बिना रह ही नहीं सकता है, आपके जुलुफन के जाल में फँसकर कौन चतुर-चूडामणि अपने को सम्हाल सकता है? और हृदय की वनमाल तो प्रेमियों को निहाल ही कर देती है, ललित कण्ठ का मुक्ताहार तो मानों मदन का अवतार ही है! कटिका पीताम्बर तो सबका आडंबर अपने में ही लीन कर देता है, चरणनूपुर प्रेमरस पूरने में कभी चूकते ही नहीं है, मन्द मुस्कान तो प्रेमीजनों का प्राण ही है, आपके कृपा, दया, अनुकम्पा, स्नेह, सौहार्द, लावण्य, सौन्दर्य माधुर्यादि गुणगणागार का तो कौन पार पा सकता है श्रीहृदयेश्वरजू !

प्रियतम प्रिय गुणगण विमल, रूप अनूप ललाम ।
प्रेमनिधी जहरत सदा, सुमिरत सुन्दर श्याम ॥

श्री प्रियतमजू का वचन—

हे मञ्जु-भाषिणी, ललित विलासिनी, प्रेम रस प्रकाशिनी श्री प्राणप्रियतमाजू ! आपके भाव रस

भीने रंगीले हृदय का ही यह चिद्विलास है, मैं तो स्वयं आपकी चंद्रिका की चोखी चटक में तथा झूमक की लटक में झूल रहा हूँ, ललित भाल विशाल पर निहाल हूँ तथा ललित गोल कपोल पर बिनमोल बिका जाता हूँ, मन्द मुसकान तो अधर रस पान के लिये व्याकुल बना देती है तथा कलित कल ग्रीवा तो सुख की सीमा ही तोड़ देती है, सारी की सुन्दर किनारी तो मुझे विचित्र अनारी बनाना सीख गई है तथा नूपुर का नाद तो हठवाद छुड़ाकर आपके सुकोमल चरण कमलों में मन को भ्रमर की भांति लुब्ध बना देता है फिर मन कहीं अन्यत्र भटकने का विचार ही त्याग देता है। आपके मनोहर श्रीमुखचन्द्र का तो नयनों को चकोर बना देने का काम ही निराला है। हे श्रीलाडिलीजू ! इस प्रकार मैं तो सर्व विध आपके सहज स्नेह रस महोदधि का मीन बन गया हूँ।

चन्द्र वदनि श्रीवल्लभा, प्रतिदिन दिव्य विलास।
करौं हरौं मन मद युत, पुरै प्रेमनिधि आस॥

श्री प्यारीजू का वचन—

हे श्री राजीवलोचन, प्रणत-भय-मोचन श्री राघवेन्द्रजू ! आप प्रेम रस प्यासे पुनीत प्रेमी पपीहों को परम आनन्द प्रदान करने के लिये ही हमारे साथ यह दिव्य सत्य सनातन चिद्विलास किया करते हैं हमारी तथा आपकी ये प्रेमलीला रस भोगी चेतनों को परम कृतार्थ करने के लिये ही है, आपको प्रेमी भक्तों के साथ हास विलास करना बहुत ही रुचता है, यही कारण है कि जनकपुर की रसभरी गारियां भी आपको वेदों के मन्त्रों से भी अधिक प्यारी लगती हैं और कोल, भिल्ल, निषादादि वन वासियों के प्रेम भीने बैन बड़े चाव से सुनते हैं। हे रघुवंशविभूषण जू ! हमारा यह प्रेम विनोद तो नित्य है, सुजनों के हृदय में आपके गुण लीला तथा स्वरूप सुख का अभ्युदय हो एतदर्थ यह प्रेम रस पूर्ण वार्तालाप पुनः किया जावगा, 'अब इन रूप रसमाती, प्रेमोन्माद से इठलाती, अनुरागिनी अनुचरियों के आनन्द वर्धनार्थ ललित लीला कीर्ति का गुण गान करने की आज्ञा प्रदान की जाय। जिसमें आपके नाम रूप लीला धाम का विशद यश श्रवण कर संसारी जीवों की प्रवाह पतित भावनायें दिव्य धाम की ओर प्रवाहित होकर जीवन का परमफल प्राप्त कर सकें।

श्री प्रियतमजू का वचन—

हे निमिवंश उजियारी श्री विदेहराज-दुलारीजू ! आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है. आप आह्लादिनी आद्या और सर्व शक्ति शिरोमणि हो, आपके द्वारा ही मेरे आनन्द का, आह्लाद का विस्तार होकर समस्त संसार प्रेम रस प्लावित होता है। मेरी सभी लीलायें केवल आपके तथा आपके अनुग्रह से अनुगृहीत भाग्य भाजन भक्तों के मनोविनोदार्थ ही हुआ करती है। हे श्रीप्राणेश्वरीजू ! आपतो नित्य निरन्तर जीवों को सुखी करने का ही शुभ सङ्कल्प किया करती हो परन्तु लीला विभूति में तो सभी प्रकार के पात्रों की आवश्यकता है। यदि सभी मेरे मुमुक्षु भक्त बन कर स्वरूपसुख को प्राप्त करलें तो आज ही भवलीला समेट लेनी पड़े। फिर भी आपकी रुचि रखने के लिये और जीवों को आपका करुणार्द्र वात्सल्य रस का सुख चखाने के लिये मैंने भक्तिप्रेम प्रधान श्रीभागवत धर्म का प्रचार संसार में किया है, जिसमें श्रीसम्प्रदायादि चारों सम्प्रदायों के आचार्य सन्तों ने संसार को मेरा स्वरूप समझाने का पूर्ण प्रयास किया है और कर रहे हैं। यह विनोद भी तदन्तर्गत भगवदीय भक्तों की भावना ही है, मेरी वार्ता में मन लगाने वालों को यह गृह संसार कभी भी बन्धन रूप नहीं होता है इसलिये यह प्रेमीजनों को परम प्रिय है। अब आप प्रेम रस भोगी परतम ईश परम संयोगी आत्माओं के सुन्दर प्रेमसंगीत का श्रवण कर उनकी सेवा स्वीकार करने की महती कृपा करें श्रीराज राजेश्वरीजू !

प्रेमीजनों का वचन

प्रेम प्रदायक रसिकवर, रसरूपा सिय जानि।
प्रेमनिधी अति प्रेम युत, कही सुधासम बानि॥
प्रियतम प्यारी कर सरस, जो यह 'प्रेम-विनोद'।
कहे-सुने समझे सुजन, पावे दिव्य प्रमोद॥

परमार्थ का तृतीय सोपान

आनन्द दायिनी भक्ति

(लेखक पं०-श्री बैजनाथजी अग्निहोत्री)

हमने पिछले एक लेख में बतलाया था कि, तपशील व्यक्ति को तप शुद्ध, पवित्र कांचनमय बना देता है।' शुद्ध स्वर्ण में मैल होजाने से उसका शुद्धत्व नष्ट हो जाता और मूल्य कम हो जाता है, पुन: शुद्ध करने के लिये उसे युक्ति से अग्नि में शोधन करना पड़ता है, तब मल भस्म होकर शुद्ध स्वर्ण बहुमूल्य युक्त हो जाता है। इसी प्रकार प्राणी वास्तव में शुद्ध आत्म तत्व ही है, किन्तु काम, क्रोधादि विषय भोगों से अन्तःकरण दूषित हो जाता है और अन्तःकरण के साथ तादात्म्य भावना करके 'मैं दुःखी हूं, मैं सुखी हूं' आदि के द्वारा अपने को अपूर्ण, बन्धनयुक्त मानता हुआ और अन्त:करण के वश होकर नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है। कभी सुख, शान्ति का दर्शन कर ही नहीं पाता, अपने स्वरूप या ईश्वर प्राप्ति की तो बात ही क्या! इसका परिणाम होता है दुःख और अनन्तकालतक नीचोच्च योनियों में भ्रमण। यदि इस परिणाम से मुक्त होना चाहता है सच्ची सुख, शान्ति, ईश्वर दर्शन या अपने स्वरूप की प्राप्ति करना चाहता है तो कामादि विकारों और इनकी आसक्ति से अन्तःकरण शुद्ध करना होगा, कामादि की आसक्ति ही अन्तःकरण का 'मल' है और इस मल का शोधन होता है--स्ववर्णाश्रमानुकूल कर्मों से, वैराग्य एवं तप से।

कर्म एवं तप के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखना परमावश्यक है कि इनके साथ उपासना भी सम्मिलित रहनी चाहिये। उपासना रहित कर्म या तप अशुभ कारक है, इसी प्रकार कर्म रहित उपासना तो उससे भी अशुभ-कारक। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ततो भूय इवेत तमोय उ विद्यायां रता:।' अर्थात् जो केवल कर्म में ही तत्पर रहते हैं, वे अदर्शनात्मक अज्ञान में प्रवेश करते हैं और जो केवल उपासना में ही रत हैं, वे तो उनसे भी अधिक अन्धकार में जाते हैं। इसीलिये शास्त्रों में कर्म और उपासना के समुच्चय का विधान है। कुछ लोग शङ्का करते हैं कि 'केवल उपासना से अधिक हानि होती है, यह बात बुद्धि संगत नहीं है।' किन्तु थोड़ा ध्यान देने पर मालूम पड़ेगा कि वास्तव में बात ऐसी ही है। कर्म शारीरिक क्रिया है और उपासना मानसिक क्रिया। शारीरिक क्रिया से मानसिक क्रिया विशेष कठिन होती है, जिन लोगों के हस्त, पादादि की क्रिया सुंसयत नहीं कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय सुसंयत नहीं, भोजन, पान शयन, आसन, वाणी आदि सभी नियमित नहीं, उनकी क्या कभी मानस क्रिया सुसंयत रूप से हो सकती है? कभी नहीं। समस्त शारीरिक क्रिया नियमित रूप से कर्म से ही होती है, अतः मानसिक क्रिया (उपासना) तभी सफल हो सकती है, जब शारीरिक क्रिया (कर्म) को भी करता रहे। केवल कर्म की निन्दा का अभिप्राय भी यही है कि यदि कर्म जड़ होगया तो उपासना साध्य उत्कृष्ट फल से वंचित रह जायेगा, अतः कर्म के साथ साथ उपासना भी करना चाहिये और उपासना के साथ-साथ कर्म भी। यही समुच्चय का अभिप्राय है। हां कर्म करते समय कर्म-प्रधान और उपासना गौण रहती है तथा उपासना करते समय उपासना प्रधान और कर्म गौण रहता है।

कर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है और उपासना या भक्ति से अन्तःकरण स्थिर होता है। अंतःकरण में तीन दोष पाये जाते हैं—आसक्ति, चंचलता और आवरण। स्वकर्म से आसक्ति का नाश, उपासना से चंचलता का निवारण और ज्ञान से आवरण का भंग होता है। कर्म को पिछले कई लेखों में बतलाया जा चुका है, इस लेख में उपासना (भक्ति) पर किंचित् विचार किया जावेगा मल या आसक्ति अंतःकरण से दूर होने पर भी अंतःकरण में चंचलता रहती ही है और चंचलता रहने के कारण अपना वास्तविक आनंद स्वरूप या ईश्वर दर्शन से प्राणी वंचित रह जाता है। जिस प्रकार तरंगित जल में प्रतिबिम्ब नहीं देखा जा सकता, उसी प्रकार चंचल अंतःकरण में भी सच्चिदानंद का दर्शन नहीं हो पाता। चंचलता दूर करने का एक मात्र उपाय है भक्ति। भक्ति से निश्चलता आती है, ईश्वर दर्शन होता है, समस्त दुःखों की निवृत्ति होती है और होती है मुक्ति।

मुख्यतया भक्ति के दो भेद किये जा सकते है—साधन और साध्य या अपरा और परा। साधन या अपरा भक्ति के मनुष्य की बुद्धि के अनुसार अनन्त भेद हो जाते हैं। प्रधान रूप से तीन भेद मान लिये गये हैं—सात्विकी, राजसी एवं तामसी। जो पुरुष हिंसा, दम्भ या मात्सर्य के उद्देश्य से भक्ति करता है तथा जो भेद दृष्टि वाला और क्रोधी होता है, वह तामस भक्त माना गया है। जो व्यक्ति विषय, यश और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में भेद दृष्टि से पूजन करता है, वह राजस भक्त है। जो व्यक्ति पापों का क्षय करने के लिये, परमात्मा को अर्पण करने के लिये और पूजन करना कर्तव्य है—इस बुद्धि से भेदभाव युक्त पूजन करता है, वह सात्विक भक्त है। इस त्रिधा सगुण भक्ति के अतिरिक्त सबसे श्रेष्ठ, परम कल्याणकारक भक्ति होती है—निर्गुण जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार भगवान् के दिव्य गुणों के, श्रवणमात्र से मनकी गति तैल धारावत अविच्छिन्न रूप से सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निर्गुण भक्ति का लक्षण है। ऐसे निष्काम और अखण्ड भक्ति वाले पुरुष सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि एवं सायुज्य मुक्ति प्राप्त होने पर भी नहीं स्वीकार करते। भगवत सेवा के लिये मुक्ति का तिरस्कार करने वाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा भक्त तीनों गुणों को पारकर भगवान के स्वरूप को ही प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त तीन प्रकार की सगुण भक्ति में तामसी और राजसी भक्ति वाले पुरुष कामना युक्त होते हैं और सात्विक भक्त होते हैं निष्काम। यह सात्विक भक्त ही कालान्तर में परा भक्ति अर्थात निर्गुण भक्ति को प्राप्त करता है। सात्विकी भक्ति के नव अंग माने गये हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्यत्व तथा समर्पण। यह सात्विकी भक्ति यद्यपि राजसी तथा तामसी भक्ति से उच्च श्रेणी की है, किन्तु पराभक्ति से निम्नकोटि की मानी गयी है, अतः इस नवधा भक्ति को 'कनिष्ठा भक्ति' भी कहते हैं। इन नौ अंगों में प्रथम 'श्रवण' भक्ति उत्पन्न होती है—सन्त, महात्माओं के सत्संग एवं सेवा से। महात्माओं से भगवान के अलौकिक गुणानुवादों का श्रवण होता है, उनसे ही यह भी ज्ञात होता है कि ब्रह्म के दो रूप हैं—एक निर्गुण, दूसरा सगुण। निर्गुण आकार रहित, सर्वव्यापी, सर्वाधिष्ठान और अपना निज रूप ही है। सगुण रूप निराकार भी है और साकार भी, अवतार, सन्त, महात्मा एवं विशेष विभूतियाँ आदि सभी ब्रह्म के सगुण रूप हैं। निर्गुण की

भक्ति मन से होती है और सगुण की मन तथा तन दोनों से। सत्संग के द्वारा निर्गुण एवं सगुण ईश्वर के गुणों को सुनना ही प्रथम भक्ति श्रवण है। ईश्वर के दिव्य चरित्रों के श्रवण से, उन चरित्रों में विशेष राग होजाना और भगवान के जन्म, कर्म एवं गुणों का बारम्बार कथन करना द्वितीय भक्ति कीर्तन है। कीर्तन से बढ़े हुये प्रेम का फल होता है—प्रत्येक समय भगवन्नाम का स्मरण। प्रथम स्मरण होता है वाणी द्वारा नामोच्चारका और द्वितीय स्मरण होता है प्रभु के नाम का हृदय में। यही स्मरण भक्ति तृतीय मानी गयी है। नाम स्मरण से बढा हुआ प्रेम और निकट पहुंच कर सेवा में परिवर्तन हो जाता है। प्रतिमा अथवा सद्‌गुरु की निष्कपट भाव से भगवत बुद्धि पूर्वक चरण कमलों की सेवा करना चतुर्थ भक्ति पाद-सेवन है। प्रथम प्रतिमादि में पाद सेवन तन द्वारा वाह्य रूप से होता है, अनन्तर अपने हृदय में इष्ट देव को स्थित जान कर मानसिक पाद पूजन होना श्रेष्ठ चतुर्थ भक्ति है। यहां एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रत्येक कार्य में भाव ही प्रधान है, कार्य नहीं। इस कारण स्थूल से सूक्ष्म की ओर अथवा वाह्य से आन्तर की ओर प्रगति करना ही वास्तविक इन नव अंगों का रहस्य है और सूक्ष्म अथवा आन्तर की ओर जाना भाव से ही हो सकता है, कार्य से नहीं। पंचम भक्ति है—अर्चन। पवित्र स्वभाव से, यम, नियमादि का पालन करता हुआ प्रभु की पूजा साङ्गोपांग करना ही अर्चन है। प्रतिमा या गुरु में पूजन करना वाह्य है और हृदय में भगवान् को स्थित कर भाव सहित पूजन करना आन्तर है। अपने अन्तः करण में भगवान् का सुन्दर भावमय मन्दिर निर्मित करके, भाव के सिंहासन में, भाव मय भगवान् को स्थापित कर भाव से ही पूजा करे। भाव मय कलश के द्वारा प्रभु का स्नान, भाव से सुन्दर वस्त्र, चन्दन, केसर आदि का तिलक लगावे, भाव के ही पुष्प, माला, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पण करे। भावपूर्वक प्रभु की अनेक प्रकार से स्तुति करे। यही भावयुक्त अर्चन पंचम भक्ति श्रेष्ठ है। स्तुति के अनन्तर प्रणाम होता है और यही वन्दन भक्ति षष्ठी है। वाह्य वन्दन प्रतिमादि में अष्टाङ्ग-युक्त अथवा दण्ड के समान करे और हृदय में स्थित भगवान् को प्रणाम मन से भावपूर्वक करे। प्रणाम से यह सूचित होता है कि मैं सेवक, दास हूं और आप स्वामी, पालक हैं, यही भाव सप्तम भक्ति दास्य का है। 'सब से सेवक धर्म कठोरा' इस दास्य भक्ति में, जिस प्रकार पतिव्रता नारी पति के वचन को कभी खण्डित नहीं करती वैसे ही भक्त भी कभी प्रभु की आज्ञा के बिना कार्य नहीं करता। चाहे वाह्य प्रतिमा या गुरु में भाव करने वाला हो अथवा अपने हृदय में। वेद शास्त्रादि को प्रभु की आज्ञा मान कर कभी इसके विपरीत कार्य न करे। प्रभु को सर्वव्यापी जानकर सदा भययुक्त रहे, कभी कुमार्ग की ओर पग न बढ़ावे। प्रभु की आज्ञा से ही समस्त कर्मों को करे और प्रभु को ही समस्त कर्म समर्पण कर दे। इस प्रकार प्रथम अंग श्रवण से दास्य पर्यन्त भक्तिमान् पुरुष में एक विचित्र परिवर्तन होजाता है। उसकी प्रत्येक चेष्टा प्रभु की आज्ञा से, प्रभु के प्रसन्नता के लिये, प्रभु के सान्निध्य में ही होती हैं। भोजन, शयन, भ्रमण आदि जो भी कुछ कार्य होते हैं, ऐसे अनन्य और निसंकोच भाव से होने लगते हैं, मानों किसी मित्र के संग होरहे हैं। भक्त कभी एक क्षण भी अपने से प्रभु को विलग नहीं मानता, सर्वकाल नित्य नूतन मित्र भावना की वृद्धि होती जाती है औरप्रभु भी ऐसे भक्त से मित्रता की भावना से ही स्फूर्ति प्रदान करते हैं। यही नवधा भक्ति का अष्टम् अंग सख्यत्व है। ऐसे अनन्य स्वामी और मित्र को भक्त तन, मन, धन, गृह, स्त्री, दास एवं अश्वादि सभी समर्पण कर देता है। इसके अतिरिक्त अपने को भी समर्पण कर देना ही नवम भक्ति

आत्म-समर्पण है। नव अंग युक्त भक्ति सम्पन्न पुरुष के लिए स्वयं भगवान का कहना है 'कि मुझ ईश्वर के लिये कर्म करने वाला और मेरे ही परायण तथा मेरा भक्त है और धन, पुत्र, स्त्री आदि में स्नेह रहित है, समस्त प्राणियों में वैरभाव से रहित ऐसा जो मेरा भक्त है, वह मुझे पाता है मत्कर्म कृन्मत्परमो मद्भक्तः संग वर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥'

इस नवधा या कनिष्ठा भक्ति सम्पन्न पुरुष को ही उत्तम परा भक्ति प्राप्त होती है, जो कि साध्य है। नवधा भक्ति से पराभक्ति की ओर जाने पर मध्य में एक स्थिति और आती है, जिसे 'प्रेम लक्षण भक्ति' कहते हैं। यह मध्यमा भक्ति भी कही जाती है। भक्त का जब मन अनन्यता से परमेश्वर में लग जाता है, तब समस्त गृह, परिवार एवं अपना देह भी विस्मरण होजाता है, उन्मत्त के समान आचरण होजाते हैं। रोमाञ्च होने लगता है, श्वास, प्रश्वास चलने लगते हैं, नेत्रों से जलधारा प्रवाहित होती रहती है। भगवान् के प्रेम रस पान से मस्त हुआ प्रेमी अब नवधा भक्ति कैसे करे? उसे न तो लोक तथा कुल की लज्जा रह जाती है और न वेद की आज्ञा ही। वह किसी भी भूत, प्रेतादि की शंका नहीं करता। किसी की नहीं सुनता, कुछ भी नहीं देखता, मुख से कोई भी बात नहीं करता, यही प्रेम लक्षणा भक्ति है। भगवान् ने इस भक्त की प्रशंसा में स्वयं कहा है कि जिसकी वाणी गद्गद और चित्त द्रवीभूत हो जाता है, जो कभी जोर-जोर से रोता है, कभी हंसता है, कभी निसंकोच होकर उच्च स्वर से गाने लगता है और कभी नाच उठता है—ऐसा मेरा भक्त त्रिलोकी को पवित्र कर देता है "वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसतिक्वचिच्च। विलज्ज उद्गायति नृत्यते चमद् भक्ति युक्ता भुवनं पुनाति ॥" इस भक्ति को अन्य कोई नहीं जान सकता। वह रात्रि दिवस परमेश्वर में आसक्त रहता है, ठगा सा दिखाई पड़ता, कुछ का कुछ कहता और कभी मौन होजाता है। इस भक्ति की ज्वलन्त प्रतीक मूर्तिमान व्रजांगनायें थीं। जिसका चित्त निरन्तर भगवान् में लगा हो भला वह सावधान कैसे रहे? उसे क्षुधा, तृष्णा और रात्रि, दिवस निद्रा भी कहां? मीन जल बिना जैसे व्याकुल रहती है, वैसे ही जिसके यह प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, दशा होजाती है। इस भक्ति का वाणी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, इसे तो वही जान सकता है, जिसे कभी यह भक्ति उत्पन्न हुई हो।

कालान्तर में प्रेम लक्षणा भक्ति का पर्यवसान होता है उत्तम पराभक्ति में। इसमें भक्त का चित्त कभी विक्षेप युक्त नहीं होता। सदा परमेश्वर समीप ही, सन्मुख ही रहते हैं, कभी एक क्षण के लिये भी वृत्ति उधर से नहीं हटती—यही पराभक्ति है, समस्त साधनों का साध्य है। जिस प्रकार नीर में फेन, बुद्बुद, तरंग, भिन्न न होकर भी भिन्न ही भासित होते हैं, वैसे ही भक्त अभिन्न होता हुआ भी रस पान करता हुआ भिन्न ही रहता है। ऐसी स्थिति में बिना श्रवण के शब्द सुनना, बिना नेत्रों के रूप देखना, जिह्वा रहित रस की प्रशंसा करना, चरण हीन नृत्य करना, हस्त रहित ताल बजाना, बिना अङ्ग के आनन्द लेना और शिर रहित नमन करना, परमात्मा से तदाकार होकर भी सेवा, सेवक भाव को स्थिर रखना ही पराभक्ति है। आतप (धूप) में मृग मरीचिका एक होते हुये भी भिन्न दिखलायी पड़ती है, उसी भाँति भक्त और भगवान् एक होते हुये भी भक्त कभी अपना दासत्व नहीं त्यागता, एक होते हुये भी एक नहीं होता, यही विशेषता पराभक्ति की है। ऐसे भक्त बिरले ही होते हैं और ये भगवान् को अतिशय प्रिय होते हैं। स्वयं भगवान् ने कहा है कि जो भक्त उत्तम श्रद्धा से मुझ परमेश्वर में मन लगाकर—मन को समाधिस्थ कर नित्य युक्त हुये मेरी उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठतम योगी हैं, यह मैं मानता हूँ। 'मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमाः मताः ॥' ऐसे भक्त समस्त प्राणियों से प्रेम करने वाले, मित्रता, दया भाव वाले, ममत्व और अहंकार से रहित, सुख, दुःख में समान, क्षमाशील, संतुष्ट, नित्य योगी, मन की वृत्तियों को वश में रखने वाले, दृढ़ निश्चयी और परमेश्वर में मन बुद्धि अर्पण किये होते हैं। इनसे संसार उद्वेग नहीं करता और वह भी संसार से उद्वेग को प्राप्त नहीं होते, वह हर्ष, अमर्ष, भय तथा उद्वेग से मुक्त रहते हैं। आत्मातिरिक्त समस्त वस्तुओं से उपेक्षा, शुद्ध, दक्ष, उदासीन, व्यथा रहित तथा समस्त आरम्भों का त्याग करने वाले होते हैं। शत्रु, मित्र और मानापमान में समान, शीतोष्ण में सम, आसक्ति रहित, मौनी, अनिकेत और स्थिर बुद्धि वाला पराभक्ति सम्पन्न भक्त भगवान् को अति प्रियहोता है। 'भक्तिमान्मे प्रियोनरः'

भक्तों के भाव

(संग्रहकर्ता—पं० श्री गोविन्ददास 'सन्त' धर्मशास्त्री)

(१)

घर तजौं वन तजौं नागर नगर तजौं,
वंशीवट तजौं काहु पै न लजि हौं।
देह तजौं गेह तजौं नेह कहो कैसे तजौं,
आज राज काज सब ऐसे साज सजि हौं॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मोको,
बावरी कहत मैं काहु ना बरजि हौं।
कहैया सुन्हैया तजौं बाप और भैया तजौं
दैया तजौं मैय्या पै कन्हैया ना तजि हौं॥

(२)

तौक पहिराओ पाँव वेडी ले भराओ गाढे,
बन्धन बन्धाओ औ खिचाओ काची खाल सौं।
विष ले पिलाओ तापे मूंठ भी चलाओ,
मझधार में डुबाओ बान्ध पाथर कमाल सौं॥
बिच्छु ले बिछाओ तापर मोहि ले सुलाओ,
फिर आग भी लगाओ बान्धि कापड़ दुशाल सौं।
गिरि ते गिराओ काले नागते डसाओ हाय,
प्रीति न छुड़ाओ गिरधारी नन्द लाल सौं॥

(३)

जमुना पुलिन कुंज गह्वर की,
कोकिल है द्रुम कूक मचाऊं।
पद पंकज प्रिय लाल मधुप है,
मधुरे मधुरे गूंज सुनाऊं॥
कुक्कुर है बन बीथिन डोलौं,
बचे सीतरसीकन के खांऊं।
ललितकिशोरी आश यहि मन,
ब्रज रज तज छिन अन्त न जांऊं॥

(४)

मानुष हौं तो वही रसखान,
बसौं मिल गोकुल ग्राम के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो।
चरौं मिलि नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौं तो वहा गिरि को
जो कियो हरि छत्र पुरंदर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं,
कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

(५)

होते जो रामचन्द्र राघव आज भारत में,
दुष्ट दुराचारी कहूँ देख हू न परते।
होते जो धर्मी युधिष्ठिर से सत्यवादी,
लंपट लबारन को कारो मुंह करते॥
होते जो लछमण और भरतजी से भैया बंधु,
वैर के करैया तो तरैया डूब मरते।
आरत है भारत पुकारत बार बार,
धर्म वीर होते तो हमारी पीर हरते।

(६)

दुर्जन दुःशाशन दुकूल गह्यो दीन बन्धु,
दीन है के द्रुपद दुलारी यों पुकारी है।
आपनो सबल छांडि ठाडे पति पारथ से,
भीष्म महा भीम ग्रीवा नीचे कर डारी है॥
अम्बर लो अम्बर पहाड़ कीन्हे शेष कवि,
भीषम करण द्रोण सभी यों विचारी है।
नारी मध्य सारी है कि सारी मध्य नारी है।
कि नारी है कि सारी है कि सारी है कि नारी है॥

(७)

सुन्दर सफेद श्याम बैंजनी हरेरी पीली,
ढेर बहुतेरे जौन गिन में न आये हैं।
खाकी मुलतानी औ प्याजी जाफरानी बहु,
धानी आसमानी आसमान लग छाये हैं॥

लाल गुलैबांसी गुलखैरीं औ गुलाबी रंग,
फालशाही काही औ बदामी दरशाये हैं।
द्रोपदी के काज व्रजराज है बजाज मानो,
लाद के जहाज पट द्वारिका से आये हैं॥

(८)

कवै आप गये थे बिसाहन बजार बीच,
कवै बोल जुलहा बिनाये दरपट से।
नन्दजू की कामरी न काहू वसुदेवजू की,
तीन हाथ पटका लपेटे रहे कट से॥
मोहन भनत यामे रावरी बड़ाई कहा,
राख लीन्ही आन बान ऐसे नटखट से।
गोपिन के लीन्हें तब चीर चोर चोर अब,
जोर जोर देन लागे द्रोपदी के पट से॥

(९)

द्रोपदी औ गणिका गज गीध,
अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम गेहनी कैसी तरी,
प्रहलाद को कैसे हरयो दुख भारो॥
काहे को सोच करे रसखान,
कहा करि है यमराज विचारो।
कौन की शंक परी है जु माखन,
चाखन हारो है राखन हारो॥

(१०)

इह घाट ते थोरिक दूर अहै,
कटिलों जल थाह दिखाइ हों जू।
परसे पग धूर तरे तरणी,
घरनी घर क्यों समुझाइ हों जू॥
तुलसी अवलम्बन और कछू,
लरिका केहि भांति जिलाइ हों जू।
वरु मारिये मोहि बिना पग धोये,
नाथ न नाव चढ़ाइ हों जू॥

(११)

जोगी थके कह जैन थके,
ऋषि तापस थाक रहे फल खाते।
न्यासी थके जो उदासी थके,
सन्यासी थके बहु फेर फिराते॥
शेष मसायक और उलायक,
थाक रहे मन में मुसकाते।
सुन्दर मौन गहो सिध साधक,
कौन कहे उसकी मुख बातें॥

सुअवसर

(संग्रहकर्ता—पं० श्री गोविन्ददास 'सन्त' धर्म-शास्त्री)

भजन

अवसर बेर बेर-नहिं आवे।
जो जाने तो करले भलाई, जन्म जन्म सुख पावे॥
धन यौवन अंजलि का पानी-जात देर नहिं लावे।
तन छूटे धन कौन काम का-काहे को कृपण कहावे॥
जाको स्नेह कृष्ण चरणन सों- झूठ कबहूँ न भावे।
सूरदास की यही बीनती-हरखि निरखि गुण गावे॥
(म० श्री सूरदासजी).

भजन

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम वचन अरु हीते॥
सहसबाहु दशवदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम हम करि धन धाम संवारे अंत चले उठ रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबहीते।
अंतहु तोहिं तजेंगे पामर तू न तजे अबहीते॥
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्याग दुरासा जीते।
बुझै कि काम अगिनी तुलसी विषय भोग अरु घीते॥
(गो० तुलसीदासजी)

दोहा

सगरी बाजी जीत के पो पै अटकी आय।
जो अबकी पो ना परी तो लख चौरासी जाय॥

रामनवमी पर रामायण का अखंड पाठ

(लेखक—पं० श्री दयाशंकरजी दुबे, एम. ए. एल. एल. बी.)
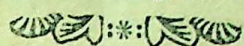
मेरा सुझाव यह है कि उस दिन भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में तुलसी कृत रामायण के अखंड पाठ का आयोजन किया जाय। इस कार्य के लिये कम से कम २० पढ़े लिखे व्यक्तियों की आवश्यकता है। इन व्यक्तियों की चार टोलियें बनायी जावे। प्रत्येक टोली में ५ व्यक्ति रहें। अखंड पाठ किसी मंदिर में या सार्वजनिक स्थान में आरम्भ किया जाय। प्रातः काल सात बजे पहली टोली रामायण पाठ आरम्भ करे। सबसे पहिले टोली का प्रधान, रामायण का पाठ आरंभ से पहली चौपाई के अंत के दोहे तक पढ़े। तब शेष चार व्यक्ति उसी को दोहरावें। इसके बाद टोली का प्रधान प्रथम दोहेसे लेकर दूसरे दोहे तक पढ़े। तब शेष चार व्यक्ति इसको दोहरावें। इसी प्रकार दो घंटे तक पाठ जारी रहे। दो घंटे समाप्त होने पर दूसरी टोली पाठ आरंभ करे। दो घंटे का समय समाप्त होने पर तीसरी टोली पाठ करे। उसके दो घंटे का समय समाप्त होने पर चौथी टोली पाठ करे। चौथी टोली द्वारा दो घन्टे का पाठ समाप्त होने पर पहली टोली अपना पाठ फिर से आरंभ करे। इसी प्रकार रामायण का पाठ तब तक जारी रहे जब तक कि संपूर्ण रामायण समाप्त न हो जाय। इस प्रकार पाठ करने से २४ घंटों में संपूर्ण रामायण का पाठ समाप्त आसानी में हो जाता है। किसी व्यक्ति को विशेष कष्ट भी नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति को ६ घंटों से अधिक समय नहीं देना पड़ता और रात्रि के समय में सोने का समय भी मिल जाता है। यदि अखंड पाठ में भाग लेने वाले व्यक्तियों की संख्या २० से अधिक हो तो टोलियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। ऐसी दशा में प्रत्येक टोली का समय कम किया जा सकता है। यदि रामायण का पाठ २४ घंटों से कम समय में समाप्त हो जाय तो शेष समय में कीर्तन की व्यवस्था होनी चाहिये। अखंड पाठ के समाप्त होने पर प्रसाद वितरण की व्यवस्था भी होनी चाहिये।

प्रत्येक पाठशाला, स्कूल या कालेज में रामायण के अखंड पाठ का आयोजन आसानी से किया जा सकता है। इस योजना से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि व्यक्तियों में रामायण का प्रचार बढ़ेगा, उसके पांच पाठ तो प्रत्येक स्थान में हो जावेंगे और जनता को संपूर्ण रामायण सुनने का सुअवसर मिलेगा। जो सज्जन चाहते हैं कि रामनवमी को पाठ समाप्त हों और सायंकाल ५ बजे उत्सव मनाया जाय वे एक दिन पहिले सायं काल ५ बजे से पाठ आरंभ कर दें।

इस आयोजन में खर्च भी अधिक नहीं है। प्रयत्न करने पर किसी भी स्थान में रामायण की पांच प्रतियें आसानी से मिल सकती हैं। यदि न मिले तो गीता प्रेस (गोरखपुर) से प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। बीस पढ़े लिखे सज्जन किसी भी स्थानमें इस कार्य के लिये एकत्रित करना कठिन न होगा। जितना द्रव्य एकत्रित हो उसी के अनुसार प्रसाद की भी व्यवस्था की जानी चाहिये। अखंड पाठ का कार्य समाप्त होने पर उसकी संक्षिप्त रिपोर्ट हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्यालय में भेज दी जाय इससे यह पता लग जावेगा कि संपूर्ण देश में इस योजना के अनुसार कितने स्थानों में कार्य हुआ। आशा है, रामायण प्रेमी सज्जन इस निवेदन पर गंभीरता पूर्वक विचार करके अपने स्थान में रामायण का अखंड पाठ की व्यवस्था करने की कृपा करेंगे।

सुखी कौन

(लेखक—पं० श्री रामनारायणदत्तजी शास्त्री)

संसार में प्रत्येक जीव सुख की इच्छा रखता है। परन्तु सुख क्या है? इसके जानने वाले विरले हैं। कोई धन में सुख मानते हैं तो कोई स्त्री-पुत्र आदि में। किसी को सुन्दर रूप प्रिय है तो किसी को सुस्वादु रस। कोई सुगन्ध का प्रेमी है तो कोई श्रवण-मधुर शब्द का। किसी को सुकोमल स्पर्श ही सुखद प्रतीत होता है। कोई मान-सम्मान तथा उत्तम कीर्ति-विस्तार में ही सुख का अनुभव करते हैं। इनमें कहीं भी शाश्वत सुख नहीं है। उक्त वस्तुओं में सुख का आरोप मात्र किया गया है।

धन को ही लीजिये, इसमें क्या सुख है? उसके उपार्जन में दुःख, उपार्जित धन की रक्षा में दुःख, उसके नाश और व्यय में दुःख। सर्वत्र दुःख ही दुःख है। उस धन के लिये ही मनुष्य दूसरों का शत्रु बन जाता है। चोर, डाकू, राजा, रंक, याचक सब उस धनवान् को ही अपना ग्रास बनाते हैं। स्त्री यदि कुरुपा और कर्कशा हुई तो उद्वेग का कारण बनती है। सुन्दरी और सुशीला हुई तो मोह और आसक्ति, पैदा करके नरक की ओर ले जाती है। यही हालत पुत्र का है। अच्छा हुआ तो मोह पैदा करता है। बुरा हुआ तो महान् कष्ट प्रद होता है। इसके सिवा, स्त्री पुत्र आदि में से यदि किसी की मृत्यु हो जाय तो जीवन-भर मनुष्य उनके वियोग में दग्ध होता रहता है। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—ये विषय भी विष की भांति दुःख ही उत्पन्न करने वाले हैं। जगत् में सुन्दर रुप, सुस्वादु रस, मनोहर सुगन्ध, मधुर शब्द और सुकोमल स्पर्श कहीं भी स्थिर नहीं है। आज जो सुन्दर दीखता है, वही कल को कुरुप हो सकता है। सुन्दर से सुन्दर रुप वाली युवती में यदि दुराचरण आदि दोष दीख जाये तो वही उसके पति को अत्यन्त दुःखदायिनी राक्षसी की भांति शाश्वत प्रतीत होने लगती है। अतः सुन्दर रूप भी सुख का आधार नहीं है। जो स्वयं क्षणभंगुर है, वह नित्य सुख कैसे दे सकता है। यदि सूर्य में प्रकाश की भांति रुप में सुख होता तो सदा सब को उससे सुख ही मिलता रहता। परन्तु ऐसा नहीं होता। एक ही रुप किसी के लिये सुखद है और किसी के लिये दुःखद। चन्द्रमा का स्वरूप कुमुदिनी के लिये अमृत है तो कमलिनी के लिये विषप्रद। चकोर के लिये सुखद है और चक्रवाक के लिये दुःखद। अतः यही मानना पड़ेगा कि उसमें सुख वास्तविक नहीं, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भावना के अनुसार कल्पित है। 'सुस्वादु रस' भी कोई स्थिर पदार्थ नहीं है। आज जो स्वादिष्ट और सरस है वही कालान्तर में स्वादहीन, विरस प्रतीत होता है। इसी प्रकार सुगन्ध आदि विषय भी दुर्गन्ध आदि में परिणत हो-कर दुःख के उद्बोधक होते हैं। अतः विषयों में भी सुख नहीं हैं। विषयी पुरुषों ने उस में सुख की कल्पना कर रखी है। ठीक उसी तरह, जैसे सुर्ती, गांजा, भांग आदि नशीली वस्तुओं में भी सुख की भावना करके व्यसनी पुरुष उनका सेवन करते रहते हैं और परिणाम स्वरूप दुःख भोगते हैं। मान-सम्मान, कीर्ति-विस्तार में जो सुख का बोध होता है, वह भी उन वस्तुओं में नहीं है। अपने भीतर का ही सुख

उन वस्तुओं को निमित्त बना कर प्रकट होता है।

विवेक करने पर हमें दो प्रकार की वस्तुएं इस जगत् में दिखायी देती हैं—एक जड़ और दूसरा चेतन। एक नश्वर है और दूसरा शाश्वत। एक असत् है दूसरा सत। एक दुःखमय है और दूसरा सुख स्वरूप। एक परिच्छिन्न है और दूसरा सर्वव्यापी। प्रकृति और उसका कार्य जड़ है तथा अखण्ड, एक रस, नित्य सनातन, परमात्मा चेतन है। वही सुख स्वरूप है। इस प्राकृत प्रपञ्च के अन्तर्यामी आत्मा वे ही हैं। हम सबके आत्मा रूप में वे ही विराज रहे है। अतः आत्मा हीं हमारे भीतर का सुख है। हमारा जब आत्मस्थ होता है, तब वही भीतर का सुख अनुभव करके वह सुखी होता है। जब बाह्य विषयों का आकर्षण पाकर वह बाहर की ओर दौड़ता है, तब आत्मस्थ न रहने के कारण वह अशान्त एवं दुखी होता है। कोई मनचाही वस्तु मिल जाने पर जब पुनः अपने आयतन भूत आत्मा में लौट आता है, तब वहीं के सुख का अनुभव करके वह सुख होता है। परन्तु अज्ञान वश ऐसा समझना है कि उस वस्तु के मिलने से यह सुख हो रहा है। अन्नंभट्ट ने अनुकूल वेदना को सुख और प्रतिकूल वेदना को दुःख कहा है। परन्तु एक ही आश्रय में किसी को अनुकूल वेदना होती है और किसी को प्रतिकूल। अतः इससे भी सुख दुःख का निश्चय नहीं हो सकता। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा ही सुख है; अतः उसी के आश्रय से नित्य सुख की प्राप्ति हो सकती है। यद्यपि परमात्मा के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है, अतः सब सुख स्वरूप ही है, तथापि इस तत्व का बोध न होने से हम सुख से वंचित एवं दुखी हो रहे हैं। अतः दुःख वस्तुतः अज्ञान में ही है। ज्ञान ही वास्तविक सुख है। ज्ञान परमात्मा से अभिन्न है; वही सुख या परमानन्द की निधि है। उसी को चाहने वाला 'सुखी' कहा जायगा। जो परमात्मा से विमुख हो अन्य वस्तु की इच्छा करता है; वह दुःख का ही उपासक है, अतः उसे दुखी ही कहना चाहिये। सुख स्वरुप परमात्मा को जानने या प्राप्त करने में मुख्यतः बाधा है काम और क्रोध। काम ही असफल होने पर क्रोध रुप में परिणत होता है। इस काम की भूख कभी मिटती नहीं। जो इसे अपने हृदय में बसा लेता है, वह परमात्मप्राप्ति से सदा के लिये वंचित हो जाता है। अतः आत्मशक्ति को सर्वोपरि जान, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से काम को मार भगाना होगा। जो इस शरीर के रहते काम और क्रोध के वेग को जीतने में सफल हो जाता है वही सुख स्वरुप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। अतः वही सुखी और वही योगयुक्त है। गीता का निम्नाङ्कित श्लोक इसी रहस्य का संकेत करता है—

शक्नोती हैव यः सोढुं प्राक्शरीर विमोक्षणात्।
काम क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

समता क्या है ?

(लेखक—स्वामी आत्मानन्दजी महाराज)

इस विषय में श्रीभगवान् श्रीमुख से ऐसा कहते हैं—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

(गी. १३-२७)

अर्थ—जो पुरुष नाशवान सम्पूर्ण भूतों में अविनाशी परमेश्वर को समान भाव से स्थित देखता है, वही यथार्थ देखने वाला है। अर्थात् ऐसा जानना चाहिये कि जो पुरुष उत्पत्ति नाश रूप नाना तरंगों में अविनाशी जल को ही देखता है, जिसकी तरंग-दृष्टि लोप हो गई है और अपनी तत्त्व-दृष्टि की परिपक्वता करके जो तरंगों को जलरूप से ही ग्रहण करता है, वही सच्चा देखने वाला है।

इस समता का फल क्या होगा ? इस विषय में भी श्रीभगवान ऐसा कहते हैं—

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परांगतिम् ॥

(गी. १३-२०)

(२) इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

(गी. ५-१६)

अर्थ (१)-जो पुरुष तरंगोंमें जलके समान सर्वत्र भरपूर ईश्वर को समरूप से देखता हुआ अपने आत्मा करके आत्मा का हनन नहीं करता, इससे वह परमगति को प्राप्त हो जाता है। इस प्रसङ्ग में आत्मा करके आत्मा का हनन क्या ? अजर-अमर रूप अपने आत्मा को देहादि के रूप में (जल को तरंग रूप में) ग्रहण करना कि 'मैं देह-इन्द्रिय रूप हूँ'— और जन्म-मरण आदि देहादी के विकारों को अपने आत्मा में ग्रहण करना 'कि मैं जन्मता और मरता हूँ'—इस अज्ञान दृष्टि से ही आत्मा करके आत्मा का हनन होता है। और एकमात्र इस सच्ची ज्ञान-दृष्टि से ही कि 'मैं और सम्पूर्ण संसार आत्मरूप ही हैं, हमारे आत्मा में कुछ भी विकार नहीं लगता है'—इस आत्म-हत्या से छुटकारा सम्भव है, दूसरा कोई भी उपाय बन नहीं सकता है।

अर्थ (२)—जिन पुरुषों का मन सच्ची समता में स्थित हो गया है उनके द्वारा यहीं संसार जीत लिया गया है, क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है इस ब्रह्म में उन्होंने स्थिति प्राप्त करली है।

उपर्युक्त भगवद् वचनों से यह बात भली भांति समझी जा सकती है कि खरी समता ज्ञान-गम्य ही है, वह कर्मगम्य और व्यवहारगम्य हो नहीं सकती। क्योंकि समता ब्रह्म का स्वरूप है परन्तु व्यवहार प्रकृति-राज्य का पदार्थ है, इस लिये ब्रह्म और प्रकृति की एकता कैसे बनाई जा सकती है ?

व्यवहार की सिद्धि भेद में ही हो सकती है अभेद में तो व्यवहार की सिद्धि असम्भव ही है, इसलिए व्यवहार तो भेद को ही चाहता है। हां, यदि हम धर्म की मर्यादा के अनुकूल भेद को अंगीकार करके व्यवहार में बरतें, तो यह भेद हमको सोपान-क्रम से सच्ची समता में पहुँचाने के लिए ठीक समर्थ हो सकता है। दृष्टांतस्थल पर जाना जा सकता है कि नदी के प्रवाह को यदि दोनों तटों की मर्यादा में रक्खा जाय तो वह प्रवाह समुद्र तक पहुँच कर और समुद्र में मिलकर

मर्यादा रहित हो सकता है। परन्तु इसके विपरीत समुद्र तक पहुंचने से पहले ही नदी के तटों को तोड़ दिया जाय तो वह प्रवाह समुद्र तक पहुँच ही नहीं सकता और वह बीच में ही फैल कर सूख जायगा। इसी प्रकार जीव नदी के प्रवाह को यदि धर्म के विधि-निषेध रूप दो तटों की मर्यादा में चालू रक्खा जाय तो वह ब्रह्मरूपी समुद्र में मिल कर सच्ची समता को प्राप्त हो सकता है और फिर स्वतःही वह सम्पूर्ण मर्यादाओं से भी मुक्त हो सकता है।

ईश्वरीय प्रकृति के अनुकूल समता का सच्चा सिद्धान्त तो उपर्युक्त कथन के अनुसार ही है। इसके विपरीत जो हम प्रकृति राज्य में ही बंधे हुये रहकर प्राकृतिक नियमविरुद्ध और धार्मिक मर्यादा-विरुद्ध व्यवहार की ही समता बनाने में अपने पुरुषार्थ का दुरुपयोग करने लग पड़ें तो हमको सफलता प्राप्त होगी, ऐसा कहा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं बल्कि प्राकृतिक नियमविरुद्ध होने से हम विशेष विषमता के शिकार हो सकते हैं, क्योंकि प्रकृति अपने राज्य में व्यवहार की समताको सहन नहीं सकती है। प्रकृति राज्य में तो लक्ष्य की समता और व्यवहार की विषमता रखने में आवे तो यह प्राकृतिक नियम के अनुकूल होने से हमको सफलता मिल सकती है। दृष्टांत के तौर पर समझ सकते हैं कि हमारे शरीर में आँख, कान, नाक, हाथ, पाँव, गुदा और उपस्थ आदि इन्द्रियां अपने २ विषम रूप व्यवहार में वर्त रही हैं। परन्तु सभी इन्द्रियों का लक्ष्य एक मात्र शारीरिक सुख और शरीर-सँचालन होने से व्यवहार की विषमता समता में ही पहुँचती है। इसके विपरीत यदि सभी इन्द्रियाँ अपने अपने विषम रूप व्यवहार का त्याग करके आँख के साथ समता करने लग पड़ें तो यह समता भयंकर विषमता को ही पहुँचती है और शरीर सँचालन रूप लक्ष्य की समता भी टूट पड़ती है। व्यवहार की समता तो हम अपने शरीर में भी बना नहीं सकते। प्रत्येक मनुष्य का मुँह और पांव तथा गुदा के व्यवहार की तो विषमता रहनी निश्चित ही है। जब हम अपने शरीरमें ही व्यवहार की समता नहीं बना सकें तो मनुष्य मात्र से व्यवहार की समता कैसे बनाई जा सकती है। इसलिए व्यवहार की समता को ही जीवन का लक्ष्य बना कर जीवन की सफलता साध लेना तो प्रमादपूर्ण ही कहा जा सकता है।

यदि व्यवहार की समता को ही समता कहा जा सकता हो तो मनुष्यों में मेहतर (Sweeper) तो किसी पुरुषार्थ के बिना स्वभाव से ही समता का पूर्ण स्थान है। अपने व्यवहार में वह तो किसी प्रकार की विषमता रखता ही नहीं है। इसलिए उपर्युक्त भगवद्वचनों के अनुसार उसको तो स्वभाव से ही परम पद की प्राप्ति हो जानी चाहिये और वह तो सच्ची समता में स्थित रहने वाला होने से यहीं और अभी संसार को जीत लिया हुआ कहना चाहिए। अर्वाचीन भद्र पुरुष क्या सत्यता पूर्वक इस समता का ऐसा फल मानेगें ?

हमारे मत के अनुसार तो व्यवहार की समता यथार्थ समता मानी जा सके, ऐसा सम्भव नहीं है। फिर भी यदि समता के अभिमानी समता को व्यवहार के साथ ही संबंध मानते हो तो उपर्युक्त भगवद्वचनों के अनुसार हमको तो मनुष्य के साथ ही नहीं, परंतु "समं सर्वेषु भूतेषु" अर्थात् जड़-चेतन रूप सम्पूर्ण भूतों के साथ समता धारण करने की है। इसलिए बतलाना चाहिए कि व्यवहार की समता कुत्तों, गधों, सिंहों, सर्पों, पृथ्वी और पर्वतों आदि के साथ कैसे साधी जा सकगी ? यदि हम इन सभों के साथ व्यवहार की समता वर्ताव में नहीं ला सकेगें तो हमारा सम्पूर्ण पुरुषार्थ निष्फल ही निपटेगा। फिर तो भगवद्वचनों के अनुसार नाशवान् सम्पूर्ण भूतों में न हम अविनाशी परमात्मा को ही देखने वाले हो

सकेंगे न आत्मा करके आत्मा के हनन से ही छूटे हो सकेंगे और न यहाँ सच्ची समता में मन की स्थिति होकर संसार के विजेता बन सकेंगे। परंतु कहना चाहिये कि जल की सत्यता तरंगों में आरोप करके और ब्रह्म की सत्यता भूतों में आरोप करके हमतो आत्मा करके आत्मा के हन्ता ही बने रहेंगे। क्योंकि भूतों को सत्यस्वरूप मान करके ही हमने तो उनके साथ व्यवहार की समता बनाने के लिए उनके पीछे दौड़-धूप लगाई हुई है। इस हत्या से छुटकारा तो तभी सम्भव हो सकता था, जबकि हमारी दृष्टि से तरंगों के समान भूत दृष्टि निकल गई होती और जलके समान सच्ची ब्रह्म दृष्टि ही समा गई होती।

इस बात के मानने में तो कोई भी आपत्ति हो नहीं सकती कि यथार्थ समता में पहुँचाना, यही गीता का एकमात्र लक्ष्य है और इसीलिए गीता अवतीर्ण हुई है। इसलिए यदि व्यवहार की समता यही यथार्थ समता माननेमें आवे तो गीताकार श्रीभगवान् के ये वचन भ्रम मूलक ही होने चाहिए—

> चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
> तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ (गी० ४-१३)

अर्थः—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण गुण व कर्म के विभाग से मेरे द्वारा ही रचे गये हैं। मैं जो वस्तुतः अविनाशी और अकर्ता हूँ, उस मुझे ही उनका कर्ता भी जान।

जबकि प्रकृति स्वभाव से ही सत्त्व, रज और तम त्रिगुणमयी है और गुणों के भेद से कर्मों का भेद भी निश्चित ही है, तब गुणों और कर्मों के भेद से चतुर वर्णों की सृष्टि भी अनादि है ही। और जब गुण-कर्मों के भेद से चतुर वर्ण अनादि मानने के सिवा छुटकारा है ही नहीं, तब चतुर वर्णों के रहते हुए व्यवहार की समता कैसे साधी जा सकती है? प्रकृति-राज्य में गुणों का भेद, कर्मों का भेद, वर्णों का भेद और उनके साथ व्यवहार की समता—ये सब एकत्रित हो नहीं सकते, किन्तु रात-दिन को इकट्ठा करने जाने के समान यह प्रमादपूर्ण ही कहा जायगा। इतना ही नहीं, किन्तु गीता के उपसंहार (अ० १८ श्लो ४१-४४) में श्रीभगवान् ने प्रकृतिजन्य त्रिगुणों के भेद से ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणांच परंतप) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों का स्पष्ट रूप से विभाग करके उनके पृथक्-पृथक् कर्मों का विभाग किया है और श्लोक ४५ में स्पष्ट रूप से बतलाया है कि 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः'-अर्थात अपने-अपने वर्णानुसार कर्मों में जुड़ा हुआ मनुष्य संसिद्धि को प्राप्त होता है। इसके बाद श्लोक ४६-५४ तक जिस प्रकार वर्णानुसार कर्मों में जुड़ा हुआ मनुष्य भगवान् की पराभक्ति अर्थात जीव-ब्रह्म की एकता रूप ज्ञान को प्राप्त होता है, यह स्पष्ट रूप से कथन किया है। इसलिए मानना चाहिए कि जैसा ऊपर कहा गया है, जीव-नदी के प्रवाह को विधि-निषेध रूप धर्म के दो तटों की मर्यादा में चलाते हुए ब्रह्मरूपी समुद्र में अभेद करना, अर्थात लक्ष्य की समता और व्यवहार की विषमता गीता का एकमात्र यही सच्चा सिद्धान्त है और यही यथार्थ समता गीता को मान्य है।

सारांश, ज्यों-ज्यों हम व्यवहार की खोटी समता को अपने जीवन का लक्ष्य बनायेंगे, त्यों-त्यों हम सच्ची समता से दूर पड़ते चले जायगें। समता का पात्र होने के बजाय हम विषमता के ही शिकार बनने लग पड़ेंगे और राग-द्वेष के ही पात्र निमटेंगे। समता का फल राग-द्वेष नहीं हो सकता, बल्कि राग द्वेष से पल्ला छुड़ाना, यही सच्चा फल है और वह तभी सिद्ध हो सकता है जबकि व्यवहारिक समता से पल्ला छुड़ाया जाय। इस प्रकार तो न हम अपना कल्याण कर सकेंगे और न दूसरों का। बल्कि धर्मविरुद्ध और अधिकार विरुद्ध दूसरों में समता का कांटा अभिमान भरके हमारे लिए तो प्रकृति राज्य में दूसरों को पथ भ्रष्ट करने का अपराधी बनने के सिवाय छुटकारा ही नहीं है, क्योंकि प्रकृति राज्य में क्रिया की प्रतिक्रिया निश्चित है।

अर्वाचीन भद्र पुरुष पक्षपात रहित दृष्टि धार के गम्भीरता पूर्वक इन पंक्तियों को लक्ष्य में रख सकें तो उनका धन्यवाद किया जायगा॥ ॐ॥

श्रीराम नाम-नौका

(लेखक—श्री अवधकिशोरदासजी "श्रीवैष्णव")
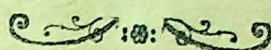
श्रीरामनाम भवसागर की नौका है, ऐसी नाव जिसमें कोई बाधा नहीं, श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने इसको "निज नाव" कहा है, जिस पर दूसरे का कोई अधिकार कभी नहीं पहुँच सकता, आप स्वतन्त्रता पूर्वक यथेष्ट सुखोपभोग इस नौका द्वारा करके कृतार्थ हो सकते हैं। नामानुरागी सन्त इस नौका द्वारा स्वयं तरते हैं और अनन्त जीवों को तारते हैं कहते हैं श्री गोस्वामीजी ने नव नौका अनुष्ठान श्री चित्रकूट में किया था। शास्त्रों में नौका जप अनुष्ठान की एक स्वतन्त्र प्रणाली है, मैं पाठकों के परम कल्याणार्थ श्लोक तथा अर्थ समेत विधि ज्यों की त्यों नीचे उद्धृत करता हूँ—

अथ श्रीरामनाम नौका अनुष्ठान पद्धतिः—

पार्वत्युवाच—

देव देव, महादेव, भक्तानुग्रहकारक।
वद मे रामचन्द्रस्य नौकानुष्ठानमुत्तमम् ॥१
येनानुष्ठानतो देव सर्व सिद्धिर्भवेन्नृणाम्।
महामोक्ष पदं याति यत्र गच्छन्ति वैष्णवाः ॥२॥

श्री पार्वतीजी पूछती हैं कि हे श्री महादेवजी! भक्तों पर कृपा करने वाले आप आज तो श्री रामचन्द्रजी के नौका अनुष्ठान का विधान कृपा कर वर्णन करें, जिसका अनुष्ठान करने से मनुष्यों को सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं, तथा प्रभु के प्यारे भक्त जिस परम धाम में जाते हैं उस धाम की प्राप्ति होती है।

महादेव उवाच—

शृणु वक्ष्यामि देवेसि नन्दकार्यं विधानतः।
श्री रामनाम संभूतं कल्पवृक्ष समं परम् ॥३॥
नन्द कोटि नन्दलक्षयस्तथानन्द सहस्रकम्।
तथानन्द शतं देवि नन्दकोत्तरमीरितम् ॥४॥
एतत्क्रमेण कर्तव्यं सर्वसिद्धि प्रदं नृणाम्।
नौका लक्षणमेतत्तु कथितं तत्त्व कोविदैः ॥५॥

श्री महादेवजी बोले कि हे देवि! कल्पवृक्ष के समान समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला श्री रामनाम नौका अनुष्ठान की विधि मैं कहता हूं उसको विचारपूर्वक सुनो—

नौ करोड़, नौ लाख, नौ हजार, नौ सौ, नौ नाम का एक अनुष्ठान रूप में विधिपूर्वक जप करने का नाम "श्री राम नाम नौका" है यह सभी सिद्धियां देने वाला है, तत्त्वदर्शी महात्माओं ने इसी क्रमानुसार श्री राम नाम का अनुष्ठान करने का विधान किया है।

महामोक्ष प्रदं श्रेष्ठं भक्तिदं ज्ञानदं नृणाम्।
वेद-शास्त्र-पुराणेषु प्रशस्तं शुभ कर्मणि ॥६॥
नौका जयमिदं देवि! ये कुर्वन्ति महात्मनः,
ते यान्ति परमे धाम्नि साकेते राम मन्दिरे ॥७॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा सीताराम प्रसादतः।
प्राप्यते रामचन्द्रास्य भक्ति श्रेयस्करीं शुभाम् ॥८॥

यह अनुष्ठान महामोक्ष प्रदान करने वाला एवं भक्ति तथा ईश्वरीय ज्ञान का दाता है। वेद, शास्त्र, पुराणादिकों में जितने भी शुभ कर्म कहे हैं उन सब में यह सर्व श्रेष्ठ है। हे देवि! जो श्री रामनाम नौका का जप करते हैं वे भाग्यभाजन महात्मा परम-धाम महा वैकुण्ठ के मध्य श्री साकेत में श्रीरामजी के निज मन्दिर में निवास करते हैं। इस लोक में जब तक रहते हैं सर्वविध सुखों का भोग करके अन्त में श्री सीतारामजी युगलप्रभु की कृपा से जीव का परम कल्याण करनेवाली श्रीरामजी की प्रेम भक्ति प्राप्त कर कृतार्थ होते हैं।

नवमांशेन जुहुयात् तन्नवांशेन तर्पयेत्।
मार्जनं तन्नवांशेन कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥९॥
तन्नवांशेन च तथा ब्राह्मणान् भोजयेत्पुनः।
जप्तव्यं सततं देवि सीतानाम समन्वितम् ॥१०॥

जप का नवमांश हवन करे, हवन का नवमांश तर्पण करे, तर्पण का नवमांश मार्जन करे, मार्जन का नवमांश ब्राह्मणों को भोजन करावे। हे देवि! सुख चाहने वाले मनुष्य को उचित है कि इस प्रकार होमादिक करके अनुष्ठान पूर्ण करे। नाम जप में श्री राम नाम के साथ श्री सीतानाम का भी प्रेम पूर्वक बार-बार उच्चारण करे ॥

राजभये शत्रुभये त्रैतापे प्राण सङ्कटे।
कर्त्तव्यं साधकेनेदं सर्व सम्पत्तिदायकम् ॥११॥
पुनः स्वर्ण केचास्मिन् हवनं तिल तण्डुलैः।
सघृतैः पायसैश्चैव पञ्चाद्याठत्य वीरकम् ॥१२॥
पूजयेत्तु यथाशक्तिः यतः श्री रामवल्लभ ॥

राज का भय, शत्रु का भय, त्रिविध सन्ताप अथवा प्राण सङ्कट उपस्थित हो तब उससे छूटने के लिये यह अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। अनुष्ठान पूर्ण हो, कामना सफल हो तत्पश्चात् श्री रामवल्लभ हनुमानजी का आवाहन कर उनके सम्मुख तिल, जौ, चावल, घृत, खीर, पायस, मेवा आदि पवित्र वस्तुओं को मिलाकर हवन करना चाहिये।

सकामी हवनं कुर्यात् निष्कामोऽपि जपं चरेत्।
कामासक्तमना ये तु ते पतन्ति महीतले ॥१३॥
नव नौका जपे नैव श्री रामदर्शनं भवेत्।
रोमे रोमे रमेद्रामो तेषां किञ्चिन्नदुर्लभम् ॥१४॥
फलाहारेण कर्त्तव्यं एकाहारेण वा पुनः।
ब्रह्मचारी भूमिशायी भक्तिमान विजितेन्द्रियः ॥१५॥
सदा रामे मतिर्यस्य गुरु भक्ति परायणः।
सोऽधिकारी भवेद्देवि नान्यः कोऽपि वरानने ॥१६॥

इति श्री ज्ञानेश्वर संहितायां उमा महेश्वर संवादे श्री रामनाम नौका विधि समाप्ता।

सकामुक साधक हवन अवश्य करे, निष्काम भक्त बतना जप ही अधिक करते। दुष्ट भावना से अनुष्ठान करने वाले पतित होते हैं, इसलिये तमोगुणी वृत्ति रखकर यह अनुष्ठान कभी न करे। किसी भी प्रकार नव नौका जप करले तो साक्षात् श्रीरामजी के दिव्य दर्शन प्राप्त होते हैं। जिनके रोम रोम में श्रीरामजी निवास करते हैं उनके लिये लोक परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। फलाहार करके अथवा एक साम भोजन करके यह अनुष्ठान करना चाहिये। भक्तिपूर्वक भूमि पर ही बिछौना बिछाकर सोवे तथा ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे। सदा श्रीरामजी के चरणों में मन लगाये रहे, सन्त सद्गुरु की आराधना करनेवाला हो वही इसका अधिकारी है हे देवि! अन्य कोई भी इसको नहीं कर सकता। नाम निष्ठावाला भक्त ही इसका सद्यःफल प्राप्त कर कृतार्थ होता है।

यह विधान श्री अयोध्याजी श्री जानकीघाट निवासी अनन्त श्री स्वामी रामवल्लभाशरणजी महाराज की कृपा द्वारा प्राप्त हुआ था। यह अद्यावधि अप्रकाशित जानकर प्रकाश पथ में लाने का प्रयत्न किया गया है।

इस अनुष्ठान को कर अनेकों सन्त प्रभु के दुर्लभ दर्शन प्राप्त किये हैं. अनेक भक्तों का असाध्य कष्ट निवारण हुआ है, अनेक सन्त अभी भी इसको करते हैं तथा करवाते हैं। भगवन्नाम श्री राम नाम का अचिन्त्य प्रभाव है, पांच-पांच नौका जप करने वाले प्रभु स्वरूप सन्तों के दर्शन तो इस सेवक को भी प्राप्त हुए हैं। "नाम-माहात्म्य" के पाठकों को नाम जप कर तत्काल लाभ प्राप्त करने वाले भक्तों का चरित्र आगे कभी प्रकट किया जायगा। जन्म कुंडली के १२ कोठे एक एक कोटि नाम जप कर कैसे शुद्ध किये हैं उन सन्तों का प्रत्यक्ष अनुभव भी लोक कल्याणार्थ प्रकट किया जायगा। यदि हमारे नामानुरागी भक्तजन प्रभु के किसी भी नाम का जप करें, करावे उसका प्रत्यक्ष जो अनुभव हो उसे लोक कल्याणार्थ प्रकट करें तो इस युग में भी जीव नाम परायण होकर जन्म कृतार्थ कर सकते हैं तथा सम्मुख आने वाले विघ्नों से अपनी रक्षा कर नास्तिकता के चक्कर से बच सकते हैं।

श्री० भगवान भजनाश्रम, एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देने वाले सज्जनों की नामावली

(मिती साढ़ सुदी ९ सं. २००९ से सामन सुदी ८ सं. २००९ तक महिना १ का)

२५) श्री० राधेश्यामजी मोतीवाला अहमदाबाद
२५) " कृष्णकुमारजी गोविंदलालजी "
२५) " बालकृष्णजी गोविन्दलालजी "
२५) " प्रभालक्ष्मीजी केशवलालजी "
२५) " रनछोडदासजी कालीकृष्णजी "
१०) " सकराभाईजी लल्लुजी "
५) " पी० ए० जैन "
५) " धुवकुमारजी बालकृष्णजी "
५) " मूलचन्दजी अग्रवाल अन्ता
५) " शम्भूनाथजी चतुर्वेदी इलाहाबाद
५) " मामनचन्दजी टेकचन्दजी उकलाना मन्डी
५००) " बन्शीधरजी मौर कलकत्ता
२००) " बन्सीधरजी सोनपलिया "
५१) " मुन्नालालजी "
५०) " जैदेवजी मनोहरलालजी बाच्छुका "
४०) " महादेवप्रसादजी खेतान "
२१) " पुरुषोत्तमदासजी गोकुलचन्द "
११) " वसन्तलालजी खेतान "
१०) " रामकिशनजी आचार्य "
१३७) " स्वर्गीय कुन्दनलालजी कानपुर
४१) " हरेकृष्णदासजी शिवप्रतापजी कारन्जा
२०) " रघुनाथदासजी सूरजकरनजी "
५५) " मथुराप्रसादजी अग्रवाल कन्चरापारा
११) " मंगलचन्दजी सचेती किशनगढ़
५) " ओंकारमलजी कुराबन
२५) " गुलाबचन्दजी बुधरामजी खरसिया
४) " जुगलकिशोरजी तुलारामजी "

५१) श्री० हीरालालजी चूरु
५१) " हीरालालजी की मांजी "
२५) " गोवरधनदासजी खेमका "
१०) " तुलारामजी खेमका "
५) " रामनाथजी स्योभगवानजी "
५) " भगवानदासजी खेमका "
२) " दौलतरामजी बजरंगलालजी "
५) " राधाकिशनजी गटिया चेचट
३१) " आर० सिंह ब्रादर्स जलपाईगुड़ी
२५) " गोकुलचन्दजी रिछपालजी "
२५) " रामदेवजी सेडमलजी "
२१) " हजारीमलजी मगतूरामजी "
२१) " कूननमलजी सरावगी "
१५) " महादेवजी बनवारीलालजी "
११) " मोटर साईकल कम्पनी "
११) " सरावगी एन्ड कम्पनी "
११) " बी० चौधरी एन्ड सन्स "
११) " मदनलालजी ताराचन्दजी "
११) " प्रसादीमलजी प्रभूदयालजी "
११) " कूननमलजी श्यामसुन्दरजी "
११) " जेठमलजी रामकिशनजी "
११) " लक्ष्मीनारायणजी निरन्जनलालजी
११) " मूगालालजी मानिकचन्दजी "
८) " किशनलालजी तिवारी "
५) " सीतानी स्टोर्स "
५) " कन्हैयालालजी रामचन्दजी "
५) " सागरमलजी रामअवतारजी "
५) " सूरजमलजी अग्रवाल "
५) " मोहरीलालजी श्यामलालजी "
५) " लीलाधरजी नन्दलालजी "

५) श्री रामजीलालजी विशेश्वरजी जलपाईगुड़ी
५) " गनपतरामजी जूथारामजी "
५) " नन्दलालजी हाथिपालजी "
१०) " रामीबाईजी मोहनीबाई जोधपुर
११) " रामगोपालजी जीन
११) " रामकिशनजी अग्रवाल झरिया
१०) " मोहनीदेवीजी झारसुगुडा
१०) " जमुनाबाईजी "
५) " शान्तीबाई "
५) " मगुरामजी तुहाना
४५०) " ज्योतीप्रसादजी जगन्नाथजी देहली
५१) " मुकसरमलजी बनवारीलालजी "
५०) " द्वारकाधीस कीर्त्तन मण्डल "
१५) " भोलूरामजी श्यामलालजी "
११) " रामदेवजी पाडिया "
१०) " ताराचन्दजी "
५।≈) " जयनारायणजी "
३६३।।।) " बिहारीलालजी झूंझनूवाला नागपुर
५) " महादेवप्रसादजी "
२१) " श्रीलालजी मुरलीधरजी नवादा
१०) " गोमतीदेवीजी नोहर
११) " पूरनमलजी पटना
११) " लखीप्रसादजी "
११) " दीनानाथजी कमलिया "
११) " विशेश्वरलालजी गोयल परिसतगढ
२५१) " लच्छनदास अचलदासजी बम्बई
५०१) " केशरबाईजी "
२५१) " सीत्ताबाईजी "
१५१) " गुप्तदान "
१००) " लीलारामजी कीमतरामजी "
७१) " हरिओमनारायणजी "
५१) " भगवानदासजी खगडीया "
५०) " जुग्गीमलजी पोद्दार "

३१।) श्री जेठानन्दजी सुगनचन्दजी बम्बई
२१) " कलावतीबाईजी "
११) " प्रभूदयालजी छोटेलालजी "
५) " नारायणदासजी सोचरनदास "
६२५।≡) " बसंतरामजी गोरखरामजी वृन्दावन
१०) " रामकुवारजी मुंगेरवाला "
१००) " रामकुवारजी ब्राह्मण बिलासपुर
१०) " महीपतलालजी बखाडी
१००) " हरसामलजी कीलोदी की धर्मपत्नी भवानीमन्डी
२००) " चन्द्रावलीजी मेरठ
५) " बालारामजी मून्डवा
१००) " मगनीरामजी चिम्मनीरामजी गीली
५१) " राधादेवीजी बिहाणी "
११) " रामजीदास परमानन्दजी रांची
५) " सूरजभानजी रुड़की
५) " गंगासहायजी "
५) " दुलीलालजी महाजन रावली
२१) " हनुतरामजी गोपीराम रतनगढ
११) " सोदानमलजी ओंकारमलजी "
५) " नाथूरामजी बद्रीदासजी "
५) " जयदेवजी "
५) " श्याम सुन्दरलालजी वकील "
५) " ह्योद्त्तरायजी कसेरा "
२०) " कोडामलजी लछमीनारायणजी लाडनू
५) " लच्छमनदासजी मून्दड़ा लश्कर
१०) " ओंकारमलजी नाथूरामजी सोपह
५) " फूलचन्दजी अग्रवाल श्रीगंगानगर
६) " मालीरामजी " हीगनघाट
१३२) " फुटकर प्राप्त

६११४।।।≈।।) योग

श्री० भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन माइयों द्वारा भजन कराने वाले सज्जनों की नामावली महीना एक का

२५।-) श्री० सन्तोकबाईजी आगरा
१५) " कृष्ण जीवनदास मधुदासजी ,,
१६॥=) " नन्दरामजी छोटेलालजी अमरावती
१६॥=) " कुन्जबिहारीलालजी माथुर अजमेर
१०) " जी० के० अग्रवाल इटावा
३०६।=) " मैदानीय रामकथा मंडल कलकत्ता
२०२॥) " मनोहरलालजी रतेरिया "
२०२॥) " गोमतीदेवीजी पच्चीसीया "
२०२॥) " सूरजभानजी मुरलीधरजी "
१०१।) " बन्सीधरजी सोनथलिया "
१०१।) " मदनलालजी देवीदत्तजी "
१०१।) " लादूरामजी तापडिया "
१०१।) " कन्हैयालालजी बागला "
१०१।) " शुभकरनजी बनवारीलाल "
१०१।) " चांदमलजी पारिख "
१०१।) " रुगटा चेरटी ट्रस्ट "
१०१।) " इन्द्रचन्दजी ओमप्रकाशजी "
१०१।) " लक्ष्मीचन्दजी मसखरा "
१०१।) " रामनारायणजी सोडानी "
१०१।) " शिवभगवानजी गजाधरजी "
१०१।) " रामकुवार एन्ड कम्पनी "
१०१।) " दी० कलकत्ता व्हीट एंड संस ,,
५०॥=) " सूरजरतनजी मीमानी "
२८=) " रामदेवसिंहजी "
२८=) " वासुदेवसिंहजी "
२८=) " मातूरामजी डालमिया "
२८=) " मणीदेवीजी तोदी "
२८= " ललितादेवीजी तोदी "
२८=) " मोतीलालजी "
२८=) " मनीदेवीजी नाससरिया "
२५।-) " सीतारामजी श्यामसुन्दरजी "
२५।-) " श्री किशनजी बलयाली कलकत्ता

८।≡) श्री० मोतीलालजी सुरेखा कलकत्ता
८।≡) " किरपारामजी अग्रवाल "
३६॥-) " गुप्तदान "
१०१।) " बंकटलालजी लट्टूरा करकेडी
२५।-) " अमरचन्दजी लट्टूरिया "
५१) " हरीरामजी रंगलालजी मोदी कटक
२५।-) " रामगोपालजी गोयन्का कटनी
२५।-) " कालूरामजी कालियापाड़ा
२५।-) " मूलचन्दजी बाबूलालजी कीडिया
८।≡) " राधाकिशनजी काकाणी किशनगढ़
२५।-) " खड़गरामजी देवीदत्तजी खतौली
२५।-) " रामेश्वरदासजी भीमराजजी "
१०१।) " बाबूरामजी राठी ग्वालियर
८।≡) " इन्द्रचन्दजी "
८।≡) " मांगीलालजी तोदी गोलाघाट
२५।-) " भीखारामजी चम्पतीया
१६॥=) " छगनलालजी बजरंगलालजी जैपुर
६।=) " कासीरामजी जसवन्तनगर
८।≡) " फूसराजजी बलदेवाका जोरहाट
१०१।) " लालचन्दजी विशम्भरदयालजी जलपाई गुडी
१०१।) " भोलारामजी रामेश्वरजी "
५०॥=) " मनोहरलालजी गोरखमलजी ,,
५०॥=) " लक्ष्मीनारायणजी मांगीलालजी ,,
५०॥=) " हीरालालजी मुन्शीलालजी "
५०॥=) " हरखचन्दजी जगन्नाथजी "
५०॥=) " गौरीदत्तजी केदारनाथजी "
२५।-) " रामचन्दजी रामेश्वरदासजी "
२५।-) " खेमचन्दजी मोतीलालजी "
२५।-) " मातादीनजी रामदीनजी "
२५।-) " मनोहरलालजी रामदीनजी "
२५।-) " ओ० सि० ब्रादर्स जलपाईगुडी

रकम		नाम	स्थान
२५१-)	श्री०	गंगाजलदासजी टीकमचंदजी	जलपाईगुडी
२५१-)	"	रामदीनजी नुकसानीवाला	"
२५१-)	"	बी० डी० बालकृष्णजी	"
२५१-)	"	सत्यनारायणजी भगवानदासजी	"
२५१-)	"	चाननमल रामेश्वरदासजी	"
२५१-)	"	नन्दलालजी फूलचन्दजी	"
२५१-)	"	सींगी ब्रादर्स	"
२५१-)	"	मातादीनजी हरीप्रसादजी	"
२५१-)	"	भानगरामजी जीवनदासजी	"
२५१-)	"	चौधरी ब्रादर्स	"
२५१-)	"	गीदड़ा एण्ड ब्रादर्स	"
२५१-)	"	मांगीलालजी किशोरीलालजी	"
२५१-)	"	ब्रह्मानन्दजी नुकसानीवाला	"
२५१-)	"	मीनारामजी नारायणदासजी	"
२५१-)	"	गंगासहायजी दुलीचन्दजी	"
८।≡)	"	जयकरनदास सुन्दारामजी	"
८।≡)	"	किशोरीलालजी बृजमोहनजी	"
८।≡)	"	रतनचन्दजी जालीरामजी	"
८।≡)	"	सुगनचन्दजी सीतारामजी	"
८।≡)	"	रामकुवारजी मोहनलालजी	"
८।≡)	"	मातादीनजी हेनरामजी	"
८।≡)	"	रामकुवारजी देवकीप्रसादजी	"
८।≡)	"	मतीरामजी भगवानदासजी	"
८।≡)	"	रामविलासजी नारायणदासजी	"
८।≡)	"	जीवनदासजी घनश्यामदासजी	"
८।≡)	"	हनुमानदासजी ओम्प्रकाशजी	"
८।≡)	"	शंकरदासजी सागरमलजी	"
८।≡)	"	नन्दलालजी रामेश्वरदास	"
८।≡)	"	श्यामसुन्दरजी नारायणदास	झुनझुना
८।≡)	"	विशेश्वरलालजी केसोरामजी	टीटलागढ़
८।≡)	"	महादेवलालजी बजरंगलाल	"
२५-)	"	सूरजमलजी पूनमचन्द	डूगरगढ़
१०)	"	मोदी पुरुषोत्तमदासजी	डभोई
१०१।)	"	चन्दाबाईजी जैपुरिया	तुमसर
२७८।≡)	श्री०	मुरलीधरजी श्यामसुन्दरजी	देहली
२०२॥)	"	रामगोपालजी ओंकारमलजी	"
२५१-)	"	रघुमल एन्ड सन्स	"
१६॥।=)	"	राधाकिशनजी डालमिया	"
१०)	"	जेठमलजी गनेशदासजी	देरगांव
८।≡)	"	कोलेश्वर राउतबीन	भूबड़ी
५०६।)	"	बिहारीलालजी झूंझनूवाला	नागपुर
१०१।)	"	किशनकुमार की मांजी	"
१०१।)	"	बंशीलालजी झंवर	नोखा मण्डी
२५१-)	"	काजूलालजी रामगोपालजी	निमोद
५८॥=)	"	जयनारायणजी मदनलाल	पुरलिया
५०॥=)	"	फूलचन्दजी बद्रीदासजी	प्रतापगढ़
२५)	"	बच्चूलालजी नरबदाप्रसाद	पेन्डरा
१११३॥।)	"	हीरानन्दजी नारायणदासजी	बम्बई
५०६।)	"	पुष्पादेवीजी	"
३०३॥।)	"	भागीरथी देवी	"
१०१।)	"	गणपतीबाईजी पोद्दार	"
१०१।)	"	रामकिशनजी राधेश्यामजी	"
१०१)	"	भीमराजजी हरलालका	"
१०१।)	"	सेवारामजी की बीनणी	"
१०१।)	"	चिरंजीलालजी गोइन्का	"
१०१॥≡)	"	सहोदरा बाई	"
१०१।)	"	प्रेमाबाईजी	"
५१)	"	जेठानंदजी सुगनचंदजी	"
२५१-)	"	सरस्वती बाईजी	"
८॥)	"	शंकरलालजी पोद्दार	"
८≡)	"	चिरंजीलालजी गोइन्का	"
१०१।)	"	मदनचंदजी	बलरामपुर
१०१।)	"	पोकरमलजी गजानंदजी	"
८।≡)	"	छगनलालजी चौधरी	बीदासर
८।≡)	"	सोहनलालजी हनुमानदासजी	[illegible]
८।≡)	"	मगतरामजी	वाराद्वार
१०१।)	"	सूरजमलजी	भाटापाड़ा
१६॥।=)	"	वासुदेवजी वीरसेनजी	"
१०१।)	"	हनुमानदासजी प्रह्लादरायजी	भागलपुर

६७॥) श्री० चम्पादेवीजी भागलपुर
३३॥) ,, दुरगीबाईजी ,,
३३॥) ,, मोतीलालजी मुरारका ,,
१८॥) ,, ब्रजलालजी टिबेड़वाला ,,
८।=) ,, ब्रजमोहनदासजी सराफ भेलसा
८।=) ,, टीकारामजी ताम्रकार ,,
८।=) ,, कासीरामजी बिहारीलाल ,,
८।=) ,, राजारामजी पन्नालालजी ,,
१०१) ,, भवानी शंकरजी मित्तुका भद्रपुर
२५।-) ,, मांगीलाल बनवारीलाल ,,
८॥) ,, रुद्रलालजी शेष्ठ ,,
४२≡) ,, जगन्नाथदासजी गोयल भिवानी
१६॥।=) ,, स्वामीदयालजी कटियार भिन्ड
८।≡) ,, गोपाल चन्दजी ,,
१०१) ,, केदारनाथजी मेरठ
१०१) ,, देवकरनदास रामसरनदास ,,
१०१) ,, शंकरलालजी दुर्गाप्रसादजी ,,
१०१ ,, कन्हैयालालजी ,,
१०१) ,, रामनाथजी बैजनाथजी ,,
१०१) ,, लालचन्दजी गंगासहाय ,,
१०१) ,, वसन्तलालजी वेनीप्रसादजी ,,
१०१) ,, रामकिशनजी रामस्वरूपजी ,,
५१) ,, चिरन्जीलालजी लच्छीरामजी ,,
५१) ,, बारदाना ऐसोसियेशन ,,
५१) ,, बृजभूसनलालजी भारतभूसन ,,
५१) ,, किरोड़ीमलजी कासीरामजी ,,
२५।-) ,, रामकुवारजी बजाज मारवाड मून्डवा
१०१) ,, विट्ठलदासजी मानजी राजकोट
३७॥) ,, स्योचन्दरायजी रतनगढ़
३७॥) ,, नौरनारायजी नागरमल ,,
६।=) ,, वृजमोहनजी ,,
६।=) ,, डूंगरसीदासजी रामवक्सजी ,,
४≡) ,, गुप्तदानी ,,
८।≡) ,, पोकरमलजी नानूरामजी रोहतक
८।≡) ,, जीतरामजी बल्लूरामजी रंगबीमोट

१०१) श्री० हरीबक्सजी कायरा कोसला
८।≡) ,, बैजनाथजी छेदालालजी लखीमपुर खीरी
८।=) ,, रामस्वरूपजी दुबे लश्कर
१०१) ,, चानाबाई सरदारशहर
२५।-) ,, राधाकिशनजी टाटिया ,,
२५।-) ,, गुलाबमनी ,,
२५।-) ,, गिरधारीलालजी टाटिया ,,
२५।-) ,, रामकटोरी ,,
१६॥=) ,, भवरलालजी खेमचन्दजी सागानी ,,
१६॥।=) ,, नानगरामजी हनुमतरामजी कन्दोई ,,
८।≡) ,, हरद्वारीमलजी डेडराजजी पंसारी ,,
८।≡) ,, हनुमानबक्सजी सराफ ,,
६=) ,, रामचन्दजी मोहनलालजी सुजानगढ़
१८॥) ,, राधाकिशनजी रामदयालजी ,,
६।=) ,, हीरालालजी फूसराजजी ,,
४॥≡) ,, जेठमलजी जुहारमलजी ,,
६।=) ,, गजानन्दजी चिम्मनरामजी ,,
२५।-) ,, गिरधारीलालजी बिहारीलालजी शेरमारी
१००) ,, रामचन्दजी सीतारामजी सुरतगढ़
८।=) ,, गनेशप्रसादजी सराफ सागर
१६॥।=) ,, हनुमानदासजी द्वारकादासजी शेगांव
८।≡) ,, बृजलालजी मंगलचन्दजी ,,
३३॥) ,, गंगाबाईजी हैदराबाद
१०१) ,, राधाकिशनजी बिहानी हनुमानगढ़
१६॥।=) ,, सोहनलालजी सुगनचन्दजी हिन्दुमलकोट
१५) ,, स्वामी गंगाप्रसादजी तिवारी हट्टा

योग—१३६२)

श्री० भगवान भजनाश्रम में माईयों को सामान बांटने वाले सज्जनों की नामावली महीना २ का

१०१) श्री० बिहारीलालजी झण्डूलालजी अमृतसर
१०००) " एक सज्जन द्वारा प्राप्त कलकत्ता
२१८॥) " सरस्वती देवीजी खेमका "
२०६≡) " मदनलालजी देवीदत्तजी "
४०) " रुक्मनी देवीजी सर्राफ "
१६॥=) " सरस्वती बाईजी "
५०) " बलदेवदास पच्चीसीया "
१०) " हरेकिशनजी शिवप्रतापजी कारंजा
१८०) " बाबूरामजी राठी ग्वालियर
२॥) " विशेश्वरलालजी कैसोरामजी टीटलगढ़
१०) " श्यामलालजी बारदाना वाले देहली
११६।=)॥ " नागरमलजी पटना वालों की स्त्री पटना
१८७-) श्री० पोकरमलजी गजानंदजी बलरामपुर
१८३॥) " मदनचंदजी पसारी "
७१) " द्वारकादासजी टेकचंदजी बर्मा
५५) " सीताबाईजी टेकचंदजी "
४४) " भीकारामजी सर्राफ भद्रपुर
२८) " मगनीरामजी बनवारीलालजी "
२५) " सूरजमलजी कन्हैयालालजी "
३५) " गुमानीरामजी श्रीरामजी रामभोला
६००) " तुलछीदेवीजी हनुमानगढ़
१०) " राधाकिशनजी विहार

३११५॥-) योग

श्री० भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में मासिक चंदा देने वाले सज्जनों की नामावली महीना एक का

३४) श्री० माधोलालजी मुन्नालालजी अमृतसर
१८) " अमोलकरामजी "
१२) " नगीनचंदजी ओ३म्प्रकाशजी "
२०) " रामचंदजी देसाई अहमदाबाद
३॥) " मुन्शीजी पांडे पां[illegible]
२५) " हीरालालजी मानिकलालजी बर्मा
६) " उमरावलालजी रिटायर्ड बलरामपुर

१०८॥) योग

श्री० भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सालाना चन्दा देने वाले सज्जनों की नामावली

२) श्री० हरीहरप्रसादजी अग्रवाल बेगूसराय
१२) " गनपतरायजी विन्दूका भिवानी
२४) " दिलसुखरायजी भगवानदासजी
६) " सत्यनारायणजी पन्सारी सरदार शहर
२५) " रामदत्तजी रामस्वरूपजी सकीट

६६) योग

श्री० भगवान भजनाश्रम एवं श्री० वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता वगैरह देने वाले सज्जनों की नामावली

(मिती असाढ़ सुदी ६ सं० २००६ से सावन सुदी ८ सं० २००६ तक का महीना १ का)

आय

६११४॥।=)॥ सहायता प्राप्त
११३६२) माई भजन को प्राप्त
१०८॥।) मासिक चन्दा का प्राप्त
६६) सालाना चन्दा प्राप्त
३११५॥-) विशेष सहायता का प्राप्त

२०७७०॥≡)॥

व्यय

१२७६८॥) भजन करने वाली माईयों को पैसा दीना
४७०) कर्मचारियों को वेतन का दीना
१५६॥=) वृद्धमाइयों को दीना
७०) कार्यकर्त्ताओं की रसोई खर्चा का लागा
३४०।=) खुद रा खर्चा का लागा

१३८३८॥)

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं व समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

"नाम-माहात्म्य" भगवन्नाम प्रचार की दृष्टि से निकलता है इसका प्रचार जितना अधिक होगा उतनी ही भगवन्नाम प्रचार में वृद्धि होगी, अतः कृपा कर समस्त प्रेमी पाठक इसे अपनायें। इसका मूल्य बहुत कम केवल २≡) है। आज ही आप मनीऑर्डर द्वारा रुपया भेजकर इसे मंगाना आरम्भ कर दीजिये और अपने इष्ट मित्रों को भी इसे मंगाने के लिये उत्साहित कीजिये। नमूना मुफ्त मंगावें।

पताः—व्यवस्थापक 'नाम-माहात्म्य' श्री भजनाश्रम
मु. पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

श्री भगवन्नाम जप कराइये

श्री वृन्दावन में लगभग ८५० गरीब माइयां प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घन्टे परम मंगलमय श्री भगवन्नाम जप एवं संकीर्तन करती हैं। इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र व पैसों की सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्री भगवन्नाम जप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुग में संसार सागर से पार उतरने का एक मात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम जप करना ही शास्त्रों में वर्णित है। सभी महानुभावों को स्वयं अधिक से अधिक भगवन्नाम जप करने की चेष्टा करनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओर से गरीब माइयों द्वारा श्री भगवन्नाम जप कराना चाहें वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रम में लगभग ८५० गरीब माइयां आती हैं। जिनमें से इस समय लगभग ५०० माइयां दानदाताओं की ओर से भजन कर रही हैं। बाकी माइयों से भजन कराने के लिये हम सभी सज्जनों से निवेदन करते हैं कि अपनी-अपनी श्रद्धा व प्रेम अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने माह के लिये आप चाहें अवश्य भजन कराइयेगा एवं अपने इष्ट मित्रों को भी भजन कराने के लिये प्रोत्साहित कीजियेगा।

एक माई को नित्य प्रति साढे चार आने की सहायता दी जाती है। इस हिसाब से एक माह का ८।≈) और एक वर्ष का १०११) खर्च लगता है। पत्र व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजने का पताः—

मन्त्री—भगवान भजनाश्रम
मु० पोस्ट, वृन्दावन।

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित व गौरगोपाल मानसिंहजी का संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान भजनाश्रम वृन्दावन [illegible] से प्रकाशित

गुरुकुल
कांगड़ी
अंक ११
DELHI

विषय सूची

कार्तिक संवत् २००६

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपना ग्राहक नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्र व्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजियेगा।

व्यवस्थापक :- "नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
मु०—पोस्ट वृन्दावन (मथुरा)

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन नवम्बर सन् १९५२ | अंक ११

* प्रार्थना *

नाथ मैं थारो जी थारो ।

चोखो बुरो कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूं सो थारो ।
बिगड्यो तो प्रभु बिगड्यो थारो, थांसू कदे न न्यारो ॥
बुरो बुरो मैं बहुत बुरो हूं, आखिर टाबर थारो ।
बुरो कहाकर मैं रह जास्यूँ, नाम बिगड़सी थारो ॥
थारो हूं थारो ही बाजूँ, रहस्यूँ थारो थारो ।
आंगलियां नुँह परे न होवे, या तो आप विचारो ॥
मेरी बात जाय तो जावो, सोच नहीं कछु म्हारो ।
मेरे बड़ो सोच यो लाग्यो, विरद लाजसी थारो ॥
जंचे जिस तरां करो नाथ, अब मारो चाहे तारो ।
जांघ उघाड्यां लाज मरोगा, ऊँडी बात बिचारो ॥

"परम-प्रेमी-दशरथ"

(लेखकः—शास्त्री पं० श्री गोविन्द दुबे 'साहित्यरत्न')
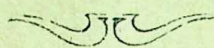
बंदउँ अवधभुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तन इव परिहरेउ॥

जिन प्रभु के पावन नाम का एक उच्चारण ही संसार के समस्त बन्धनों का समूल उच्छेदन कर देता है; जिनके चरणोदक से निसृत पुण्य-सलिला भगवती भागीरथी पुण्यभूमि वसुन्धरा को अपने कल-कल नाद से आनन्दित करती हुई अविरत प्रवाहित होकर लोकों के कल्मषों का प्रक्षालन करती हुई धराधाम पर अवतीर्ण हुई हैं; एवं जिनकी अहैतुकी अनुकम्पा के आश्रयभूत भगवान् मरीचिमाली अपनी सहस्र-दीधित रश्मियों द्वारा धराधाम को आलोकमय बनाए हुए हैं; कुमुदिनी नामक चन्द्रदेव जिनकी कृपा-कटाक्ष के सहारे ही संसार को शीतलता, औषधियों को रस और जगत को आनन्द प्रदान करते हैं, माया नर्त्तकी जिस सूत्रधार की इच्छा के सहारे जगत् का उद्भव, पालन और संहार करती है और उसकी इच्छा के विपरीत जो अपने कर्तव्य पथ से विचलित नहीं हो सकती वही सबका स्वामी, जगत का आधार, लोकों का आनन्द प्रदाता जिसका पुत्र हो; भला उन महाभाग अवधेश महाराज दशरथ के पुण्य को कौन कहे—

दशरथ गुन गन बरनि न जाई।
अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥

महाराज दशरथ द्वितीय मनु थे पूर्व जन्म में आपको यह वरदान प्राप्त हुआ था कि—

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई।
नृप तव तनय होब मैं आई॥

बस, एक मात्र इसी वरदान को पूर्ण करने के लिए अखिल ब्रह्माण्डों के अधीश्वर; परम ब्रह्म को कोटि कन्दर्प दर्प दमनीय रूप धारण कर दशरथ-अजिर-बिहारी होकर अवतीर्ण होना पड़ा, अवधवासियों को सुख और माता कौशल्या को आनन्द इसी वरदान का परिणाम था। महाराज दशरथ ने अपने पूर्व याचित वरदान में यह भी मांग रखा था कि आप मेरे केवल पुत्र ही हों, मेरी अनुरक्ति, मेरा प्रेम, अनुराग आदि जो भी कुछ हो वह सब आपमें पुत्र रूप में हो—ब्रह्म रूप में नहीं—

सुतविषयिक तव पद रति होऊ।
मोहि बड़ मूढ़ कहइ किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना।
मम जीवन तिमि तुम्हहिं अधीना॥

महाराज दशरथ का भगवान् राम के चरणों में सच्चा प्रेम था किम्वा सत्य और प्रेम दोनों ही जिनके रामपद में थे। मानस के विषय पर विचार करने से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उनका सत्य राम प्रेम के पीछे था। एक बार वे अपने सत्य को रामप्रेम के सामने पलट सकते हैं; परन्तु राम को आंखों से ओझल नहीं कर सकते। उनका सत्य यदि वशिष्ठ, जो कि रघुवंश के पुरोहित थे, न समझाते तो उसी समय विदा हो गया था; जब कि अपनी यज्ञ रक्षा के लिए आगन्तुक गाधिसुत भिक्षुक बने। विश्वामित्र की महाराज ने बड़ी आवभगत की, स्वर्ण-सिंहासन पर समासीन करके आपकी षोडशोपचार पूजा की; अपने भाग्य की सराहना करते हुए आप उनसे कहते हैं कि—

केहि कारन आगमन तुम्हारा।
कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

इसके उत्तर में जब विश्वामित्रजी ने—

अनुज समेत देहु रघुनाथा।
निशिचर वध में होब सनाथा॥

मांगा तो आपकी मुखाकृति इस प्रकार बदल गई जैसे जवास-पत्र पर पानी पड़ गया हो अथवा इस प्रकार सहम गए जिस प्रकार मृग सिंहनाद से भयभीत हो जाता है उनके शब्दों का तिरस्कार करते हुए आप कहते हैं कि—

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाई।
राम देत नहिं बनई गुसाई॥

इस स्पष्ट नाहीं का विश्वामित्र और वशिष्ठ दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ा; वशिष्ट के समझाने से किसी प्रकार सत्य रक्षण हो पाया; यह था उनका राम प्रेम। उनके प्रेम में ऐसा किसी प्रकार का दोष नहीं आ पाया। वशिष्ठ की आज्ञा विश्वामित्र के राम लक्ष्मण को साथ भेजने में समर्थ हुई।

राम प्रेम की द्वितीय झांकी का दर्शन महाराज दशरथ में हम जनकपुरागत दूतों से सम्भाषण में प्राप्त करते हैं; सभा एकत्रित है, सिंहासन पर ससमाज समासीन महाराज ने ज्यों ही सुना कि जनकपुरी से दो अनुचर-पत्र लेकर द्वार पर उपस्थित हैं; संभवतः राम लक्ष्मण का समाचार लेकर आए हैं वे बस क्या था, महाराज ने उन्हें सादर बुलाया, सम्मान किया, दूतों द्वारा पत्र प्राप्त कर उसके पढ़ते तो आप स्तब्ध हो जाते हैं; जिस प्रकार कोई नायिका अपने दूर देश गत पति का पत्र पाकर प्रसन्न होती है, कुछ वियोग और आनन्द का सामंजस्य रहता है उस समय उसके हृदय में वही स्थिति है इस समय महाराज की—

वारि विलोचन बांचत पाती।
पुलक गात आई भरि छाती॥
राम लखन उर करवर चीठी।
रहि गे कहत न खाटीमीठी।

पत्रवाहक अनुचरों को महाराजने अपने समीप बिठाला और अब अपने प्रियतम के विषय में पूछने लगे। इस बातचीतमें कितना स्वारस्य है महाराज दशरथ की आंतरिक स्थिति का कितना सुन्दर चित्र है जिस वात्सल्य के नद में वे उद्वेल रहे हैं।

भैया कहहु कुशल दोउ बारे।
तुम नीके निज नयन निहारे।
× × × ×
जा दिन ते मुनि गए लवाई।
तबते आजु सांचि सुधि पाई॥

इस प्रकार महाराज की स्थिति का दर्शन करके दूतों ने बड़े सुन्दर शब्दों में प्रेम-प्रताप और वीर रस मिश्रित वाणी में राम की कथा का वर्णन कर महाराज का समाधान किया, गुरुदेव को दूतों द्वारा समाचार सुनाया; रनिवास में जाकर स्वयं समाचार कहा, भरत को बरात तैयार करने की आज्ञा दी, नगर निवासियों को बरात चलने का आदेश दिया; आज अयोध्या में चारों ओर आनन्दके बधावे बज रहे हैं; गलियों में अरगजा का छिड़काव, तोरण, केतु, पताका, मण्डप आदि ने अयोध्या को शोभा सहित बना रखा है; आज अयोध्या इस प्रकार सुहावनी मालूम हो रही जिस प्रकार सती ललना अपने पति की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए सोलहों शृंगार धारण करने जारही हो। सब प्रकार तैयारी हो जाने के पश्चात बरात ने प्रस्थान किया। जनक द्वारा मार्ग की सुविधाओं का सुख प्राप्त करते हुए महाराज ससमाज जनक नगर में पहुँच गए; जनवासे में स्थित महाराज का मन-मधुप रामके मुखकमल के पराग का लुब्ध बना हुआ है। विश्वामित्र की आज्ञा उस मधुप को पराग दान देने में सहायक हुई; आपकी राम से इस प्रकार भेंट थी जिस प्रकार मृतक शरीर की प्राणों से मिलन। इतने दिनों का राम का वियोग आपको मृतक वत बनाए था, इसके साथ यह बात भी थी कि आपने अपने वरदान में यह मांग रखा था कि मेरी स्थिति आपके बिना ऐसी हो जैसी मणि के बिना सर्प और जल के बिना

मचली। कोई यह कहे कि इतने समय में महाराज ने अपने प्राणों का त्याग नहीं किया उत्तर—मणि के बिना मणिवाला सर्प व्याकुल रहता है, अचेत रहता है परन्तु मरता नहीं है इसी वरदानके कारण आप अचेत से रहे, मृतक से रहे परन्तु प्राणों का त्याग नहीं सके। दूसरी उपमा में आपने जल-मीन के सम्बन्ध को बताते हुए वरदान मांगा था इसलिए आपका शरीर शांत हुआ। विवाहोपरान्त आप सकुल सानन्द अयोध्या में आकर रहने लगे।

राज्य कार्य संचालन कार्य में व्यस्त महाराज ने स्वाभाविक हाथ में मुकुर लेकर मुख देखा कर्ण के समीप के सफेद केश यह सूचना दे रहे हैं कि राज्य का भार राजकुमार को देकर आप विरत हों; बस क्या था समाचार मंत्रियों को सुनाया गया; गुरु महाराज जो विधि गति छेकी थे उनकी सेवा में यह प्रस्ताव रखा गया; सबने सानन्द एक स्वर से इसका अनुमोदन किया अब तो अयोध्या की सजावट दिन दूनी रात चौगुनी होने लगी; नगर निवासी ऐसे प्रसन्न हो रहे हैं मानो जन्म दरिद्री को पारस मिला हो, अंधे को नेत्र अथवा जन्म के मूक को सुन्दर वाणी मिलने पर जो सुख होता है; आज अवध निवासियों को वही सुख हो रहा है स्थान-स्थान पर वन्दनवार, केतु तोरण, पताका आदि से नगर को सजाया जा रहा है, गलियों में सुगन्धित द्रव्यों का छिड़काव हो रहा है। बाजे बाज रहे हैं, आनन्द मानो उमड़कर बह चला हो। चोपदार, छड़ीदार, आदि सभी उस आनन्द के भागी बने हुए हैं।

यह स्वाभाविक होता है कि जहां आदमी अच्छे होते हैं उनमें कोई एक दुर्जन भी होता है; वह स्वभाव से लाचार होने के कारण किसी की उन्नति नहीं देख सकता; मन्थरा इनमें से ही एक थी; अयोध्या की सजावट उसे असह्य हुई। वह थी महारानी कैकेयी की विशेष दासी (Special midwife) उसने उस कैकेयी को जाकर उकसाया जो कुछ समय पहिले यह कह रही थी कि—

जो विधि जनम देई करि छोहू।
होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥

उसको इस अयोध्या के राज्य को नाश करने वाली सिद्ध कर दिया।

महाराज दशरथ अन्य रानियों की अपेक्षा कैकेई से विशेष प्रेम करते थे इसका कारण था रूप लावण्य; साथ ही साथ वह कार्य कुशल और कर्तव्यपरायणा भी थी। उसकी दक्षता से प्रसन्न तभी देवासुर संग्राम में प्रसन्न हुए महाराज ने उसे दो वरदान देने को भी कह दिया था। यह दुष्ट इन्हीं वरदानों के द्वारा आज अवध का विनाश करेगी। राम राज्याभिषेक का सुख समाचार महाराज दशरथ कैकेई को भी सुनाने के लिए उसके भवन में आए; उन्हें दासी द्वारा मालूम हुआ कि वह तो कोप-भवन में है, नीचे लेट रही है, बाल बिखर रहे हैं समस्त आभूषणों से रहित कर रखा है शरीर जिसका। महाराज ने बहुत मनाया अपनी वीरता, धीरता और साहसिक शब्दों में उसकी खूब मनावट की पर हाय रे वह कब मानने चली थी। वह तो सरोष सर्पिणी की तरह बोली—

मांगु मांगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहे वरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥

महाराज ने अनेकों बार कहा, और ज्यों ही रामजी की शपथ खाकर वरदान देना स्वीकार किया कि वह उठकर खड़ी होकर बोली—(१) पहिले वरदान में भरत को राज्य और दूसरे में राम को १४ वर्ष का वनवास? महारानी कैकेयी के इन मृदु वचनों का महाराज पर विषैले तीर की भांति प्रभाव पड़ा, उनकी मानसिक, शारीरिक एवं वाचिक तीनों प्रकार की स्थिति में अन्तर हुआ; कवि ने उसे बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—

सुनि मृदुवचन भूपहिय सोई।
ससिकर छुअत विकल जिमि कोई।

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा ।
जनु सचान बन झपटउ लावा ॥
विवरन भयउ निपट नरपालू ।
दामिनिहतेउ मनहुं तरु तालू ॥

अब हमें यहां यह देखना है कि महाराज का सत्य और रामप्रेम अथवा सच्चा रामप्रेम कितना था। कैकेई को अपने वरदान लेने को बार बार समझा रहे हैं देवि। क्यों मुझे इस कुसमय में धोखा दे रही है—मेरी स्थिति तो इस समय यह हो रही है कि योग सिद्ध के समय किसी यती को अविद्या पथ भ्रष्ट कर दे। मेरी अनेक जन्मों की तपस्या के परिणाम प्रभु की निष्कामक दुष्टा तूने बुरे समय धोखा दिया यदि मुझे पहिले से ही इस बात का पता होता तो मैं कभी भी तुझे इस प्रकार वरदान नहीं देता।

महाराज दशरथ का सत्य राम प्रेम के पीछे था; वे सत्य को राम प्रेम के आगे छोड़ सकते हैं परन्तु राम का छोड़ना उन्हें असह्य था; यहां भी उनकी बड़ी द्विविधा जनक स्थिति हो रही है एक ओर है सत्य रक्षण और दूसरी ओर है राम प्रेम। मंत्री आये, राम को बुलाया, सब कारण उन्हें बताया गया महाराज का तो वही राग था जो अब तक अलापा जा रहा था—

विधिहि मनाउ राउ मन माहीं।
जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी।
विनती सुनहु सदाशिव मोरी॥
आशुतोष तुम अवढ़र दानी।
आरति हरहु दीन जन जानी॥

— — — —

सब दुख दुसह सहा वह मोई।
लोचन ओट राम जनि होई॥

राम आए और उन्होंने अपने सत्य रक्षण के लिए साफ यह कह दिया कि—

ताल किए प्रिय प्रेम प्रमाहू।
जगजस जाइ होइ अपवादू॥

संभवतः पूर्ववत महाराज यहां भी यदि राम जैसा बेटा न होता तो अपने सत्य की कसौटी से नीचे उतर आते।

महाराज दशरथ की राम में माधुर्य भाव की अनुरक्ति थी, एश्वर्य का उनमें अभाव था वे यह कभी भी नहीं मानते थे कि राम ईश्वर भी हैं वे उन्हें अपना पुत्र ही समझते थे तब ही तो आप इस जगह यह कहते हैं कि—

सुनहु राम तुम्ह कहं मुनि कहहीं।
राम चराचर नायक अहहीं।

मैं नहीं कहता मुनि कहते हैं; कौशल्या और दशरथ के चरित्र में इतना भी वैषम्य है; कौशल्या के पास ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों ही थे परन्तु महाराज के पास एक ही माधुर्य इसीलिए वे स्थान स्थान पर महाराज को लौकिक व्यवहारों की शिक्षा देती हुई प्रतीत होती है। तो इतना होते भी महाराज ने राम को वनवास न जाने के लिए अनेक उपाय किए परन्तु राम सा बेटा कब मानने चला था—राय राम राखन हित लागी।

बहुत उपाय किए छल लागी॥

महाराज की पिपासा इतने से भी शान्त न हुई; राम लक्ष्मण और सीता जब वन जाने को दरवाजे पर प्रस्तुत हैं; सुमंत्र तुम जाओ और दोनों सुकुमार बेटों को ४ दिन गंगा के किनारे इधर-उधर घुमाकर वापिस ले आना। जाओ रथ तैयार करके चले जाओ। राजाज्ञा का सुमंत्र ने तत्काल पालन किया। अयोध्या के सर्वस्व को रथारूढ़ करके वह वहां से निकल गया। नगर के व्याकुल नरनारी आज राम वियोग में इस प्रकार दुखी हो रहे हैं मानों उनकी समस्त सम्पत्ति को किसी ने छीन लिया हो। वह अयोध्या जो आज तक सोलहों शृंगार से युक्त युवती की भांति अपने प्रियतम को प्रसन्न करने के लिए लालायित हो रही थी आज अनुत्नवत विधवा की भांति शोभा शून्या हो रही है, नगर शमसान हो रहा है, नगर

के नरनारी भूत के से मालूम पड़ते हैं, बागों की शोभा पर मानो तुषार पड़ गया हो, वे वीथिएं जिनमें विहार करते सरकार राघवेन्द्र जिस ओर से निकल जाते थे आनन्द ही आनन्द छा जाता था आज मुरझा रही हैं। नदी, तालाब आदि उस करुण रसक अथाह सागर के अंग बने हुए हैं। भगवती भागीरथी के पुण्य तट पर पहुँचकर सुमंत्र ने महाराज का संदेशा कहा, और लौटने के लिए आग्रह किया परन्तु भला, राम कब लौट सकते थे, सुमंत्र भगवान राम को आगे करके वापस लौट आए।

इधर महाराज को सुमंत्र के आने का ही अवलंब था; आप मूर्छित हो रहे हैं शरीर की सुधि किसे है जब मन अपने प्रियतम के चरणों का लुब्ध मधुप बन रहा हो। सुमंत्र लौटा सुमंत्र की भी बड़ी बुरी स्थिति थी वह तो बेचारा हत्यारा सा मालूम पड़ता था, इधर राम का वियोग और उधर राजाज्ञा की द्विविधाजनक स्थिति उसे महाराज तक ला पाई, नहीं संभवतः महाराज से पहिले वह चल बसा होता। महाराज व्याकुल हैं और उसमें भी वही 'राम राम' चिल्ला रहे हैं सुमंत्र ने प्रणाम किया। आवाज सुनकर महाराज यही कहते हैं कि —'कह सुमंत्र कहं राम' वे तो एक बात सुनना चाहते हैं कि—

आने फेरि कि वनहिं सिधाए।
सुमंत्र समस्त कथा कह सुनाई।
सखा राम सिय लषन जहं जहां मोहि पहुँचाउ।
नाहित चाहत चलन अब प्राण कहउं सतिभाउ॥

— — — —

करहिं सखा सोइ वेगि उपाऊ।
राम लषन सिय नयन देखाऊ॥

मंत्री ने अपनी यात्रा का सांगोपांग वर्णन किया और यह कह दिया कि सानुज राम और सीता वनवास को चले गए, लौटे नहीं। फिर क्या था! महाराज की व्याकुलता बढ़ती गई; रघुवंश का वृक्ष जिसकी छाया में अब तक अवधवासी सुख पूर्वक अपना समय बिता रहे हैं, जिसकी आतपहारिणी छाया के नीचे किसी भी अवधवासी को किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था आज सूखने जा रहा है; राजरानी कौशल्या को वैधव्य योग आने की अशुभ सूचना उस समय के सगुन बता रहे थे. समस्त रनिवास, और नगर की कुछ समय पूर्व बढ़ती हुई बेल पर पाला पड़ा। रघुवंश का सूर्य आज कैकेयी रूपी राहु द्वारा ग्रस लिया गया। अपने राम प्रेम को जल मीन की भांति सिद्ध करने के लिए अपने प्रिय प्रभु के वियोग में महाराज दशरथ ने राम-राम कहते हुए अपने प्राण पिंडों का विसर्जन कर दिया—

सो तनु राखि करबि मैं काहा।
जे हित प्रेम मन मोर निबाहा।
हा रघुनन्दन प्राण पिरीते।
तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लषन हा रघुबर।
हा पितु हित चित चातक जलधर।
राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर विरह राउ ग(सुरधाम॥

यह है महाराज के राम प्रेम का आदर्श जिसे उन्होंने कहकर नहीं करके दिखा दिया—

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाराज दशरथ का राम प्रिय प्रशंसनीय था। वे राम के बिना एक क्षण नहीं जीवित रह सकते थे। इससे यह सिद्ध हो गया कि उनका रामजी के प्रति सच्चा प्रेम था अब हम कवि के शब्दों में इस लेख की समाप्ति करते हैं—

जियन मरन फल दसरथ पावा।
अंड अनेक अमल जल छावा॥
जियत राम विध वदन निहारा।
राम विरह करि मरन संभारा॥

भगवान की 'शरणागति' सांसारिक जीवन का बीमा है।

(लेखक—श्री॰ देवकीनन्दनजी बन्सल)

हमारी नई पीढ़ी "आकबत की बात जाने कोई क्या" की भावना से ऐड़ी से चोटी तक अभिभूत है। जीवन की असीम आवश्यकताओं, विज्ञान के चमत्कारों और जड़वाद से घिरे हुए नौजवान को जब रोटी का प्रश्न घेरता है तो वह विद्रोही बन जाता है और जब फिर उसे अन्न वस्त्र का प्रश्न हल करने का समाधान नहीं मिलता तो उसकी प्रवृत्ति 'निर्माण' से हटकर 'ध्वंस' की ओर आमुख हो जाती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह स्वाभाविक है; किन्तु उचित नहीं।

३२ वर्ष की अपनी आयु है, जिसमें १४ वर्ष का जीवन उन सभी परिस्थितियों में से प्रायः गुजरा है, जो कि एक बेकार, गरीब और तंग आदमी की होती हैं—एक खर्चीले रोबदार और सम्पन्न आदमी की होती हैं—एक अपमानित विपत्ति ग्रसित प्राणी की होती हैं और एक हज़ारों रुपये मासिक की आय वाले मनुष्य की होती हैं; मैंने कभी अपने को अकेला नहीं पाया और न कभी कोई दूसरा मेरे साथ रहा।

वही एक मात्र आधार, वही एक मात्र आश्रय, साथी, स्वामी, मित्र और रक्षक साथ रहा है। आगे भी वे अवश्य साथ में रहेंगे और अगर नहीं रहेंगे तो क्या होगा इसकी कल्पना ही मेरे लिये बड़ी भयावह है। दिल उस अवस्था का विचार करने में भी डरता है! हाँ! अगर ऐसा हुआ और बस चला तो सिर फोड़ कर प्राण अवश्य दे दूँगा।

यह सब कुछ आत्मप्रशंसा के लिये नहीं लिख रहा हूँ। केवल अपने जैसे हजारों, लाखों नवयुवकों को अपने अनुभव की बात बताने के उद्देश्य से हैं। जिससे मेरा विश्वास है कि उनको लाभ के अतिरिक्त हानि तो न होगी।

मुझे याद नहीं उनकी दया मुझे नहीं मिली हो, मुझे स्मरण नहीं आशा और विश्वास से मन कभी अस्थिर हुआ हो, हाँ इतना अच्छी तरह याद है कि मैंने कभी ऐसा कुछ नहीं किया, जिसके एवज़ में उनकी वह महानतम कृपा, जो जीवन में मुझे मिलती रही है, पाने का मैं अधिकारी मान सकूँ।

आज कल हर आदमी दुनिया के सुधार की बात करता है। जब कि वर्तमान वैज्ञानिक भी 'मानव' को १० लाख वर्ष से अधिक का पृथ्वी पर मानते हैं। क्या १० लाख वर्ष के इस विशालकाय समय में, प्राणी दुनियाँ को सुधारने के अतिरिक्त और कुछ करता रहा है? क्या यह नहीं हो सकता कि भविष्य में और लाख दो लाख वर्ष तक यही संघर्ष चलता रहे? क्या १ रत्ती भर भी वह सुधार का प्रश्न संसार के सामने कम हुआ?

अगर नहीं तो इस बात की ही क्या गारंटी है कि अगले वर्षों में इस समस्या का हल निश्चय ही हो जायगा।

इसलिये अगर हम अपने अपने बारे में सोचना प्रारम्भ करदें तो व्यक्ति से बना समाज भी स्वयं ठीक होने लगेगा। हमें अपने बारे में सोचना होगा और तब हम देखेंगे कि शेष समस्याओं का समाधान स्वयमेव होने लगता है।

इस विचार धारा के प्रारम्भ का प्रथम मन्त्र है "आशा, विश्वास और उद्योग :"

किन्तु आशा, असफलता के समय हिल जाती है, विश्वास आशा के दुर्बल होते ही खिसकने

(शेष पृष्ठ १० पर)

— मनुष्य जीवन का उद्देश्य —

(लेखक—श्री रामलालजी पहाड़ा)

मानवी मनकी महत्वाकांक्षा परमात्मा का अनुभव लेने की रहती है। वह इसकी खोज में अनेक प्रयत्न किया करता है। यही कर्तव्य मुख्य है जिसकी अपेक्षा अन्य सब कर्तव्य हीन है। अन्य कामों में व्यस्त रहना बच्चों का खेल है जो खेल समान ही परिणाम हीन होते हैं। इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए आत्म भाव रख सब पर प्रेम करो, निस्वार्थ होकर सब की सेवा करो। इन्द्रिय विकारों को, क्षोभ को, लोभ को और क्रोध को सदा दबाओ। ये दोष अद्वैत आत्म भाव के विरोधी रहते हैं। इषणाएं भी इस भाव की बाधक है। उन्हें भी दूर हटाना भला है। आत्मा का सदा चिन्तन करते रहो। उस एक अमरतत्व के प्रेम में अपने को मग्न रख आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करो। इसके दूत बनकर संसार प्राण और प्रकाश (ज्ञान) का प्रचार करो। आंतरिक आत्मा का ज्ञान होने से वह "सत्य" प्रकट होता है और मनमें प्रतीति हो जाती है कि जीवन का यही मुख्य उद्देश्य है। हर एक प्राणी अपने को पृथक मान अपने ही संकल्प निर्मित संसार में रहता है यथा स्वप्न में स्वप्न सृष्टि बनाकर उसमें रममाण होता है। यथार्थ में परमात्मा एक है और उसके विराट रूप में सब प्राणी उसके रूप रहे हैं। उसकी स्फुरणा से अनेक विकारयुक्त सृष्टियाँ हुई, हैं और होगीं। उसका संकल्प (स्वप्न) विचित्र है और संकल्पजनित पदार्थों के प्रति व्यवहार भी रहस्यमय है। उसकी स्फुरणावश प्रत्येक प्राणी (परमाणु) अभिमान धारण कर देश, काल आदि परिछिन्न हो जाता है और संसार चक्र में पड़कर जन्ममरण के भोग पाता है। वह अभिमानवश सुख, दुख; शीत उष्ण आदि द्वन्द्वों को भोगकर चक्र को सतत गति में रखता है।

यथार्थ में सब प्राणियों के अस्तित्व का मूल एक है जिसे सच्चिदानन्द, पारब्रह्म, आत्मा, भूमा आदि कहते हैं। यह माया (संसार चक्र) के मिथ्या परिवर्तनों से निर्बाधित रहता है। वह निर्विकार, अव्यय, अक्षय, असीम, अज, अनादि, अनन्त है।

स्वप्न सृष्टि के चमत्कारों में मुग्ध न होकर जाग्रत होने का प्रयत्न करना तथा आत्म और अनात्म पदार्थों का विवेक करते रहना आवश्यक साधन है। युग युग में सन्तों ने परम उद्देश्य को पाने के अनेक मार्ग प्रकट किये हैं परन्तु सबका कहना यही है कि 'सत्य के क्षेत्र में पहुँच कर आत्म प्रकाश होना चाहिए जहां पृथक व्यक्तित्व का लय होकर एक अस्तित्व का ज्ञान रहता है।' यथा भिन्नता में एकता का अनुभव होता है। मुख्य पंथ ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग है। ज्ञानी एक आत्मा को सब में देखता है। भक्त अपने इष्ट देव को सब में देखता है। कर्मयोगी और राजयोगी किंवा हठयोगी भी अपने साधनों को इसी भावना से करते हैं। सब का सार यही है कि इन्द्रियों को संयम में रख विषयों से दूर हटकर सरल जीवन बनाओ। समाज में सब पर प्रेम करो और उचित परिश्रम कर अपनी और यथा शक्ति अन्य जनों की सेवा करो। समाज में स्पष्ट व्यवहार करो और प्रामाणिक होकर सत्य भाषण करो। यही जीवन के मुख्य उद्देश्य को पहुँचने का और आत्मानुभव करने का सरल साधन है।

इसको साधने के लिए संकल्प बल को बढ़ाना आवश्यक है। व्यसनों का प्रभाव कायरों पर पड़ता है। साहस पूर्वक उनको अस्वीकार करने वालों से वे स्वतः दूर भाग जाते हैं। संकल्प को बलवान

बनाने के लिए विकार (संवेदना-ज्ञान) इच्छा और क्रिया पर यथोचित निग्रह रखना चाहिए। मन वचन और क्रिया में पूर्ण सामंजस्य रहना चाहिए। इसके लिए प्रति दिन प्रातःकाल स्वच्छ स्थान में बैठकर सब अवयवों को ढीले छोड़ दो और विचारों को भी शांत कर दो। यथा सम्भव परमात्मा का ध्यान रखो। उसकी शक्ति और कृपा पर भरोसा रखो। नियमित समय में नियमित काम पूरा करने का प्रण (वचन) पूरा करने का और सादा भोजन करने का ध्यान रखो। भौतिक पदार्थों की ममता को कम करते रहो। कामनाएं दुखों की जननी हैं। इनका मूलोच्छेद करना ही ठीक है। जब कुछ कामना नहीं है तब संसार में कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता। यही मुख्य साधन है। जो इसमें सफल होता है, वह मानो उद्देश्य पर पहुँचने का आधा मार्ग पूरा कर चुका। सन्तों की कृपा पाना भी आवश्यक है। शरीर और मन को सदा कुछ न कुछ शुभ कर्म में लगा रखना ठीक है। दैनिक कामों को पूरा करने पर यदि समय बचे तो लोक सेवा, स्वाध्याय और परमात्मा के ध्यान में लग जाओ। इस तरह प्रभावों के आने के मार्गों (शरीर, मन, वचन) को रोक रखोगे तो आन्तरिक बल बढ़ेगा और संकल्प उत्तरोत्तर दृढ़ होता जायगा।

प्रारब्ध का सम्बन्ध भूतकालीन कर्मों से (जन्मान्तरों में किये हुए कर्मों से) रहता है। वे उन कर्मों के परिणाम हैं। उनको हटाना कठिन है मनुष्य को भोग स्वातंत्र्य नहीं है। वह कारण कार्य के वृत में बंधा हुआ है। वह कर्म स्वातंत्र्य रखता है अतएव वह शिव संकल्प रखकर वर्तमान में काम करता रहे। जिससे भावी जीवन सुन्दर हो। बहुधा मनुष्य समझते हैं कि भाग्य से सब कुछ होता है यथा 'भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषं' पर इसको समझने के लिए "फलति" वर्तमान का विचार रखना चाहिए। मनुष्य वर्तमान में पूर्व कर्मों का परिणाम भाग्यवश (प्राकृतिक नियमानुसार) पाता है। न कि विद्या और पुरुषार्थ का क्योंकि इनका फल भविष्य में कुछ कालोपरान्त होने वाला है अतएव परिणाम को प्रसन्नता से भोगो और भविष्यत के लिए वर्तमान में विद्या और पुरुषार्थ बढ़ाते रहो। यही कर्म सिद्धान्त का रहस्य है जिसे कर्मयोगी निष्काम रहकर कर्म करता रहता है और योग संसिद्ध रह कर आत्मानुभव (ज्ञान) पाकर परम शांति पाता है। भक्त भी सुख दुःख भोगकर प्राकृतिक जीवन रखना और समाज सेवा करना किंवा सदाचार से रहना ही अपने इष्टदेव की सेवा मानकर आनन्द पाता है। ज्ञानी भी प्रकृति के विधान में ही प्रसन्न रहता है। प्रकृति में भूकम्प, स्फोट, पूर आदि दुर्घटनायें देखकर साधारण जन ईश्वर को बुरा कहने लग जाते हैं। वे चाहते हैं कि ईश्वर सदा उनकी इच्छाओं के अनुकूल काम करते रहें। यह कहना भ्रमात्मक है कि भगवान भक्त के वश में रहता है प्रत्युत सच्चा भक्त भगवान के वश में रहता और सब परिणामों को प्रसन्नता से भोगता है। तमोगुणी मनुष्य स्वार्थदृष्टि से सब का विचार करते है किन्तु सुजनजन उदारता से विचार कर सब का कल्याण चाहते हैं वे विवेक से सत्य और असत्य का ठीक निराकरण कर व्यवहार करते हैं। साधारणजनों में विवेक स्थिर नहीं रहता। वह आरम्भ में आता और कुछ काल में स्वार्थ से दब जाता है। उनकी स्मृति में भ्रम पड़ जाता है, उनकी बुद्धि मारी जाती है। वे इंद्रिय गोचर संसार को ही सत्य समझते हैं। इसके परे उनकी दृष्टि नहीं जाती। इस दोष को दूर करने के लिए जप, कीर्तन, निदिध्यास, उपवास, प्रार्थना आदि साधन है, पर सर्वोपरि सत्संग है, अतएव लोक सेवा कर विचार करते रहो और स्वाध्याय निरंतर करते रहो। कल्पित दुःखों को भविष्य की चिन्ता को छोड़ दो। सदा वर्तमान का ध्यान रख कर्त्तव्य पालन करो। यथा "यद् भावी न तद्भावी, भावीचेन्न

तदन्यथा। इतिचिन्ताविषघ्नोऽयमौषधःकिं न पीयते।' होनहार कभी टलती नहीं। यही विचार चिंता के विष को हटाता है। अतः इसका ही क्यों न ध्यान रखा जावे। इस सिद्धांत का यथोचित ज्ञान हो जाने से व्यर्थ के कामों का अंत होजाता है और चित में परम शांति का लाभ होता है। संशय ग्रस्त जन ही दुःख में पड़कर लोक परलोक दोनों को खोता है। परमात्मा का ध्यान रख कर्त्तव्य पालन करते रहना जीवन का मुख्य उद्देश्य है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि'। कर्म करो फल का विचार मत करो, और निठल्ले मत बैठो।

(शेष पृष्ठ ७ का)

लगता है और तब उद्योग निराशा की गहन निशा में प्रावृत्त होकर अकर्मण्यता को ला बिठाता है।

बस यही वह समय है जब कि मानव को प्रकाश की उन अनवरत प्रवाहित किरणों को थामने की आवश्यकता होती है, और किसी के सहारे की तलाश होती है।

वह सहारा स्वयं अपने पात्र को ढूंढ़ता फिरता है। किन्तु बिना याचना के, बिना बुलाये वह पास होकर भी अपने को छूने नहीं देता। प्यार करने के लिये उसकी स्वर्गमयी भुजायें व्याकुल रहती हैं, किन्तु अधरों को उन्मुख किये बिना वह बलात्कार नहीं करता।

यही वह दुर्लभ प्रसाद है जो 'शरणागति' से प्राप्त होता है। जिसके लिये समस्त गीता की रचना हुई। जिसके लिये किसी का रथ चलाना पड़ा, किसी के झूठे बेर खाने पड़े, और किसी के लिये उन्हें गालियाँ सुननी पड़ीं, लांछन सहन करने पड़े।

उसी परम सम्पत्ति "शरणागति" की प्राप्ति हो, उनकी दया पूर्ण रूप से 'भर कलश' प्राप्त है, यह विश्वास रहे, यही अनुभव होता रहे तो फिर क्या चाहिये ; जो कमी हैं उसे पूरा करोगे मालिक ? दया के सागर द्वार से कोई निराश नहीं जाता !! तब फिर यह और हो मेरे दाता !

— स्वधर्मानुष्ठान —

(ले० वाणीभूषण श्री राजेन्द्रमोहन शर्मा, साहित्यालंकार)

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह ॥
गीता

यह है भारतीय पद्धति और हम हैं भारत वासी। हमारे शास्त्रीय सिद्धान्त केवल व्यक्ति विशेष, जाति विशेष, वर्ग विशेष अथवा देश विशेष पर ही लागू नहीं होते वास्तव में जिन ब्रह्मर्षि और महर्षियों की हम सन्तानें हैं जिन्होंने सहस्रों वर्ष पर्यन्त वनों में आतप वर्षा और वायु के तीव्रतम प्रहारों को आजीवन सहन किया। जिनकी दैविक और भौतिक कठिन से कठिन परीक्षायें समय २ पर होती रहीं किन्तु पाषाण प्रतिमा की भाँति जो अपने दृढ़ निश्चय से न डिगे। जिन्होंने मन जैसे परम चँचल इन्द्रिय संचालक पर वैराग्य और योग से नियंत्रण किया। उन्होंने ही अनुभव की कसौटी पर प्रत्येक सिद्धान्त को कस कर विश्व के मानव मात्र के लिये आदर्श रूप में प्रस्थापन कर के छोड़ा है।

उन उदारचेता महर्षियों ने किसी के प्रति किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया। "उदार चरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त को, स्वतः अपने जीवन में आचरित करते हुए प्रशस्त राजमार्ग के रूप में विश्वभर के मानव को दे दिया। अनुवर्तन करना लोक का कार्य है फिर भले ही मानव उसे अपनाए या ठुकरादे। यों तो प्राकृतिक नियमानुसार "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः" प्रायः जन साधारण महज्जनों के आचरणों को अपनाते ही हैं किन्तु शासक की भाषा और भेष का अनुकरण भी होनास्वाभाविक रहा है। पूर्व इतिहास और अनुभव इसके प्रत्यक्ष साक्षी हैं। संसार को एक बार नहीं अनेकों बार ही तो इस प्रकार की विकट परिस्थितियों में होकर निकलना पड़ा है। परिणामतः ऋषि प्रणीत शास्त्रोक्त मानव-जीवन कल्याणकारी. अनुभवसिद्ध आचरणीय वे सिद्धांत, मानव मस्तिष्क से दूर हटते चले गये। बस एक मात्र यही कारण है कि आज का मनुष्य विकृत होकर दानव की श्रेणी में पहुंच रहा है। यदि न्याय दृष्टि से देखा जाय तो प्राचीन प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल का दानव गणना में रखा जाने वाला प्राणी, अपने स्वधर्मानुष्ठान में प्राणों की आहुतियां देने में भी पीछे न रहा।

आज पाश्चात्य भाषा और भेष का बाहुल्य है तदनुसार ही यहाँ के मनुष्यों की वृत्तियाँ भी बन चुकी हैं। अपने पूर्वजों के निर्णीत सिद्धान्तों पर विचार करने तक का न तो किसी के पास समय है और न कोई सोचता ही है। प्रत्येक मनुष्य भौतिक प्रतिस्पर्धा के चक्र में परिभ्रमण कर रहा है। इर्ष्या और द्वेष की निरंतर प्रज्ज्वलित भट्टी प्रायः मनुष्य को जला कर भस्म किये देती है! कभी जहाँ सुख और शान्ति का साम्राज्य था आज वहाँ कलह और विद्रोह की प्रलयकारी ज्वालाऐं धधकती दृष्टिगोचर हो रही हैं। यहाँ तक कि आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श, पृथ्वी की गंध तथा जल और अग्नि तत्त्वों तक के स्वरूप एवं गुण विकृत हो चुके हैं। मानव ने मानवता को त्याग दिया और दानवता की वास्तविकता में भी अधिकार नहीं किया। यदि मानवता को त्याग कर केवल दानवता में ही पूर्णरूपेण प्रवेश कर गया होता तो भी इसके कल्याण में शङ्का न रह जाती। कारण कि दानव होकर भी

तो किसी न किसी सिद्धान्त की शरण तो ले ही लेता है। इधर तो ठीक दशा वही हो गई "न खुदा ही मिला न विसाले सनम न इधर के रहे न उधर के रहे" मनुष्यों की गणना में तो वास्तव में रहे ही नहीं पशुओं में भी नहीं पहुँचे क्योंकि पशु का भी प्रकृति द्वारा निर्धारित कोई एक धर्म होता है जिससे वह मूक होते हुए भी आजीवन निर्वाह करता है। यहाँ तो कोई धर्म और कर्म है ही नहीं।

धर्म तो केवल इतना ही रह गया है कि
मात पिता बालकन्ह बुलावहिं।
उदर भरहि सोइ धर्म सिखावहिं॥

जिस भांति भी उदर-पोषण हो उतना ही भर धर्म है फिर चाहे किसी प्रकार का भी कुत्सित कर्म क्यों न करना पड़े, आना चाहिये धन। क्योंकि आज तो प्रायः 'सर्वेगुणा काञ्चनमाश्रयन्ति' सभी गुण धन के आधीन रह गये हैं और धनोपार्जन के लिये कोई भी, कैसा भी, घृणित मार्ग अवलम्बन करना हितकर समझ लिया गया है।

सत्यता तो यह है कि धर्म की व्याख्या और लक्षणों में धन का कहीं नाम भी नहीं आता। धर्मवान् की दृष्टि में धन का मूल्य ही क्या होता है? धन की अभिलाषा ही समस्त अधर्म की मूल है। स्वधर्म के अन्तर्गत धन को स्थान नहीं। क्योंकि यह तो काम, क्रोध लोभ मोहादि का आश्रयदाता है और यह सब परधर्म के अंग हैं। जहाँ यह सब निवास करते हैं वहाँ स्वधर्म रह ही क्यों सकता है। कारण स्वधर्म आत्मा का धर्म है और आत्मा तथा परमात्मा भिन्न नहीं। आत्मा सनातन, अनन्त, अखण्ड, अछेद्य, और अक्लेद्य है बस इसी लिये उसका धर्म भी वैसा ही है जो अनादि काल से उसके साथ है और अनन्त काल तक रहेगा। वह अमल और अविकारी है तथा काम क्रोधादि साक्षात विकार ही हैं अतएव अमलात्मा के इस शरीर रूप स्थूलासन पर काम क्रोध लोभादिक का पुट चढ़ाना पूर्णतया अनिष्टकर और अकल्याणकर है। वर्तमान समय में जब कि सर्वत्र काम, क्रोधादि पर धर्मों का अवलम्बन हो रहा है इसी कारण नित्य निरंतर दुःख और क्लेश बढ़ रहे हैं। भारत का व्यक्ति तो मानव है और मानव का धर्म धृति क्षमादि पालन में निहित है। तथा उसका कल्याण भी इसी में सन्निहित है। साथ ही प्राणीमात्र का हित ही उसका परम सिद्धान्त और स्वधर्मानुष्ठान भी है।

दानदाताओं को सूचना

सर्व सज्जनों को सूचना दी जाती है कि श्री भगवान-भजनाश्रम को जो दान मनीआर्डर बीमा द्वारा प्राप्त होता है उसकी रसीद उसी दिन डाक द्वारा दाता महानुभाव की सेवा में भेज दी जाती है, अगर किन्हीं दाता महानुभाव को अपने दान की छपी हुई रसीद श्री भगवान भजनाश्रम की प्राप्त नहीं हुई हैं तो उन्हें तुरन्त सूचना देनी चाहिये एवं भविष्य में कभी किन्हीं दान दाता को अपने दान की रकम की रसीद प्राप्त नहीं हो तो तुरन्त हमें सूचना देनी चाहिये, इसमें बिल्कुल विलम्ब नहीं करना चाहिये।

कृपया पत्र आदि एवं मनीआर्डर बीमा निम्नपते पर भेजने की कृपा करें

मंत्री श्री भगवान-भजनाश्रम मु० पो० बृन्दावन (मथुरा)

सन्तों के सदुपदेश

(संग्रहकर्ता—पं. श्री गोविन्ददास 'सन्त' धर्म-शास्त्री)

राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट ।
अन्त काल पछितायगा, प्राण जायंगे छूट ॥
स्वांस स्वांस हरिनाम भज, वृथा स्वांस मत खोय ।
ना जाने इस स्वांस का, आवन हो कि न होय ॥
धन योवन यों जायंगे, जेहि विधि उड़त कपूर ।
मन मूरख गोविन्द भज, क्यों चाटत जग धूर ॥
दो बातन को भूल मत, जो चाहत कल्यान ।
नारायण इक मोत को, दूजे श्री भगवान ॥
तुलसी इस संसार में, पांच रतन है सार ।
संत मिलन अरु हरि भजन दया दान उपकार ॥
छिपकर रह संसार में, देख सवन का वेष ।
ना काहू से राग कर, ना काहू से द्वेष ॥
आज कहे मैं कल भजूं, काल कहे फिर काल ।
आज काल के करत ही, अवसर जासी चाल ॥
काल भजंता आज भज, आज भजंता अब्ब ।
पल में परलय होयगी, फेर भजेगो कब्ब ॥
आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंहासन चढ चले, इक बान्धे जात जंजीर ॥
सकल रैन सोवत गई, उग्या चहे अब भान ।
उठो भजहुँ भगवंत को, जो चाहो कल्यान ॥
संत सभा झांकी नहीं, कियो न हरि गुण गान ।
नारायण तू कौन विधि, चाहत है कल्यान ॥
सो परत्र दुःख पावहिं, शिर धुन-धुन पछिताय ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय ॥
वारि मथे वरु होई घृत, सिकताते वरु तैल ।
बिन हरि भजन न भव तरहिं, यह सिद्धांत अपेल ॥
कथा कीर्तन कलि विषे, भवसागर की नाव ।
कह कबीर जग तरन को, नाहिन और उपाव ॥
देह खेह हो जायगी, फिर कौन कहेगा देह ।
निश्चय कर उपकारहि, जीवन का फल येह ॥
कबिरा संगत साधु की, ज्यों गंधी की बास ।
जो कुछ गांधी दे नहीं, तो भी बास सुबास ॥

धूम धाम से दिन गया, सोचत हो गई सांझ ।
एक घड़ी हरि ना भजा, जननी जानि भई बांझ ॥
पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहा सोय ।
एक पहर हरि ना जपा, मुक्ति कहां से होय ॥
काह भरोसा देह का, विनसि जाय छण माय ।
स्वांस स्वांस सुमिरन करो, और जतन कछु नाय ॥
झूठे सुख को सुख कहे, मानत है मन मोद ।
खलक चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥
कबिरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगाय ।
कै सेवा कर साधु की, कै गोविन्द गुण गाय ॥
जब हम आये जगत में, जगत हंसे हम रोय ।
अबकी ऐसा कर चलो, फेर हंसे नहिं कोय ॥
क्या मुख लो हंसि बोलवो, दादू दीजे रोय ।
जन्म अमोलक आपना, चले अकारथ खोय ॥
प्रेम बराबर योग नहिं, प्रेम बराबर ज्ञान ।
प्रेम भक्ति बिन साधना, सब ही थोथा ध्यान ॥
चलना है रहना नहीं, मरना बिश्वा बीस ।
ऐसे क्षणिक सुहाग पै, कौन गुथावे शीश ॥
जैसे संडसी लोह की; छिन पानी छिन आग ।
तैसे सुख दुख जगत के, ताको तजि तू भाग ॥
तुलसी जग में अस रहे, ज्यों जिव्हा मुख मांहि ।
घीव घना भक्षण करे, तो भी चिकनी नांहि ॥
नारायण हरि भजन में, ये पांचों न सुहात ।
विषय भोग निद्रा हंसी, जगत प्रीत बहु बात ॥
जिन जैसा सत्संग किया, तैसा ही फल लीन ।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बूंद गुण तीन ॥
साधु सती और सूरमा, ज्ञानी अरु गज दंत ।
ये निकसे नहिं बाहुड़े, जो युग जाय अनन्त ॥
हंसा बगला एक सम, मान सरोवर मांहि ।
बगुला ढूंढे माछली, हंसा मोती खाहि ॥
तुलसी सोई चतुरता, संत चरण लव लीन ।
पर मन पर धन हरण को, वेश्या बडी प्रवीन ॥

असंतन को मान बुरो, भलो संत को त्रास।
जब सूरज गरमी करे, तब बरसन की आस॥
गंगाजी को तैरबो, संतन को व्यवहार।
डूब गये तो पार है, पार गये तो पार॥
आवत ही हर्ष नहिं, जात शोक नहिं होय।
ऐसी करनी जो करे, तो घर विच जोगी होय॥
पन्नगारि सुनु प्रेम सम, भजन न दूसर आन।
अस विचारि मुनि पुनि पुनि करत राम गुणगान॥
पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोय।
सर्व कपट तज भजिय जों, मोहि परम प्रिय सोय॥
राम भरोसा राख ले, अपने मन के मांहि।
कारज सबै संभारि हैं, बिगरेगो कछु नांहि॥
तुलसी अपने राम भज, दृढ़ राखो विश्वास।
कबहूँ बिगडत ना सुने, रामचन्द्र के दास॥
सुमिरन में सुधि यों करे, जैसे दाम कंगाल।
कह कबीर विसरे नांहि, पल पल लेय संभाल॥
मैं अपराधी जन्म का, नख शिख भरा विकार।
तुम दाता दुःख भजंना, मेरी सुनो पुकार॥
मुझमें इतना बल कहां, गाऊं गला पसार।
बंदे को इतना बहुत, पड़ा रहे दरबार॥
सुख में बहु संगी भये, दुख में संग न कोय।
कह नानक हरि भज मना, अंत सहाई होय॥
जिह्वा गुण गोविन्द भज, कर्ण सुनहु हरि नाम।
कह नानक सुनरे मना, परे न यम के धाम॥
घट घट में हरिजू बसे, संतन कह्यो पुकार।
कह नानक तिहि भज मना, भव निधि उतरे पार॥
जो प्राणी ममता तजे, लोभ मोह अहंकार।
कह नानक आपो तरें, औरन लेय उबार॥
गोविन्द गुण गायो नहिं, जन्म अकारथ कीन्ह।
कह नानक हरि भज मना, जेहि विधि जल को मीन॥
राम भजन को आलसी, भोजन को हुशियार।
तुलसी ऐसे जीव को बार बार धिक्कार॥
हरि माया कृत दोष सब बिनु हरि भजन न जाय।
भजिय राम सब काम तजि, अस विचार मन माहि॥
माया सगी न मन संगो, सगो न यह संसार।
परशुराम या जीव को, सगो है सर्जन हार॥

चलूं चलूं सब कोइ कह, पहुँचे बिरला कोय।
इक कंचन इक कामनी, दुर्लभ घाटी दोय॥
सर्व सोने की सुन्दरी, आवे बास सुवास।
जो जननी हो आपनी, तोहु न बैठिये पास॥
बारि बारि आपनी, चले पियारे मीत।
तेरी बारी जीवरा, नियरे आवे नित॥
माली आवत देख कें, कलियां करि पुकार।
फुली फुली चुन लई, काल हमारी बार॥
बिरछा फले न आपको, नदी न अचवे नीर।
परोपकार के कारणे संतन धार्यो शरीर॥
लिखो पढ़ो ना जप कियो, तपन कियो गजराज।
रहिमन फूल दिखाय के, टेर लियो व्रजराज॥
आवत ही छींकत भये, पीछे दीन्हे रोय।
ऐसे शकुन पधारिये, कुशल कहां से होय॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, कहा करि सकत कुसंग।
चन्दन विष-यापे नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न जाने कोय।
हर दम लौ लागी रहे, प्रेम कहावे सोय॥
बसे तलाव कुमोदिनी, चन्दा बसे आकाश।
जो जाके मन में बसे, सो ताही के पास॥
फल कारण सेवा करे, तजे न मन से काम।
कह कबीर सेवक नहीं, चहे चौगुना दाम॥
कबीरा सूता क्या करे, जागन की कर चौंप।
यह दम हीरा लाल है, गिन गिन प्रभु को सौंप॥
जग में वैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
जो आपा तू डाल दे, दया करे सब कोय॥
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र दिये दान।
मन पवित्र हरि भजन सों, होत त्रिविध कल्यान॥
जाको राखे साईयां, मार सके ना कोय।
बाल न बांका कर सकै, जो जग वैरी होय॥
सोना काई ना लगे, लोहा घुन नहिं खाय।
बुरा भला हरि का भगत, कबहुँ नरक न जाय॥
नीच नीच सब तर गये, संत चरण लौ लीन।
जातिहि के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन॥
तुलसी ऐसी प्रीत करि, जैसे चन्द्र चकोर।
चोंच झुकि गर्दन गली, चितवत वाही ओर॥

श्रीराधाष्टमी

(रचयिता—प० श्री गोविन्ददास 'सन्त' धर्म शास्त्री)

बधाई

(१)

बधाई सुन्दर बाज रही ॥ टेर ॥
प्रकट भई वृषभानु दुलारी बरसत पुष्प मही ।
मंगल मोद बधाई बाजे उछरत दूध दही ॥
कीरती माता तेरी कीरति किस मुख जात कही ।
'सन्त' सदा भज राधा माधव जग बिच सार यही ॥

(२)

देखो छाई रंगीली बधाई रे ॥ टेर ॥
घर-घर मोद बधाई बाजे कीरति कन्या आई रे ।
भादों शुक्ला अष्टमी शुभ दिन पावन परम सुहाई रे ॥
गुणीजन सब मिल द्वारे ठाडे दरश निरख गुण गाईरे ।
'सन्त' सदा भज राधा माधव सर्वेश्वर सुख दाईरे ॥

(३)

बरसाने में आज बधाई ॥ टेर ॥
घर-घर मंगल गावत सखियाँ आनन्द उर न समाई ।
बन्दीजन सब द्वारे ठाडे हरख निरख गुण गाई ॥
भादव शुक्ल अष्टमी शुभ तिथि सुन्दर सुखद सुहाई ।
'सन्त' सदा भज राधा माधव चरण कमल चित लाई ॥

पलना

(४)

लाडलीजी को कीरति पलना झुलावे ॥ टेर ॥
राज महल में पलना सुन्दर शोभा वरणी न जावे ।
रेशम डोर झुलावति प्रेम सों मंद मंद कछु गावे ॥
सुर नर मुनिजन दरशन करने बरसाने नित आवे ।
वैभव देख महा अति अद्भुत इन्द्रादिक ललचावे ॥
नेति-नेति कह वेद पुकारत पार नहीं कछु पावे ।
'सन्त' सदा भज राधा माधव जन्म मरण मिट जावे ॥

(५)

वृषभानु लली को झुलावो पलना ॥ टेर ॥

राजमहल में आज सखीरी ।
प्रेम मगन है सब चलना ॥
मोद बधाई गावो मिलकर ।
प्रेम मगन प्यारी सब ललना ॥
'सन्त' सदा भज राधा माधव ।
परत दरश बिन पल कल ना ॥

प्रार्थना

(६)

जयति जय श्री राधिके वृषभानु नन्दिनी ॥टेर॥
मातेश्वरि, भुवनेश्वरि, लोकेश्वरि, व्रजेश्वरि ।
सिद्धि मुनिजन नाग नर सुर यूथ वन्दिनी ॥
दर्शन तिहारे हो सदा इस भांति मुझको स्वामिनी ।
ठुमक-ठुमक चलत चाल मन्द मन्दिनी ॥
तेरी कृपा कटाक्ष से हैं 'सन्त' भी निर्भय सदा ।
फिर फिक्र है किस बात की आनन्द कन्दिनी ॥

तुलसी के 'राम' (ले०—श्री० गोविन्दसहाय वर्मा, 'साहित्य रत्न')

अंधकार था; बाहर और भीतर घनघोर घटाओं से घिरा हुआ। प्रकाश की एक रेखा दीख पड़ती थी कभी, बिजलियों के कलहास्य में।

लोग कहते हैं, अभुक्त मूल नक्षत्र था, उस घड़ी।

अंधेरे में ही भटकता रहा तू संसार में, उस अंधे की नाईं जो सर्वथा परित्यक्त हो, उपेक्षित हो।

बहता गया, पत्नी-प्रेम की मृग-मरीचिका में, कितने वसन्त आये, आम्र मंजरी पर कोकिलाओं के राग लेकर, चरम सीमा पहुंचने तक।

स्वप्न टूटा! प्रवाह दिशा बदल कर उमड़ चला, राम-नाम की ओर।

एक सम्बल था, एक आधार था, एक धुन थी और एक लगन—केवल राम नाम की। प्रकृति मुस्करायी, मानव प्रकृति सहृदयता लिए हुए थी, ठठोली करने चली।

तर गया तू, उसी के बल पर; मर कर भी अमर हो गया तू उसी के सहारे; मरण में 'अमरत्व' दिया उसने लेगया वह तुझे ससीम से असीम में मिलाने।

स्वार्थ ही न हुआ यह; परमार्थ इसमें कूट २ कर भरा था। कितने तरे तेरे साथ; कितने तर रहे हैं तेरे उस आधार को पकड़ कर; तरेंगे कितने उसी तरनी के सहारे! रम गया तू राम में।

बन गया तू राम, अनेकों को साथ लेकर। नगपति मुस्करा उठा तेरी इस पवित्र कृति को देखकर, कुमारी तक फैल गया इसका प्रकाश पुंज! सिंधु नद अपने संगम स्थल में आनन्द में भर कर प्राची की ओर देखने लगा, तेरी इस पुन्य कीर्ति की अलौकिकता को, व्याप्त थी जो पुन्य तोया भागीरथी के संगम पर।

जीवन का मंत्र तू जनजन को दे गया, दो वर्णों का वही राम नाम का।

अपार महिमा है इसकी, अपार शक्ति है—इसकी। करना इतना ही है, पूरी श्रद्धा के साथ, अपना ले, कोई इस मन्त्र को।

शीघ्र चेतें

(लेखक—श्री जयदयालजी गोयन्दका)

हमारा बहुत-सा समय बीत गया और बीता ही जा रहा है, इसलिये शीघ्र सचेत होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मनुष्य जीवन को सफल बनाना चाहिये, जिससे पश्चात्ताप न करना पड़े।

सदा की भाँति दीपमालिका के महोत्सव का निश्चित समय आया और चला जा रहा है। किन्तु प्रतिक्षण क्षीण होने वाले इस मनुष्य जीवन के अमूल्य समय का हमने किस हद तक सदुपयोग किया, यह हमें विचारना चाहिये। केवल मनुष्य का ही शरीर ऐसा है, जिसमें यह जीव सदा के लिये जन्म-मरण से छुटकारा पाकर परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। यदि हमने अपनी असावधानी से इस दुर्लभ मानव-जीवन को पशुओं की भाँति आहार निद्रा और मैथुन में लगा दिया तो हमारा जीवन पशुजीवन ही समझा जायगा। नीति में कहा है—

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम्। ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥ (चाणक्यनीति १७।१७)

'आहार, निद्रा, भय और मैथुन—ये मनुष्य और पशुओं में एक समान ही हैं। मनुष्यों में केवल विशेषता यही है कि उनमें ज्ञान अधिक है। किंतु ज्ञान से शून्य मनुष्य पशुओं के ही तुल्य हैं।

अतः हम लोगों को अपने समय का सदुपयोग करना चाहिये, नहीं तो अन्त में हमको घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इस विषय में श्रुति हमें चेतावनी देती हुई कहती है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ (केनोपनिषद् २।५)

'यदि इस मनुष्य-शरीर में उस परमात्म-तत्त्व को जान लिया जायगा तो सत्य है यानी उत्तम है। और यदि इस जन्म में उसको नहीं जाना तो महान् हानि है। धीर पुरुष सम्पूर्ण भूतों में परमात्मा का चिन्तन कर—परमात्मा को समझ कर इस देह को छोड़ अमृत को प्राप्त होते हैं। अर्थात् इस देह से प्राणों के निकल जाने पर वे अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि समस्त प्राणियों में परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करते हुए ही अपना जीवन सफल बनावें। मनुष्य का जन्म बहुत ही दुर्लभ है, वह ईश्वर की कृपा से हमें प्राप्त हो गया है। ऐसा मौका पाकर अपने महत्वपूर्ण समय का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। जिस काम के लिए हम आये हैं, उसे सबसे पहले करना चाहिये। जो काम हमारे बिना हमारे जीवितावस्था में दूसरे कर सकते हैं, वह काम उन्हीं से लेना चाहिये, उस काम में अपना अमूल्य समय नहीं लगाना चाहिये। और जो काम हमारे मरने के बाद हमारे उत्तराधिकारी कर सकते हैं, चाहे वह कैसा भी जरूरी क्यों न हो, उस काम में भी अपना अमूल्य समय नहीं लगाना चाहिये। जो काम खास कर हमारे बिना न हमारे जीवन काल में और न मरने पर ही दूसरे के द्वारा सम्पन्न हो सकता है और जो हमारे इस लोक और परलोक में कल्याण करने वाला है तथा जिस काम के लिये हमें यह मनुष्य शरीर मिला है एवं जिस काम में थोड़ी भी कमी रहने पर हमें पुनः जन्म लेना पड़ सकता है और जिस कार्य की पूर्ति हमारे बिना किसी दूसरे से हो ही नहीं सकती, उसी काम को सबसे जरूरी समझकर

तत्परता के साथ सबसे पहले करना चाहिये। वह काम है—परमात्मा की प्राप्ति। उसकी प्राप्ति का उपाय है—ईश्वर की भक्ति, उत्तम गुणों का संग्रह संसार से वैराग्य और उपरति, सत्पुरुषों का सङ्ग और सत्शास्त्रों का स्वाध्याय, परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान, मन और इन्द्रियों का संयम, दुखी और अनाथों की निष्काम सेवा आदि आदि। इन कामों में अपना समय अधिक से अधिक लगाने की चेष्टा करनी चाहिये।

यह मन अधिकतर समय में व्यर्थ का चिन्तन करता रहता है, जो कि हमारे लिये बहुत ही खतरे की चीज है। अतः मन को व्यर्थ चिन्तन से हटाकर भगवान् के चिन्तन में लगाना चाहिये। तथा भगवान के जप-ध्यान के समय हमें निन्द्रा और आलस्य घेर लेते हैं, उनको विवेक विचार और हठ से हटाना चाहिये। नहीं तो आगे जाकर घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। श्री तुलसीदासजी कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

ईश्वर की हम लोगों पर बड़ी भारी अहैतुकी दया है, जो कि हमें उसकी कृपा से मनुष्य का शरीर मिला है। श्रीरामचरितमानसमें कहा है।

आकर चारि लाख चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

अब इस पर विचार कीजिये पृथ्वी पर असंख्य जीव हैं, उनमें मनुष्य बहुत ही कम संख्या में हैं अर्थात् परिमित हैं। ऐसे दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर जो मनुष्य आलस्य, प्रमाद, पाप और भोगों में अपना जीवन बिताता है, उसकी मूर्खता नहीं तो और क्या है?

ईश्वर की कृपा से हमें उत्तम धर्म, उत्तम काल उत्तम देश और उत्तम सङ्ग भी मिला है; क्योंकि वैदिक सनातन धर्म, जिसको हम हिन्दू धर्म के नाम से कहते हैं; सबसे पहले का यानी अनादि है। अन्य जितने भी धर्म के नाम से प्रसिद्ध हैं वे सब इसके बाद के हैं और इसी की सहायता से बने हैं।

इसलिये यह सबसे श्रेष्ठ भी है। तीनों लोकों में पृथ्वी श्रेष्ठ है और पृथ्वी में आर्यावर्त (भारतवर्ष) जिसे हम हिन्दुस्थान कहते हैं। सारी पृथ्वी के लोग धार्मिक शिक्षा इस भारतवर्ष से ही पाया करते थे, यह मनुस्मृति में लिखा है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (२।२०)

'इसी देश (भारतवर्ष) में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों के पास से अखिल भूमण्डल के सभी मनुष्य अपने अपने आचार की शिक्षा ग्रहण करें;

अतः यह भारत देश अध्यात्म विषय में सब देशों में उत्तम माना गया है।

यद्यपि कलियुग महान् अनर्थ का मूल और पापों की जड़ है, किन्तु इसमें एक बड़ा भारी गुण भी है कि केवल भगवान की भक्ति करने से इसमें मनुष्य का उद्धार हो जाता है। श्री तुलसीदासजी कहते हैं—

कलियुग सम युग आन नहिं जो नर कर विश्वास।
गाइ राम गुण गण बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

और अध्यात्म विषयक धार्मिक पुस्तकों का संग भी इस समयमें बहुतही सुलभ है। इस प्रकार की सब सामग्री पाकर हमारी अकर्मण्यता के कारण हम ईश्वर प्राप्ति से वञ्चित रहें तो ह हमारे लिये बहुत ही लज्जा और दुःख की बात है। श्री तुलसीदासजी ने कहा है—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिन्दक मन्दमति आत्माहन गति जाइ॥

अतएव हम लोगों को आलस्य, निद्रा, प्रमाद, स्वाद और शौक, ऐश आराम, भोग और विलासिता,

दुर्व्यसन और पापों को विष के समान समझकर त्याग करना चाहिये। तथा भजन-ध्यान सत्संग-स्वाध्याय, सेवा-संयम, सद्गुण-सदाचार-ज्ञान वैराग्य आदि को अमृत के समान समझकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक सदा सर्वदा सेवन करना चाहिये एवं भगवान् के नाम, रूप, गुण और प्रभाव का तत्व रहस्य जानने के लिये उनका श्रवण, पठन, कीर्तन और स्मरण करते हुए मनुष्य जीवन को सार्थक बनाना चाहिये।

मनुष्य का जीवन बहुत ही उपयोगी, दुर्लभ और सर्वोत्तम है किन्तु है क्षणिक। अब तो है और एक क्षण के बाद इसका भरोसा नहीं है। न मालूम काल कब आकर इसका कलेवा कर जाय। मनुष्य का शरीर केवल भोग भोगने के लिये ही नहीं है, आहार, निद्रा और मैथुन आदि तो पशु शरीर में भी मौजूद है। फिर मनुष्य के शरीर को पाकर जो आहार निद्रा और मैथुन में अपना समय बिताता है, वह तो मनुष्य के रूप में पशु ही है। श्री तुलसीदासजी कहते हैं—

एहि तनुकर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई॥
नर तनु पाइ विषय मन देही।
पलटि सुधा ते सठ विष लेही॥
ताहि कबहुँ फल कहइ न कोई।
गुंजा गहै परसमनि खोई॥

इसलिये मनुष्य शरीर को पाकर अपना जीवन शीघ्रातिशीघ्र अपने आत्मा का उद्धार हो, उसी काम में लगाना चाहिये। श्री भगवान् ने गीता में कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।

'इसलिये तू सुख रहित और क्षणभङ्गुर इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।'

मनुष्य का जन्म इतना मूल्यवान् है कि यदि कोई लाख रुपया खर्च करे तो भी उसे एक क्षण भी नहीं मिल सकता। अतः मनुष्य जीवन के एक क्षण को भी व्यर्थ नहीं गवाँना चाहिये। समय बीता जा रहा है। ज्ञानियों को ज्ञान के द्वारा, भक्तों को भक्ति के द्वारा और योगियों को योग के द्वारा तथा व्यापारियों को शुद्ध व्यापार के द्वारा अपने आत्मा का कल्याण शीघ्र हो, इसके लिये जी तोड़ प्रयत्न करना चाहिये।

जैसे तुलाधार और नन्दभद्र वैश्य ने अपने शुद्ध व्यापार के द्वारा अपने आत्मा का उद्धार कर लिया, इसी प्रकार व्यापारियों को शुद्ध व्यापार करके अपने आत्मा का कल्याण करना चाहिये। तुलाधार वैश्य की कथा महाभारत और पद्मपुराण में तथा नन्दभद्र की कथा स्कन्द पुराण में आती है, वहाँ देख सकते हैं उन लोगों के व्यापार में झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, धोखाबाजी, विश्वास-घात आदि नहीं थे। उनका व्यापार सच्चा था। वे लोग सत्यता, समता और निष्काम भाव पूर्वक व्यापार करते थे। हम लोगों को भी वैसे ही करना चाहिये। साथ में यदि भगवान् की स्मृति रहे तो और भी शीघ्र आत्मा का कल्याण हो सकता है तथा भगवान् से सत्यता, समता और निष्काम भाव पूर्वक व्यापार होने में मदद मिल सकती है।

सत्य व्यवहार से यह मतलब है कि झूठ, कपट, बेईमानी और विश्वासघात कतई नहीं होना चाहिये तथा चोरबाजारी और इनकम टैक्स, सेल टैक्स की चोरी से भी बचना चाहिये। यद्यपि वर्तमान समय में इनसे बचना बहुत ही कठिन है क्योंकि सरकार की कंट्रोल और टैक्स लगाने की नीति है और वह नीति व्यापारियों को झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी और चोरबाजारी करने के लिये बाध्य कर देती है। इसके सुधार के लिये सरकार से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह कंट्रोल को कतई बंद करदे और इनकम टैक्स तथा सेल टैक्स में सुधार करे। सत्य व्यवहार में कठिनाई अवश्य है किन्तु वह सत्य व्यवहार आत्मा का कल्याण करने वाला है।

व्यापार करते समय वस्तुओं के खरीदने-बेचने में तोल, नाप और गिनती आदि से कम देदेना या अधिक ले लेना और वस्तु को बदल कर या एक वस्तु में दूसरी वस्तु मिलाकर अच्छी के बदले खराब दे देना या खराब के बदले अच्छी ले लेना तथा नफा, आढ़त, दलाली और कमीशन ठहराकर उससे अधिक लेना या कम देना एवं इसी तरह किसी भी व्यापार में झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्ती का या अन्य किसी प्रकार के अन्याय का प्रयोग करके दूसरों के स्वत्व (हक) को हड़प लेना इन सब दोषों से रहित जो सत्य और न्याययुक्त पवित्र वस्तुओं का खरीदना और बेचना है वही क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार है।

जैसे घी में वेजिटेबिल मिलाना, सरसों, बदाम और नारियल आदि के तेल में व्हाइट आयल मिलाना, रूई, पाट, ऊन आदि में जल दे देना अथवा दिखाये हुए नमूने की अपेक्षा खराब माल देना, जीरा में कंकड़ और दाल आदि में मिट्टी मिलाना, आटा में खराब आटा और दूध में जल मिला देना आदि असत्य व्यवहार हैं। इन सबसे रहित जो व्यवहार है, वही पवित्र और सत्य व्यवहार है।

तथा सबके साथ पक्षपात से रहित होकर समतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये। एक चतुर व्यवहार कुशल व्यक्ति को जिस भाव में वस्तु दी और ली जाय, उसी भाव में दूसरे एक मूर्ख व्यापार ज्ञान शून्य व्यक्ति को भी देना और लेना चाहिये। किसी प्रकार का भी भेद भाव (पक्षपात) न करना समव्यवहार है।

प्रायः लोग धन कमाने के लिये ही व्यापार करते हैं और उन लोभी मनुष्यों के हृदय में क्रय विक्रय के समय यही भाव रहता है कि रुपये अधिक कैसे मिलें। लोभ के दो भेद होते हैं— अनुचित और उचित। अनुचित लोभ तामसी है और उचित लोभ राजसी है। जिस लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, दगाबाजी आदि करके अन्याय से धन सञ्चय करता है तथा न्याय से प्राप्त हुए उचित कार्य पर भी खर्च नहीं करता, वह लोभ अनुचित और तामसी है। जो झूठ, कपट, बेईमानी से तो धनोपार्जन नहीं करता और न न्याययुक्त कार्य के प्राप्त होने पर खर्च करने में कंजूसी ही करता है, किंतु न्याय से प्राप्त हुए रुपयों का संग्रह करने की इच्छा रखता है, यह लोभ उचित और राजसी है। परंतु जहाँ लोभ का सर्वथा त्याग है, वहाँ व्यापार कर्त्तव्य बुद्धि से अथवा भगवत्यर्थ या भगवत्प्रीत्यर्थ होता है। जैसे लोभी मनुष्य रुपयों के लिये व्यापार करता है, वैसे ही निःस्वार्थी मनुष्य कर्त्तव्य बुद्धि से संसार के हित के लिये व्यापार करता है, वह निष्काम और सात्त्विक है। जैसे लोभी के यह भाव रहता है कि रुपये अधिक कैसे पैदा हों, उसी प्रकार निष्कामी के यही भाव रहता है कि लोगों का अधिक से अधिक हित कैसे हो अथवा भगवान् में प्रेम कैसे हो या भगवत्प्राप्ति कैसे हो। भगवान् की प्रीति और भगवत्प्राप्ति का जो उद्देश्य है यह कामना होते हुए भी निष्काम ही है। जिस व्यापार में कामना, आसक्ति, स्पृहा अहंता, ममता का त्याग है, वही व्यापार या शास्त्रविहित कर्म निष्काम है और भगवत्प्राप्ति कराने वाला है। गीता में भगवान् कहते हैं:—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्माते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ (२२४७)

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु अहंता ममता वासना आसक्ति वाला मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।'

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ (२-७१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहङ्कार रहित और स्पृहारहित हुआ

विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त होता है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥(१८।४६)

'जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने धर्म के अनुसार स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।'

आजकल झूठ, कपट और बेईमानी करने के कारण किसी भी प्रकार का पाप करने में हिचकिचाहट, ग्लानि, संकोच और भय नहीं रहा। असत्य बोलना तो एक मामूली-सी बात हो गयी है और अधर्म बढ़ गया है। इसलिये ईश्वर और प्रारब्ध पर विश्वास कम हो गया तथा परोपकार और दयाभाव में कमी आजाने के कारण धर्म और दान की प्रवृत्ति कम हो गयी। अतः व्यापारी भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि प्राणियों के हित के लिये जीवों पर दया करके परोपकार की प्रवृत्ति बढ़ानी चाहिये। यदि परोपकार सकामभाव से भी किया जाय तो कामना की सिद्धि होती है और निष्काम भावसे किया जाय तो पापों का नाश और अन्तःकरण की शुद्धि होकर परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

बहुत से भाई इनकम और सेल टैक्स की चोरी करते हैं और पकड़े जाने पर दण्ड भी भोगते हैं, तब हजारों-लाखों रुपये बाध्य होकर सरकार को देने पड़ते हैं, उन धनी भाइयों के सम्मुख हम एक सुझाव रखते हैं कि जिनके कई फर्म चलते हैं उनको उनमें से एक फर्म या डिपार्टमेंट धर्मार्थ यानी पब्लिक के हित के लिये अलग खोलकर उसका एक ट्रस्ट बना देना चाहिये। उस पर सरकार का इनकम टैक्स नहीं लगता। जो भाई सरकार को हजारों-लाखों रुपये इनकम टैक्स के रूप में देते हैं और कई फर्म चलते हैं, उनको इस प्रकार एक अलग धर्मार्थ फर्म खोल देने से कोई विशेष हानि नहीं होती। बल्कि अलग धर्मार्थ नहीं करने से तो वे रुपये आयके शामिल होकर आयकी संख्या ही बढ़ाते हैं, जिससे अधिकांश रुपये इनकम टैक्स में देने पड़ते हैं। इस बात को विचार करके धनी भाइयों को पब्लिक की सहायता के लिये एक अलग ट्रस्ट के रूप में धर्मार्थ फर्म खोल देना चाहिये। जो भाई दूसरों से चन्दे-चिट्ठे के रूप में रुपये इकट्ठे करके उनके साथ ही अपने रुपये परोपकार में लगाते हैं, उनकी अपेक्षा ऊपर बतायी हुई पद्धति के अनुसार एक अलग धर्मार्थ ट्रस्ट खोलना सर्वोत्तम है; क्योंकि इसमें इनकमटैक्स की बचत हो जाती है, जिससे परोपकार में उदारता के साथ रुपये लगाये जा सकते हैं। नहीं तो इनकम टैक्स चुकाने के बाद बचे हुए रुपयों में से परोपकार में लगाने में कंजूसी और लोभ के कारण रुकावट हो जाती है।

जो व्यापार सच्चाई के साथ किया जाता है, उससे व्यापार की भी उन्नति होती है। संसार की तरफ दृष्टि डालने से संसार भर में इग्लैंडवासी अंग्रेजों का व्यापार अपेक्षाकृत सच्चा समझा जाता है। इसलिये वे व्यापार में कुशल माने गये हैं। सच्चाई के कारण उनके व्यापार की उन्नति भी काफी हुई। जब हिन्दुस्थान में अंग्रेजों का राज्य था, तब यह बात प्रत्यक्ष देखी गयी कि हिन्दुस्थानियों की अपेक्षा उनके व्यापार में सच्चाई थी। कपड़े, सूत, रूई आदि की, सरसों, तिस्सी, तिल आदि तेलहनकी, गेहूँ चावल आदि गल्ले की व्यापार में मन्दी और तेजी होने पर भी चाहे कम्पनी फेल हो जाय, किन्तु वे प्रायः बेईमानी नहीं करते। बाजार तेज होने पर सूत में रूई खराब नहीं देते, कपड़े में सूत कम नहीं देते और नाप में भी कम नहीं देते। जो लाट-घाट या नाप में कम होता, उसका बट्टा कर देते थे। यह बात हिन्दुस्थानियों की सूत और कपड़े की मिलों में नहीं देखी गयी अंग्रेज लोग बाजार मंदा पड़ने पर लेने वालों को

नुकसान न पड़े, इसका ध्यान रखते। इसी प्रकार गल्ले और किराने के तेज होने पर वे आर्डर का माल सप्लाई करने में ना नहीं करते और मंदा होने पर लेने में इनकार नहीं करते। इसलिये लोग हिन्दुस्थानियों की अपेक्षा कुछ अधिक मूल्य देकर भी उनका माल लेना-बेचना चाहते थे। अंग्रेज लोगों ने किसी को किरासीन, सीमेंट, कागज, रंग सोडा आदि की एजेन्सी दे दी या किसी को दलाल बना लिया या बेनियनशिप दे दी तो थोड़ा अपराध होने पर भी उससे लोभ के वशीभूत होकर वह काम नहीं छुड़ाते, किन्तु हिन्दुस्थानी भाइयों में यह नहीं पायी जाती। वे लोभ के वशीभूत होकर पहले वाले से काम छुड़ा लेते हैं और अपने निकट सम्बन्धी को दे दिया करते हैं।

इनकमटैक्स के विषय में भी उनके बही खाते तथा रजिस्टरों पर सरकार विश्वास करती थी और अब भी उनके बही खाते और रजिस्टरों के विषय में हिन्दुस्थानियों की अपेक्षा जनता और सरकार अधिक विश्वास करती है।

अतः हरेक भाई को अपने व्यापार की उन्नति के लिये सच्चाई के साथ व्यवहार करना चाहिये और यदि पक्षपात रहित होकर दूसरों के हित की दृष्टि से विनय और प्रेम के साथ निष्काम भाव से व्यापार किया जाय तो उसकी तो बात ही क्या है! उससे तो अन्तःकरण की शुद्धि होकर परमात्मा की प्राप्ति बहुत ही शीघ्र हो सकती है।

अभिराम

(सैयद कासिम अली साहित्यालंकार)

राम राम के मधुर राग में! जीवन का वीणा के तार ॥
झंकृत कर दें प्रतिपल वह ध्वनि! जिससे हो जीवन उद्धार !!
माया के इस भव सागर में! भंवरों का भीषण जञ्जाल !!
और कर रहा है ऊपर से भीषण अट्टहास कलिकाल !!
ऐसी विषम परिस्थिति में प्रभु! तेरा सक्षम तम शुभनाम !!
रट कर बेड़ा पार लगे! हे सांवलिया सुन्दर अभिराम !!

॥ श्री हरिः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन

[श्री भगवन्नाम प्रचारक प्रमुख धार्मिक एवं पारमार्थिक संस्था]

[एक्ट २१ आफ १८६० द्वारा रजिस्टर्ड]

का

संक्षिप्त विवरण

श्री वृन्दावन धाम हिन्दुओं का प्रधान तीर्थ है, इस स्थल की पावन रज में लोट लोट कर भगवान श्रीकृष्ण ने इसे पूजनीय बना दिया है और इसी कारण समस्त भारत से लाखों हिन्दू भाई प्रेम से यहां की यात्रा करते हैं। साथ ही बहुत सी वृद्ध एवं अनाथ विधवायें भी अपना शेष जीवन वृजधाम में व्यतीत करने के पावन उद्देश्य से अपना घर बार तथा सगे सम्बन्धी छोड़कर यहां आ जाती हैं। भारत इस समय एक निर्धन देश है और यहां यह सम्भव नहीं है कि हज़ारों की संख्या में आई हुई इन विधवाओं और वृद्धाओं के सम्बन्धी उनके भरण पोषण के लिये उनको प्रति मास सहायता भेज सकें और इसी कारण यह विधवायें वृन्दावन में अपनी उदर पूर्ति के लिये प्रत्येक यात्री से गिड़-गिड़ाकर भिक्षा माँगती हुई दृष्टिगोचर होती थीं। अब से ३२ वर्ष पूर्व इस दुरावस्था को देख कर अनेक सद्गृहस्थ तथा धनी मानी धार्मिक सज्जनों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने सम्वत् १६७३ में 'श्री वृन्दावन भजनाश्रम' नाम से एक परमोपयोगी संस्था की स्थापना की। और उसे चलाने के लिए एक सुदृढ़ ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। ट्रस्टियों के निर्णय से यह विधान बनाया गया कि भजनाश्रम में नित्य जितनी माइयां आवें उनसे ४॥ घन्टे प्रातः तथा ४॥ घन्टे सायं श्री भगवद् कीर्तन कराया जाय और उन्हें उदर पोषण के लिये अन्न एवं पैसे दिये जावें। भजनाश्रम स्थापित होते ही नित्य प्रति सैंकड़ों की संख्या में गरीब तथा आश्रयहीन वृद्धायें तथा विधवायें आश्रम में आने लगीं और परम पावन, कल्याणकारी श्री भगवन्नाम कीर्तन करते हुए अपना मानव जीवन सफल करने लगीं। इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होते देख कर एक द्वितीय संस्था 'श्री भगवान भजनाश्रम' के नाम से सम्वत् १६६० में स्थापित की गई तथा उसका भी ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। इन दोनों भजनाश्रमों का प्रबन्ध योग्य ट्रस्टियों द्वारा सुचारु रूप से हो रहा है।

इस समय इन आश्रमों में लगभग ८०० अनाथ गरीब स्त्रियां जिनमें अधिकांश निराश्रित विधवायें हैं नित्य प्रति अनन्त भगवद्नामों का कीर्तन करती हुई भगवद्-भजन में लीन रहती हैं। अष्ट प्रहर कीर्तन भी अलग होता है। इन भजन करने वाली माइयों को सवेरे ४॥ घन्टे भजन करने पर =)॥ ढाई आना अन्न के वास्ते दिया जाता है। तथा शाम को ४॥ घन्टे भजन करने पर =) दो आना ऊपर खर्च के वास्ते दिया जाता है और समय समय पर आवश्यकतानुसार वस्त्र भी दिये जाते हैं और २०० के लगभग अपाहज वृद्धायें जो आश्रम में आने के अयोग्य हैं अपने घरों में बैठी हुई भगवद् भजन किया करती हैं जिन्हें भी कुछ सहायता दी जाती है।

भारत व्यापी तेजी के कारण इस समय इन संस्थाओं का खर्च लगभग रु० ८५००) आठ हजार पांच सौ रु० प्रति मास हो गया है जब कि स्थायी आय, मासिक चन्दा तथा ब्याज केवल ३०००) रुपये मासिक है। आज हम इसी कमी की पूर्ति करने के लिये आप जैसे धनी मानी तथा धार्मिक महानुभाव की सेवा में अपील करते हुए निवेदन करते हैं कि आपकी अतुल दानराशि में से अधिक से अधिक भाग इन संस्थाओं को प्राप्त होना चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा आपके धन का सदुपयोग का विश्वास दिलाते हुए हम यह भी बता देना चाहते हैं कि इन संस्थाओं में दिये गये आपके धन से अनेक प्राणियों का उदर पोषण होगा एवं कोटि-कोटि भगवन्नाम जप के पुण्य प्रताप का आपको पूर्ण लाभ होगा।

हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमान्‌जी हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान देंगे और श्रद्धानुसार संस्थाओं की सहायता करते हुए जनता-जनार्दन की अधिकाधिक सेवा के पावन अनुष्ठान में सहायक बनेंगे।

प्रार्थीः—जानकीदास पाटोदिया,
प्रधान

नोट—१. प्रार्थना है कि आप जब बृजधाम की यात्रा को पधारें तो इन आश्रमों में पधार कर यहाँ के कार्यों का अवलोकन करें, एवं आश्रम के लिये जो दान करना चाहें वह भजनाश्रम में ही देवें अन्य किसी मन्दिर में नहीं।

२. अपने एवं अन्य नगर के धर्म प्रेमी दानदाताओं के कुछ नाम व पते भी हमें भेजने की कृपा करें जिससे हम उनसे संस्थाओं की सहायता के लिये अपील कर सकें।

३. बीमा या मनीआर्डर द्वारा सहायता मन्त्री श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन [मथुरा] तथा मन्त्री श्री वृन्दावन भजनाश्रम, पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से भेजिये।

४. कृपया सहायता एक मुश्त भेजिये अथवा मासिक या वार्षिक सहायता भेजने की कृपा कीजियेगा।

५. आश्रम की ओर से ऐसा प्रबन्ध भी है कि जो दानी महानुभाव अपनी ओर से भजन कराना चाहते हों वह ८।≡) रु.मासिक प्रत्येक माई के हिसाब से भेजकर जितनी माइयों द्वारा चाहें भजन करा सकते हैं। प्रतिदिन ६ घण्टे में हर एक माई लगभग एक लाख भगवन्नाम उच्चारण कर सकती है।

६. वृन्दावन के किसी मन्दिर, मठ व अन्य स्थानों से भजनाश्रम का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिये भजनाश्रम के लिये किसी अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी मनीआर्डर या बीमा द्वारा श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं व समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

श्री भगवन्नाम जप कराइये

श्री वृन्दावन में लगभग ८५० गरीब माइयां प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घन्टे परम मंगलमय श्री भगवन्नाम जप एवं संकीर्तन करती हैं। इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र व पैसों की सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्री भगवन्नाम जप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

कलियुग में संसार सागर से पार उतरने का एक मात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम जप करना ही शास्त्रों में वर्णित है। सभी महानुभावों को स्वयं अधिक से अधिक भगवन्नाम जप करने की चेष्टा करनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओर से गरीब माइयों द्वारा श्री भगवन्नाम जप कराना चाहें वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रम में लगभग ८५० गरीब माइयां आती हैं। जिनमें से इस समय लगभग ५०० माइयां दानदाताओं की ओर से भजन कर रही हैं। बाकी माइयों से भजन कराने के लिये हम सभी सज्जनों से निवेदन करते हैं कि अपनी-अपनी श्रद्धा व प्रेम अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने माह के लिये आप चाहें अवश्य भजन कराइयेगा एवं अपने इष्ट मित्रों को भी भजन कराने के लिये प्रोत्साहित कीजियेगा।

एक माई को नित्य प्रति साढे चार आने की सहायता दी जाती है। इस हिसाब से एक माह का ८।≤) और एक वर्ष का १०१।) खर्च लगता है। पत्र व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजने का पताः—

मन्त्री—भगवान भजनाश्रम
मु० पोस्ट, वृन्दावन।

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित व
गौरगोपाल मानसिंहजीका संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान भजनाश्रम वृन्दावन [मथुरा] से प्रकाशित

अंक १२

विषय सूची

मंगसर संवत् २००६

विषय	लेखक	पृष्ठ

॥ श्री हरि ॥

--: प्रेमी ग्राहकों से निवेदन :--

बारहवें वर्ष का यह आखरी अंक है इस अंक के साथ का चन्दा समाप्त हो जाता है आगामी वर्ष हम अधिक से अधिक उपयोगी सामिग्री देने की चेष्टा कर रहे हैं। आप इसे अगामी वर्ष अवश्य अपनाने की कृपा करें। वार्षिक मूल्य केवल २≡) ही रक्खा है। कृपया २≡) शीघ्र ही मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें। किन्हीं कारण वश आप ग्राहक रहना न चाहें तो एक कार्ड द्वारा अवश्य सूचना देने की कृपा करें ताकि वी. पा. भेजने के खर्च से कार्यालय को नुकसान न हो।

वी. पी. मंगाने में छः आने अधिक लगते हैं इसलिये अपना चन्दा मनीआर्डर द्वारा ही भेजियेगा। मनीआर्डर से चन्दा भेजने में सुविधा रहेगी।

निवेदक—व्यवस्थापक "नाममाहात्म्य" कार्यालय, वृन्दावन

वर्ष १२ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन दिसम्बर सन् १९५२ | अंक १२

उदार

ऐसो को उदार जग माहीं ।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥१॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनिग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥२॥
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहं लीन्ही ।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही॥३॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तो भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥४॥

'तुलसी'

॥ आखर मधुर मनोहर दोउ ॥

(लेखक—श्री० पन्नादासजी स्वामी)

यों तो श्री भगवान के अनन्त नाम हैं और वे सब एक से एक बढ़कर हैं। पर 'राम' यह दो अक्षरों वाला नाम बड़ा ही मधुर और मनोहर है। ये दो अक्षर स्मरण करने में सबके लिये सुलभ और सुख देने वाले हैं। और इस लोक में लाभ और परलोक में निर्वाह करते हैं।

सुमरत सुलभ सुखद सब काहू।
लोक लाहु परलोक निबाहू॥

ये जितने मधुर और मनोहर हैं उतने ही महत्त्व और प्रभावशाली हैं। अब क्रमशः इनकी मधुरता, मनोहरता, महत्ता और प्रभाव पर संक्षेप में कुछ विचार किया जाता है।

जिसने वास्तव में इन दो अक्षरों (राम नाम) का रसास्वादन पा लिया उसकी भावुकता और जप पिपासा बढ़ती ही जाती है। प्रातःस्मरणीय भक्त शिरोमणी गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने भगवान् श्री रामचन्द्रजी के समक्ष अपनी अन्तिम अभिलाषा यही व्यक्त की थी कि—

कामिहि नारी पियारी जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

जैसे कामी को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथ जी। 'राम' (यह दो अक्षरों वाला आपका नाम) मुझे निरंतर प्यारा लगे। तात्पर्य यह है कि कामी को जैसे स्त्री मनोहर लगती है वैसे तो मुझे 'राम' (ये दो अक्षर) मनोहर लगें। और लोभी को जैसे धन कमाने की लालसा होती है उसी प्रकार इन अक्षर द्वय की जप लालसा मेरी अतृप्त हो। यानी लोभी जितना धन कमाता है उतना ही समझता है थोड़ा ही है उसी प्रकार मैं जितने भी नाम जपूं यही समझता रहूँ कि थोड़े ही जपे हैं। यह इन अक्षर द्वय की मधुरता और मनोहरता है।

भगवान् श्री रामचन्द्रजी जब वन में सीताजी की खोज में विरह वंत से फिर रहे थे तो देवर्षि श्री नारदजी ने यह विचार कर कि भगवान् मेरे शाप वश नाना प्रकार के दुःखों को सहन कर रहे हैं जाकर उन्हें देखूं तो सही, भगवान् के पास गये और उनकी स्तुति की तथा भगवान् को प्रसन्न देख कर यह वर मांगा कि—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका।
श्रुति कह अधिक एक ते एका॥
'राम' सकल नामन ते अधिका।
होहु नाथ अघखग गन बधिका॥
राका रजनी भक्ति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन विमल, बसहुं भक्त उर व्योम॥

यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ! रामनाम सब नामों से बढ़कर हो और पाप रूपी पक्षियों के लिये यह बधिक के समान हो।

आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है उसमें 'राम' नाम पूर्ण चद्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागन होकर भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में निवास करें। यह है इन दो अक्षरों की महत्ता।

इन दो अक्षरों (रामनाम) का प्रभाव अपार है। इन्हींके प्रभाव से श्रीगणेशजी प्रथम पूज्य हुये। इन्हीं के प्रभाव से शिवजी ने काल कूट विषको अमृत के समान पान किया। इन्हीं के प्रभाव से श्री हनुमानजी ने भगवान को अपने वश कर रखा है। इन्हीं दो अक्षरों (राम राम) को उलटा 'मरा मरा' जपकर बाल्मिकीजी ब्रह्म के समान हो गये।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

॥ कृष्ण देव ॥

परमपूज्यपाद १००८ श्री स्वामी श्री अखण्डानंद सरस्वतीजी महाराज के वचनामृत

(प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा)

परम पूज्यपाद श्रीस्वामी अखंडानंद सरस्वतीजी महाराज के यह सदुपदेश हमने बाँध पर और वृन्दावन में लिखे थे। इसमें जो गलती रह गई हो वह हमारी समझनी चाहिये, पूज्यपाद स्वामीजी महाराज की नहीं।

१—बड़े बड़े योगियों को भी, बड़े बड़े तपस्वियों को भी जो ध्यान करने को भी दुर्लभ है उसी श्रीकृष्ण के पीछे श्री श्री यशोदा मईया छड़ी हाथ में लिये भागी जा रही है। यह श्री यशोदा मईया का ही सौभाग्य है।

२—जिसके मन में क्रोध है और क्रोध होते हुये वह चाहता है कि हमारे मन में श्री भगवान आकर के बैठ जाँय भला ऐसा कैसे हो सकता है? भला जब तक इस मन में क्रोध की आग की भट्टी जल रही है तब तक उसमें श्री भगवान आकर कैसे बैठ सकते हैं? क्रोध रहते भगवान आकर नहीं बैठ सकते। पहिले इस क्रोध को दूर करना होगा तभी भगवान आकर के बैठेंगे।

३—इस कलियुग में भक्त हो कैसा भी हो वही भक्त मान लिया जाता है। परन्तु और युगों में भक्तों की बड़ी-बड़ी परीक्षायें होती है। इस युग में परीक्षा नहीं होती थोड़ा होना भी बहुत मान लिया जाता है।

४—जिसे वेद अकर्ता बताता है उसे ही श्री यशोदा मईया जब मारती है और बताती है कि इस ने यह अपराध किया है तो वह आज कर्ता बन जाता है।

५—अपने शास्त्राज्ञा का पालन करो इसी से पुण्य की प्राप्ती होती है। पाप क्या है और पुण्य क्या है इसे कोई मनुष्य नहीं बता सकता यह तो शास्त्र से ही मालूम हो सकता है। शास्त्र जिस काम को करने को कहे वही काम करना पुण्य है और शास्त्र जिस काम को करने को मना करे उस काम को करना ही पाप है।

६—प्रश्न—अन्त्यजों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार है या नहीं?

उत्तर—शास्त्र अन्त्यजों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार नहीं देता। यदि अन्त्यज जबरदस्ती मन्दिरों में जायेंगे तो उन्हें महान पाप होगा।

७—श्री तुलसीजी को यदि तुम यह समझ कर खावोगे कि इससे रोग दूर होते हैं तो इसके खाने से रोग तो दूर हो जायेंगे परन्तु पाप नष्ट नहीं होंगे। और यदि शास्त्राज्ञा मानकर खावोगे तो पाप तो दूर होंगे ही साथ ही रोग भी दूर हो जायेंगे।

८—प्रश्न—स्त्री का धर्म क्या है?

उत्तर—स्त्री का धर्म है अपने पूज्य पतिदेव की सेवा करना। पति सेवा करने से ही स्त्री का कल्याण हो जायगा।

९—प्रश्न-श्री महाराजजी यह देखने में आता है कि बहुत से मनुष्य पहिले खूब भगवान का भजन करते करते अब उन्हें भजन में अरुचि हो गई है। भगवान का भजन करते करते भी जो भजन में अरुचि हो जाती है इसके लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर—भजन करते-करते यदि भजन में अरुचि हो जाती है तो उस अरुचि को दूर करने के लिये भी हमें भगवान का भजन करना चाहिये। भजन में अरुचि होने पर भी भजन ही करना चाहिये भजन करना छोड़ना नहीं चाहिये। अरुचि होने पर भी भजन करते-करते अरुचि दूर हो जायगी और भजन में रुचि हो जायगी। जिस

प्रकार किसी को मिश्री कड़वी लगती है तो उसे मिश्री कड़वी लगने पर भी मिश्री खानी चाहिये मिश्री खाते-खाते वही कडवी लगने वाली मिश्री मीठी लगने लग जायेगी। इसी प्रकार भजन में अरुचि होने पर उस अरुचि को दूर करने का साधन भी भजन करना ही है सो बराबर भजन करना चाहिये।

१०—प्रश्न—भजन में अरुचि क्यों होती है इसका क्या कारण है?

उत्तर—इसका क्या उत्तर दिया जा सकता है? यह तो वही जानें कि जिसे भजन में अरुचि हुई है कि उसे भजन में अरुचि क्यों हुई है? भजन करते हुये भजन में क्या विघ्न पड़ा है? यह तो उसे ही पता है इसे दूसरा कोई क्या बतां सकता है?

११—प्रश्न—श्री महाराजजी भजन में अरुचि क्यों हुई क्या इसके जानने की भी आवश्यकता है?

उत्तर—हम बैठे हुए हैं हमारे ऊपर जो छप्पर है उसमें से यदि हमारे ऊपर कोई सर्प आकर पड़ता है तो उस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है? हम उस समय यह जानने की कोशिश करें कि हमारे ऊपर सर्प क्यों गिरा, कहाँ से गिरा, क्या कोई छप्पर में घोंसला है वहीं से गिरा या कहाँ से गिरा या उस समय इन सब बातों की परवाह न कर पहिले एक दम सर्प को उठाकर बाहर फेंक दें? उस समय हमें चाहिये कि हम एक दम सर्प को उठाकर फेंक दें और फिर बाद में चाहें तो कहां से गिरा, क्यों गिरा, कैसे गिरा मालूम करें चाहे न करें यह हमारी इच्छा है? भजन में अरुचि क्यों हुई इसकी परवाह न कर पहिले हमें भगवान का भजन कर अरुचि को दूर करना चाहिये फिर बाद में मालूम करो या न करो फिर यह तुम्हारी इच्छा है।

१२—प्रश्न—मंदिर में यदि अन्त्यज चला जाय तो हमें उस मंदिर में जाना चाहिये या नहीं जाना चाहिये।

उत्तर—क्यों नहीं जाना चाहिये मंदिर की शुद्धि करके जाना चाहिये।

१३—आजकल जबरदस्ती से नित्य ही अन्त्यजों को मंदिरों में ले जाया जा रहा है फिर शुद्धि कैसे हो सकती है? कुछ महात्माओं का कहना है कि उनमें नहीं जाना चाहिये।

उत्तर—नहीं जाना चाहिये घर पर भजन करना चाहिये। कानून से मंदिरों में अन्त्यजों को घुसाना इसके हम विरुद्ध हैं। एक राजा ने अपने राज्य में कानून बनाया कि सभी मेरे राज्य में प्रातःकाल 'काल संध्या किया करें जो संध्या नहीं करेगा उसे दंड दिया जायगा। संध्या के समय एक दिन एक ब्राह्मण लोटा लेकर जंगल में शौच होने के लिये गये। उन्होंने देखा कि सामने से राजा साहब घोड़े पर चढ़े हुये आ रहे हैं और यह समय संध्या करने का है राजासाहब ने देख लिया तो मुझे दंड देंगे। झट से ब्राह्मण बैठ गये और लगे संध्या का स्वांग करने। राजा ने पास में आकर कहा कि तुम संध्या कर रहे हो फिर तुम्हारे कान पर यह जनेऊ क्यों चढ़ा हुवा है? ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि राजासाहब यह आपके कानून की संध्या है। मुझे शौच की हाजत हुई थी शौच होने के लिये आया था इसीसे मेरे कान पर यह जनेऊ चढ़ा हुवा है आपको देखकर डर के मारे संध्या करने बैठ गया और जल्दी में जनेऊ उतारना भूल गया। इसी प्रकार आज यह भी कानूनसे मंदिरोंमें अन्त्यजों को घुसा रहे हैं यह ठीक नहीं कर रहे हैं।

प्रचार में सहायता

"नाम-महात्म्य" के प्रकाशन का उद्देश्य एक मात्र भगवन्नाम प्रचार करना है। आप इसे स्वयं अपना कर एवं अपने इष्ट मित्रों को इसके ग्राहक बनाकर भगवन्नाम प्रचार कार्य में सहायता कीजिये वार्षिक मूल्य २=) मनिआर्डर द्वारा भेजियेगा।

नाम-माहात्म्य" कार्यालय
मु० पो० वृन्दावन [मथुरा]

"अमूल्य उपदेश"

(संगृहीत)

तुलसी गुरु प्रताप से, ऐसी जान पड़ी।
नहीं भरोसा श्वास का, आगे मौत खड़ी॥
तुलसी विलँब न कीजिये, भजिये नाम सुजान।
जगत मजूरी देत हैं, क्यों राखें भगवान॥
प्रारब्ध प्योतो दियो, जब लग रहै शरीर।
तुलसी चिन्ता मत करो, भज लो श्री रघुवीर॥
भजन करन को आलसी भोजन को हुशियार।
तुलसी ऐसे पतित को, बार बार धिक्कार॥
तुलसी या जग आयके, कर लीजे दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरि नाम॥
तुलसी या संसार में, पांच रतन हैं सार।
संत मिलन अरु हरि भजन, दया दीन उपकार॥
राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार॥
राम भरोसे राम बल, राम-नाम विश्वास।
सुमिरत शुभ मङ्गल कुशल, माँगत तुलसीदास॥
प्रभुता को सब कोइ भजै, प्रभू को भजै न कोय।
तुलसी जो प्रभू को भजै प्रभुता चेरी होय॥
तुलसी पिछले पाप से, हरि चर्चा न सुहाय।
कै ओंघे कै लड़ि मरें, कै घर को उठि जाँय॥
कूकर शूकर करत है, खान पान सम्भोग।
तुलसी वृथा न खोइये, यह तन भजिवे योग॥
सत्य वचन आधीनता, परत्रिय मातु समान।
इतने में हरि ना मिलैं, तुलसीदास जमान॥
धन जोबन यों जायगो, जा विधि उड़त कपूर।
नारायण गोपाल भज, क्यों चाटै जग धूर॥
नारायण हरि भजन में, तू जनि देर लगाय।
क्या जाने या देर में, श्वास रहै की जाय॥
नारायण तू भजन कर, कहा करेंगे कूर।
अस्तुति निन्दा जगत की, दोऊन के शिर धूर॥
दो बातन को भूल मत, जो चाहत कल्यान।
नारायण एक मौत को, दूजे श्री भगवान॥
मगन रहै नित भजन में, चलत न चाल कुचाल।
नारायण ते जानिये, यह लालन के लाल॥
विद्यावंत स्वरूप गुण, सुत दारा सुख भोग।
नारायण हरि भक्ति बिन, यह सब ही हैं रोग॥
चार दिनन की चाँदनी, यह सम्पति संसार।
नारायण हरि भजन कर, जासों होय उबार॥
नारायन सतसंग कर, सीख भजन की रीत।
काम क्रोध मद लोभ में, गई आरबल बीत॥
नारायण जब अंत में, यम पकरेंगे बाँहि।
तिनसों भी कहियो इमैं, अभी सोफतों नाँहि॥
बाँट खाय हरिको भजे, तजै सकल अभिमान।
नारायण ता पुरुष को, उभय लोक कल्यान॥
बहुत गई थोरी रही नारायण अब चेत।
काल चिरैया चुग रही, निशदिन आयू खेत॥
तेरे भावें कुछ करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठिके, अपनो भवन बुहार॥
संत सभा झाँकी नहीं, कियो न हरि गुणगान।
नारायन फिर कौन विधि, तू चाहत कल्यान॥
नारायण मैं सच कहूँ, भुज उठाय के आज।
जो जिय बनै गरीब तू, मिलें गरीब निवाज॥
विद्या पढ़ करते फिरै, औरन को अपमान।
नारायण विद्या नहीं, ताहि अविद्या जान॥
कथनी कथ केते गए कर्म उपासन ज्ञान।
नारायण चारों युगन, करणी है परमान॥
जिनको मन निज वशभयो, तजकर विषय विलास।
नारायण ते घर रहो, करो भले बनवास॥
नारायण सुख भोग में, मस्त सभी संसार।
कोइ मस्त वा मौज में, देखो आँख पसार॥
नारायण या जगत में, यह दो वस्तु सार।
सबसों मीठो बोलिबो, करबो पर उपकार॥
नारायण परलोक में, यह दो आवत काम।
देना मुट्ठी अन्न की, लेना भगवत नाम॥

किये न मानत और को, परहित करत न आप।
नारायण ता पुरुष को, मुख देखे सो पाप॥

नारायन दो बात को, दीजै सदा बिसार।
करी बुराई और ने, आप कियो उपकार॥

तज पर अवगुण नीर को, क्षीर गुणन सों प्रीत।
हंस संत की सर्वदा, नारायण यह रीत॥

तनिक मान मन में नहीं, सबसों राखत प्यार।
नारायण ता संत पै बार बार बलिहार॥

रे मन क्यों भटकत फिरै, भज श्री नंदकुमार।
नारायण अजहूं समझ, भयो न कछू बिगार॥

नारायण बिन बोध के, पंडित पशू समान।
तासों अति मूरख भलो, जो सुमिरे भगवान॥

एकै अक्षर पीव का, सोई सत कर जाणि।
राम नाम सत गुर कह्या, दादू सो परिवाणि॥

दादू नीका नाँव है, तीन लोक तत सार।
रात दिवस रटवो करो, रे मन इहै विचार॥

दादू नीका नाँव है, हरि हिरदै न विसारि।
मूरति मन माहैं बसै साँसै साँस सँभारि॥

साँसै साँस सँभालताँ, इक दिन मिलिहै आई।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुर दिया बताइ॥

दादू नीका नाँव है, सो तू हिरदै राखि।
पाखँड परपँच दूर करि सुन साधू जन की साखि॥

दादू नीका नाँव है, आप कहै समुझाई।
और आरम्भ सब छाड़ि दे, राम नाम ल्यौ लाई॥

राम भजन का सोच क्या, करताँ होइ सो होई।
दादू राम संभालिये, फिर बूझिये न कोई॥

राम तुम्हारे नाँव विन, जे मुख निकसे और।
तौ इस अपराधी जीव कौं, तीन लोक कत ठौर॥

रामनाम गुर सबद सौं रे मन पेलि भरम।
निहकरमी सौं मन मिल्या, दादू काटि करम॥

एक राम के नाँव विन, जिव की जरन न जाय।
दादू केते पचि मुए, करि करि बहुत उपाय॥

कबिरा हरिके नाम में, बात चलावे और।
इस अपराधी जीव को, तीन लोक नहिं ठौर॥

कबीर मन तो एक है, चाहे जहाँ लगाय।
चाहे हरि की भक्ति कर, चाहे विषय कमाय॥

कबीर यह मन लालची, समझै नाहिं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुशियार॥

सुमुरन की सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
हाले डोले सुरत में, कहै कबीर विचार॥

कबिरा सूता क्या करे, उठ किन जपहु मुरार।
इक दिन सोवन होयगो, लांबे पैर पसार॥

कबीर सोता क्या करे, जागन की कर चौंप।
यह दम हीरा लाल हैं गिन गिन गुरु को सौंप॥

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ शूरमा, जात बरण कुल खोय॥

सुमरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कहै कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेय सँभाल॥

कबीर सो मुख धन्य है, जिहि मुख निकसे राम।
देही किसकी बापुरी, पवित्र होय सब ग्राम॥

बात बनाई जग ठग्यो, मन परबोध्यो नाहिं।
कबीर यह मन ले गया, लख चौरासी माहिं॥

कबीर सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोई जानिये, जाके रामनाम धन होय॥

कबीर लूटना है तो लूटले, राम नाम की लूट।
फिर पीछे पछतायगा, जब प्राण जायेंगे छूट॥

(शेष पृष्ठ २ का)

नाम प्रभाव जान गन राऊ।
प्रथम पुज्य भये नाम प्रभाऊ॥
नाम प्रभाव जान शिव नीके।
काल कूट फल दीन्ह अमी के॥
अपेउ पवन सुत पावन नामू।
अपने वश करि राखेउ रामू॥
उलटा नाम जपत जग जाना।
बालमिकी भये ब्रह्म समाना॥

आजकल इस कलि-काल में तो संसार सागर से तरने का सरल उपाय केवल रामनाम ही है अतः इसका सुमरण करना ही जीवन का परम लाभ है।

कलि जुग केवल नाम अधारा।
सुमर सुमर उतरहु भव पारा॥

"भगवन्नाम का सच्चा लाभ कैसे हो" ?

(लेखक—सेठ श्रीनिवासदासजी पोद्दार)
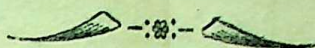
श्री भगवन्नाम माहात्म्य तो श्री गणपति लिखने बैठे, श्री सरस्वतीजी स्वयं लिखावे तो भी पूरा लिखा गया ऐसा कहना असत्य ही सिद्ध होगा ऐसा ही उपदेश मिलता है। श्रीभगवन्नाम माहात्म्य कहने सुनने की वस्तु ही नहीं यह तो अनुभव करे या अन्यों से करवा कर देखे। श्री वृन्दावन में ७००-८०० माईयों का पालन कीर्तनादि द्वारा होता है उनको साधन करवाने वाले धन्य है, सेवक धन्य है माईयां धन्य है। उस स्थान के शब्द जहां तक जाते हैं वह धन्य है श्री वृन्दावन आदि वृज चौरासी कोश आज भी वही श्रीकृष्ण भगवान की साक्षात लीला नित्य विभूषित है हम हमारे अल्प बुद्धि से चर्म चक्षु से न देख सके यह दूसरी बात है। यदि कोई देखना चाहे वे पहिले अपने को देखने योग्य बनावे नर अवतार श्रीअर्जुन श्रीनारायण के नित्य संग रहकर भी दिव्य दृष्टि न मिली तब तक श्रीनारायण का विराट रूपदर्शन न कर सके अतः प्रत्यक्ष में देखने के लिये पहिले पार्थिव शरीर का संशोधन करना पड़ेगा इस उद्देश से मानव देह मिलता है।

श्री भगवान श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द वृजचन्द स्वयं श्रीमुख से कहते हैं (महाभारत) द्रौपदी के एक बार के हे गोविन्द नामोच्चारण का ऋण से उद्धार कैसे हो जो प्रतिक्षण बढ़ रहा है।

वह कौनसी अवस्था तथा कौनसा ढंग जिस से एक बार का नामोच्चारण प्रतिक्षण नामी पर ऋण बढ़ाता ही रहे। यहां जरा विचार करें कि श्री द्रौपदीजी राजकुमारी और चक्रवर्ती विश्व विजयी सम्राट श्री युधिष्ठरादि पांचों भाइयों की परम पवित्र पतिव्रता पत्नि पाट महिषि महाराजा धृतराष्ट्र की राज सभा जहां परम धार्मिक भीष्म पितामहादि उपस्थित श्री द्रोणाचार्य श्री कृपाचार्यादि महर्षि विराजमान पांचों परम सूरवीर पति उपस्थित ऐसी राज सभा में एक वस्त्रा ऋतुधर्म काल में दुशासन द्वारा केश पकड़ कर जबरदस्ती लाई जाये उसे नग्न करने को वह वस्त्र भी खैंचने का प्रयास हो ऐसे समय सबसे श्री द्रौपदीजी ने अपने बचाव की प्रार्थना की सब नतमस्तिष्क हो चुप हो गये सब आश्रय लोप हो गये देखकर जो दुख अनुभव उस क्षण में उन्हें हुवा होगा कष्ट और क्रोध घृणा या असहायावस्था का भान हुआ होगा उसको कौन विचार कर भी जान सकता है जिस नग्नावस्था को भरी सभा में वैश्या भी सहन नहीं कर सकती है उस अवस्था को राज सभा में एक चक्रवर्ती सम्राज्ञी परम विश्रा पाट महिषि कैसे सहन करे अत्यन्त कातरता से अन्य सब उपाय को निष्फल देख इष्ट का नामोच्चारण किया। समस्त वृत्तियां एक इष्ट में पूर्ण निश्चित सफलतादायक विश्वास से लग गई। हे गोविन्द हे द्वारकावासीन् निकल पड़ा इसी तरह समस्त भौतिक संसार के कार्यों का त्याग होकर यदि इष्ट नामोच्चारण हो तो प्रभु पर ऋण बढ़ता ही जायेगा यही श्रीमद्भागवत का कीट भ्रमर न्याय है। श्रीमद्भागवत गीता का यही अभ्यास वैराग्य रूप जीव के निस्तार का उपदेश है।

श्रीगोस्वामीपाद श्री तुलसीदासजी महाराज ने दोहावली में एक दोहे में यही स्थिति प्राप्त करने की विधि बता कर उसका फल भी बताया है उसके करने पर निश्चय सफलता होगी यह

विश्वास दिखाने के लिये अपने हस्ताक्षर रूप अपने नाम का उल्लेख भी किया है यथा

"पय अहार, फलखाय, जपु राम नाम षटमास"
"सकल सुमङ्गल सिद्धी सब, करतल तुलसीदास"

इस सूत्र रूप दोहे का भाव यह है कि मानव देह रक्षा के लिये स्नान, भोजनपान आवश्यक है स्नान करेतो निद्रा, भोजन पान, करेतो मल मूत्र त्याग यह शरीर रक्षार्थ अनिवार्य अतः यह तो करे परन्तु अन्य कोई कार्य न करे चोबीस घंटे नित्य निरंतर तैल धारावत् श्रीगुरुप्रदत्त इष्ट नाम राम (या अन्य नाम श्रीकृष्ण) आदि के ध्यान जप कीर्तन से लगा रहे। फलाहार आदि भी ऐसा प्रबन्ध करके रखले कि पयस्विनी के जल से स्नान करे तब धोले आवश्यकतानुसार शुद्ध आहार शुद्ध जल अपने द्वारा संग्रहित का उपयोग करे ऐसे ६ मास पर्यन्त भौक्तिक संसार के एक दम दूर मौनी गुरुप्रदत्त इष्ट नाम में समस्त वृत्तियों को केन्द्रित करदे मौन द्वारा वाक् प्रदर्शन द्वारा नेत्र एकान्त द्वारा कर्ण इन्द्री को बस में करले प्राण तो नाम चौबीस घंटा जहां होगा वहां प्रभु के प्रसाद की सौगन्ध अनुभव करेगा स्पर्श का सुख उसी इष्ट मंत्र में लग जायेगा। न अन्य को देखे न किसी से स्पर्श करे न किसी का स्पर्श किया पदारथ लेवे। शरीर की समस्त वासनाओं का स्वतः ही त्याग कहो चाहे समस्त वासनाओं का एक इष्ट नाम और ध्यान में केन्द्रित करने का प्रयास कहो इस दोहे से नित्य जप संख्या न देने से श्रीगोस्वामी पाद यही उपदेश करते हैं शारीरिक समस्त विषये को त्याग करके इष्ट नाम ६ मास पर्यन्त लगादो जो नित्य निरंतर अभ्यास से इष्ट नाम के साथ पूर्णतया लगजाने पर सकल सुमंगल सब सिद्धी जिसके करतलगत है वे प्रभु प्राप्त होंगे या सीव माया से प्रावरण को पाकर जीव हुवाथा वह पुनः सीवत्वलाभ करलेगा यह साधन करने पर सफलता निश्चित है याने जामीन है तुलसीदास इसका यह भी भाव है कि इष्ट नाम गुरु प्रदत्त छोड़कर अन्य भगवन्नाम में भी वृत्ति न जाने दे अन्य शब्दों की तो बात ही क्या है। यह तो चित्रकूट के व्याज से बताया है जहां प्रभु की नित्य लीला जिस रूप माधुरी और नाम माधुरी से होती हो वहां उसी नित्य लीलाविहारी के धाम वहां का पवित्र जल उसीका रूप नाम का अभ्यास करे अर्थात् वृजवासी श्रीकृष्ण नाम की गुरु से दीक्षा ले यमुना किनारे एक दम ऐकांत में ६ मास के लिये खाद्य पदारथ रखले। जो कीट आदि से बचा रहे श्रीयमुना जल का ही सेवन करे यहां यह बताना चाहता हूँ १५-१६ वर्षों के अन्तर की बात है एक महात्मा ने ६ मास के खजुर भरकर रखलिये नित्य पयस्विनी श्री मन्दाकिनीजी के जल के साथ उपयोग करते थे-फिर प्रभु प्रेरणा से २-३ वर्ष प्रयाग वास किया इसके बाद प्रभु प्रेरणा हुई कि काशी में फिर ६ मास प्रयोग करो फिर वह शरीर नित्य लीला में सदेह लोप हो गया यह घटना असत्य से एक दम दूर सत्य घटना लेखक स्वयं जानता है इसमें कोई प्रकार का अर्थवादादि भ्रांति न करे-यह परम सत्य घटना है कोइ न मानेतो स्वय प्रयोग साधन करके देखले-और प्रत्यक्ष फल का अनुभव किया जावे! हां, कलि में एक बार वाला प्रयोग चतुर्गुण करने तक की व्यवस्था दी है।

लेखक तो क्षुद्र जीव है महात्माओं का प्रसाद से जो जानता है लिखा है इसमें कोई शंका समाधान हो तो अवश्य मुझे लिखकर पूछें यथाज्ञान यथाशक्ति मैंने उत्तर देने का विचार किया है कोई मेरे ज्ञान से ऊपर होगा तो महात्मा भागवतों विद्वानों से पूछकर उत्तर देने का प्रयास करूंगा इस प्रयोग के विपक्षी और पक्षपाती सर्व ही निसंकोच पत्र लिखें

———

— रामचरित मानस की अनुक्रमणिका —

लेखक शास्त्री पं० श्री गोविन्दजी दुबे "साहित्यरत्न"

हिमालय की उत्तुंग शिखर पर और उसकी घाटियों के बीच में पड़े हुए बर्फ-समूह पर जब भगवान् अंशुमाली को प्रखर और तीव्र रश्मियाँ पड़ती हैं उस समय वह समस्त बर्फ समूह अपना रूपान्तर करके अर्थात् जल रूप होकर अपने अनन्त-काल-वियोगी प्रियतम, सागर मिलन की सदिच्छा से नाना नदी रूपों में प्रवाहित होने लगता है; भगवान् मरीचिमाली की उदयावस्था में कमलवृन्द प्रफुल्लित हो उठते हैं, भ्रमर समुदाय आनन्दित होते हैं; तारागणों की ज्योति रात्रि व्यतीत होने के अनन्तर मलीन पड़ जाती है; चकवा-चकवी, सानन्द समय व्यतीत करते हैं; ठीक यही स्थिति उस भक्त हृदय की होती है जिसमें राम रूपी सूर्य का प्रादुर्भाव होता है। जीवात्मा का चिर-वियोगी प्रियतम परमात्मा हैं, अनादि काल से जीव का उससे विलगाव हो जाना ही यह भटकाव है बिना उसके सान्निध्य के इसे शांति प्राप्त हो नहीं सकती; जिस दिन यह उस जल की भाँति अपनापन छोड़कर अपने प्रियतम के तद्रूप हो जाता है, तत्क्षण इसे सच्चा-सुख, शाश्वत-शान्ति, परमानन्द की उपलब्धि हो जाती है:—

यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपं विहाय।
तथा विद्वान्नाम रूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥
(मु० उ० ३। २। ८)

सरिता जल जलनिधि महँ जाई।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

प्रत्येक ग्रन्थ और ग्रंथकार का अपनी रचना में अपना निजी उद्देश्य रहता है; मानस और मानसकार का उद्देश्य जीवात्मा को शाश्वत-शांति प्राप्त कराना है जिसका स्पष्ट निराकरण यह है:—

'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' (उपक्रम)
'मत्वातद्रघुनाथ नामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये" (उपसंहार)

बस, इसी एक मात्र उद्देश्य पर रामचरित मानस की रचना है अतः इसमें आद्योपान्त भगवान् राम के नाम, रूप, लीला, धाम, गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य, माधुर्य, शक्ति, शील तथा सौन्दर्य का सांग वर्णन मिलता है। प्रत्येक ग्रन्थ अथवा लेख के मुख्यतः तीन विभाग होते हैं, (१) प्रस्तावना (२) मूल विषय (३) उपसंहार। (प्रस्तावना) भूमिका दो प्रकार से लिखी जाती है एक तो वह जिसे पढ़ते ही मूल विषय का पूर्व पता लग जावे कि उक्त ग्रन्थ में कौनसा विषय है, दूसरी इसके विपरीत होती है, इनमें प्रथम प्रकार की भूमिका सर्वोत्तम समझी जाती है, साहित्य के इस नियम के अनुसार रामचरितमानस की भूमिका है शिव-विवाहोपरान्त उमाशंकर का सम्भाषण। उक्त प्रकरण रामायण बालकाण्ड के १०४ वें दोहे से प्रारम्भ होकर १२० वें दोहे तक है।

भारत के उत्तरीय विभाग में हिमालय की एक शिखर का नाम कैलास है, कैलास बड़ी ही सुरम्य भूमि है, जहाँ स्वयं ही जगद्-धात्री प्रकृति अपनी सहचरियों के साथ सेविका होकर भगवान् भूतनाथ की सेवा में तत्पर रहती है, भला, उसका क्या वर्णन किया जा सकता है? उस सुरम्य शिखर पर देव-नदी का कल-कल-नाद, जल-विहंगों का सुमधुर संगीत, हठात् मनोमोहक हैं, जाह्नवी के पावन कूल

पर, सिद्ध-तपस्वी, योगी, देवता एवं मुनिवृन्द अपने सुंदर और छोटे-छोटे आवास बनाकर निवास करते हैं, समीप के उपवन में हिंसक जन्तु पारस्परिक स्वाभाविक प्रवृत्ति छोड़ कर वहां नित्य विचरण करते हैं, वहाँ एक विशालकाय और नित्य नवीन रहने वाला वट-वृक्ष है जिसको, शीतल, मन्द सुगन्ध पवन के झोके आनन्द प्रदान करते हैं। भागीरथी का कलकलनाद, वायु के झोकों का ताण्डव, शान्तरस के अधिष्ठाता भगवान् भूतनाथ के स्वरूप के सौन्दर्योत्पादक थे। कुन्द, इन्दु अथवा कम्बु के समान गौरवर्ण, एवं मस्तक पर जटाओं का मुकुट था, द्वितीया का राकेश अपनी, शीतल शुभ्र एवं मधुमय रश्मियों द्वारा भक्तजनों के कल्मषों का आकर्षक था, कण्ठ की नीलिमा, विकसित कमल सदृश विशाल नेत्र, आजानु बाहुएँ जो नाना आभूषणों से युक्त थीं, भक्तों का भव-निवारण करने के लिए इस प्रकार फैल रही थीं। शरीर की कान्ति उत्पादक थे, उस समय भगवान् भूतनाथ का भक्त-जन-मनहारी स्वरूप शान्त रस का प्रतीक था, निशीथ की शीतल, मन्द आभा ने इस स्थान को आनन्दमय बना रखा था ऐसे त्रिलोचन एक समय उस विशाल वट के नीचे समाधि की सदिच्छा से पधारे चिरपालित मृगचर्म को पृथ्वी पर बिछा कर उस पर आसीन हो गए। सुधांशु की धवल-धूसरित रश्मियों के मन्द-मन्द प्रकाश में अपने मनोगत भावों का स्पष्टीकरण कराने की सदिच्छा ने भगवती पार्वती को भगवान् शंकर की सेवा में उपस्थित होने को बाध्य किया। भगवती उमा को भगवान् शंकर ने सदैव अपने वामांग में स्थान दे रखा है अभी कुछ समय पूर्व सती द्वारा किए हुए अपराधों के परिणाम स्वरूप त्यक्ता उमा अपने अपराध का प्रक्षालन कराने पुनः उपस्थित हुई हैं।

साधारण जीवों के विचार और संकल्प, भावनाएँ एवं कर्तव्य सदैव एक से नहीं रहते, देश काल एवं पात्र की परिस्थिति से उनमें परिवर्तन होते रहता है, परन्तु जो सिद्धान्ती पुरुष होते हैं उनके विचार एवं संकल्प दो नहीं होते। सती सीता वेष के अपराध से त्यक्ता थीं उन दोनों का निश्चय था:—

> एहि तन सतिहिं भेटि मोहि नाहीं।
> सिव संकल्प कीन्हा मन माहीं॥
> जनम कोटि लगि रगरि हमारी।
> बरउँ संभु न तु रहउँ कुआरी॥

इन दो निश्चयों ने दो अभिन्न हृदयों को अब तक अलग कर रखा था, परन्तु कठिन तपस्या, अपूर्व त्याग के परिणाम स्वरूप विधाता ने आज पुनः वह दिन उपस्थित किया है कि भगवान् शंकर ने "वाम भाग आसन हर दीन्हा" यद्यपि पार्वती के सन्देह का समूल उच्छेदन अब तक भी नहीं हो पाया था फिर भी वह जली हुई रस्सी के समान था।

जीव तब तक अपूर्ण रहता है जब तक उसमें किंचित् भी जीवत्व अवशेष रहता है, तब तक उसके हृदय में नाना प्रकार की कुतर्कों का प्रतिक्षण प्रादुर्भाव तिरोभाव होता रहता है, उसकी मनः प्रवृत्ति विशुद्ध नहीं होती जब तक कि वह अपने चिर-वियोगी-प्रियतम की सन्निधि से विलग रहता है, पार्वती उन्हीं जीवों में से एक है क्योंकि भगवान् की माया जो ठहरीं। एक समय सती शंकर के साथ वन में विहार कर रही थी घुणाक्षरन्यायेन सरकार राघवेन्द्र भी नराट्य अभिनय के पात्र बने आ निकले। भगवान् शंकर ने अपने इष्ट को "जय सच्चिदानन्द जगपावन" कह कर प्रणाम किया, बस, सती के हृदय में उक्त 'सच्चिदानन्द' शब्द ने भ्रान्ति पैदा कर दी, वे अब तक भगवान् शंकर को ही सच्चिदानन्द माने बैठी थी इसलिए उन्हें एक स्त्री वियोगी को सच्चिदानन्द कहना सहन नहीं हुआ, उनके हृदय में

शंकर के शब्दों पर अविश्वास भी नहीं हो सका। पति के शब्दों पर विश्वास और प्रत्यक्ष कर्म ने उनके हृदय में सामंजस्य उपस्थित कर दिया जिससे सन्देह हो गया। अन्तर्यामी भगवान् ने इस भाव को जान लिया और परीक्षार्थ आज्ञा दे दी। सती ने अपराध किया, माता का वेष बनाया और भगवान् शंकर से छिपाव किया जिसका परिणाम उन्हें अब द्वितीय रूप में अपनी पूर्ण शंका का स्पष्टीकरण कराने उपस्थित होना पड़ा। शास्त्रीय मर्यादानुसार प्रणाम करने के अनंतर पार्वती ने बड़े सुंदर शब्दों में शंकर की स्तुति की।

विश्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी।
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा॥
प्रभु समरथ सरवग्य सिव, सकल कला गुण धाम।
योग ग्यान वैराग निधि, प्रनत कलपतरु नाम॥
जौं मोपर प्रसन्नसु खरासी × × ×
कहि रघुनाथ कथा विधि नाना॥

संतों का हृदय बड़ा ही कोमल होता है, नवनीत अपने ताप से रूपान्तर करता है परन्तु सन्त सदैव पराए दुःख से द्रवित होते हैं। भगवान् शंकर संहार के देवता होते भी भगवान् राम के अनन्य भक्त हैं, उनके हृदय में सन्तों के समस्त गुण विद्यमान हैं, पार्वती की रोमांचकारी स्तुति ने उन्हें आज्ञा प्रदान की जिससे पार्वती ने अपना सन्देह प्रगट किया राम कितने हैं ? कैसे हैं ? ब्रह्म कौन है ? दशरथ नन्दन अथवा इससे भिन्न कोई अन्य ? योगियों का राम कौन है एवं जिसके पावन नाम का आप निरंतर उच्चारण किया करते हैं वह कौन है ?

प्रभु जे मुनि परमारथवादी, कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी।
सेषशारदा वेद पुराना, सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥
\+ \+ \+ \+
जौ अनहि व्यापक बिनु कोऊ, कहिअ बुझाइ नाथ मोहि सोऊ।
जौ प्रभु मैं पूछा नहिं होई, सोउ दयाल जनि राखहु गोई॥

मैं बन दीखि राम प्रभुताई, अतिभय विकल न तुम्हहिं सुनाई।
तदपि मलिन मन बोधु न आवा, सो फल भलीभांति हम पावा॥
अजहूं कछु संसय मन मोरे, करहु कृपा बिनवउँ कर जोरे।
तब कर अस बिमोह अब नाहीं, रामकथा पर रुचि मनमाहीं॥

पार्वती ने अपने उक्त सन्देह को उपस्थित कर नीचे लिखे प्रश्न उपस्थित किए। पार्वती के प्रश्नों को हम दो विभागों में विभाजित करते हैं। (१) पूर्वार्द्ध (२) उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में ६ और उत्तरार्द्ध में ८ इस प्रकार कुल १४ प्रश्न हैं। पूर्व में भगवान् के अवतार का प्रयोजन एवं उनकी नरलीला का वर्णन तथा उत्तर में बहुरि पद देकर उनके गुण प्रभाव के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की।

प्रथम सो कारन कहहु विचारी, निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी।
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा।
\+ \+ \+ \+
सकल कहहु संकर सुख लीला॥
'बहुरि' कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि, किमि गवने निज धाम॥
\+ \+ \+ \+
जौं प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल जनि राखहु गोई॥

जो भगवान् के अनन्य भक्त हैं; जिन्होंने अपना. तन मन, धन सर्वस्व अपने प्रभु के पावन चरणों में समर्पण कर एकाकी जीवन व्यतीत करना स्वीकार किया है; जो अशुभवेष में रहकर भी जगत के कल्याण का ठेका लेकर बैठे हैं; अमंगल वेष में स्वयं रहकर जगद् का सदैव मंगल करते हैं; ऐसे भूतनाथ के हृदय में समस्त रामचरित का स्मरण हो आया, पार्वती के प्रश्नों ने उनके एक एक अंग को बोलने की शक्ति दी उनका प्रत्येक रोम-रोम राम कथा के लिए उद्यत हो उठा; समस्त सात्विक भावों का उदय हो गया। राघवेन्द्र सरकार की हृदयस्थित झांकी सामने थिरकने लगी:—

(क्रमशः)

नाम-महिमा

(ले०—श्री राजनारायणजी द्विवेदी साहित्यरत्न काव्यतीर्थ)

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत विचारि॥
जो चेतन कहं जड़ करइ जड़हि करहि चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायक हि भजहि जीवते धन्य॥

राम का नाम लेकर अगस्त्यजी ने सागर सोख लिया था, समुद्र में धूल उड़ने लगी थी। राम का नाम लेकर हनुमानजी समुद्र लाँघ गये थे। नाम की महिमा से राम ने समुद्र में पुल बांधा था। नाम लेकर कौशल्या ने राम को पाया था।

भगवान को अपना नाम इतना प्रिय है कि उस नाम को लेने वाला स्वयं आनन्द सागर में गोता लगाने लगता है और अपनी अभिलाषा पूर्ण कर लेता है।

एक समय की बात है। अयोध्या में सरयू नदी के तट पर हनुमानजी की माता अंजना, अगस्त्य की माता तथा कौशल्या आपस में बातचीत कर रही थीं। अंजना ने कहा कि मैं सबसे बड़ी हूं, क्योंकि मेरा बेटा बजरंग एक छलांग में समुद्र पार गया था। अगस्त्य की माता ने कहा कि तेरी महिमा नहीं है ? मेरी महिमा है; क्योंकि मेरा बेटा अगस्त्य उस समुद्र को एक चुल्लू में करके धत्ता बता दिया था। कौशल्या ने कहा कि मेरा बेटा राम समुद्र में सेतु बांध कर लंका की राह सुगम कर दिया था। अंजना ने कहा कि—उन्होंने बन्दरों की सहायता से वैसा किया था। इस काम से उनकी क्या बड़ाई ? इसी बात को अगस्त्य जननी ने भी दुहराया।

यह सुनकर कौशल्याजी निरुत्तर हो गई। और घर आकर राम से पूछा—बेटा ! क्या तुमको पाकर मैं बड़ी नहीं हूं ? देखो न अंजना और अगस्त्य माता ने प्रसंगवश ऐसी ऐसी बातें कहीं हैं। राम ने कहा माताजी तुम्हारा बड़ा भाग्य है जो मैं तुम्हारा पुत्र हूं। जानती हो तुम से बढ़कर किसी का भाग्य नहीं तू सबों से श्रेष्ठ हो। एक बात सुनो ? जावो उन दोनों को मेरे पास बुला लावो ? वे दोनों आईं; और अपनी बड़ी होने का प्रमाण प्रस्तुत करने लगीं। राम ने कहा कि बात ठीक है, पर रहस्य की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। देखो अगस्त्य ने अपनी शक्ति से समुद्र को न सोखा ! उन्होंने तीन बार "राम-राम-राम" कह कर समुद्र में हाथ लगाया और उसका दिवाला निकल गया था। इसमें राम नाम की महिमा है ? अगस्त्य की नहीं ? और अंजना जो तू कहती है कि मेरा बेटा समुद्र......तो उस हनुमान में छलाँग मारने की शक्ति कहाँ से आई थी ? जिस समय समुद्र पार करने की समस्या आई थी उस समय बड़े बड़े वीर असमंजस में पड़ गए थे। अथाह समुद्र की गर्जना से सबकी हिम्मत टूट गई थी। तब तुम्हारा बेटा 'रघुपति कर दूत' हृदय राखि कोशलपुर राजा......का नाम लेकर, उस पार जा धमका।

तीसरी बात कि बन्दरों की सहायता से बंधा पुल यह भी बात अयुक्ति संगत है। जिस समय कपि-दल पहाड़ों की चट्टान लाता था उस समय 'श्रीराम-राघव' कह कर ही प्रेम से उठाता था। यही कारण था कि राम में श्रद्धा-विश्वास के भरोसे उनका कार्य था। राम अपनी शक्ति देकर उनसे काम लेते थे। उन बन्दरों की राम में इतनी भक्ति थी कि अनायास पहाड़ समुद्र के किनारे चले आते थे। नल और नील इन बन्दरों ने पुल बांधने में कला-कौशल्य नहीं दिखाया था। चट्टानों पर राम-राम लिखकर बिना गिलावा और मसाला से पुल अति सुन्दर और मजबूत बना था।

देखो:—

जामवंत बोले दोउ भाई।
नल नीलहि सब कथा सुनाई॥
रामप्रताप सुमिरि मन माँही।

करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ।।
बोलि लिए कपि निकट बहोरी ।
सकल सुनहु विनती कछु मोरी ।।
रामचरन पंकज उर धरहू ।
कौतुक एक भालु कपि करहू ।।
धावहु मरकट विकट बरूथा ।
आनहु विटप गिरिन्ह के जूथा ।।
सुनि कपि भालु चले करि हूहा ।
जय रघुवीर प्रताप समूहा ।।
अति उतंग गिरिपादप, लीलहिं लेहिं उठाई ।
आनि देहिं नल-नीलहि रचहिते सेतु बनाई ।।
सैल विशाल आनि कपि देहीं ।
कन्दुक इव नीलते लेहीं ।।
देखि सेतु अति सुन्दर रचना ।
बिहसि कृपानिधि बोले बचना ।।

\+ + +

गिरिजा रघुपति कै यह रीति ।
संतत करहिं प्रनत पर प्रीती ।।
बांधा सेतु नील नल नागर ।
राम कृपा जसु भयउ उजागर ।।
बूड़हिं आनहि बोरहि जेई ।
भये उपल बोहित सम तेई ।।
महिमा यह न जलधि के बरनी ।
पाहन गुन न कपिन्ह कह करनी ।।
श्री रघुवीर प्रताप ते सिंधु तरे पाखान ।
ते मति मंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ।।

लोक-रचक भगवान राम ने वानरों को निमित्त बना-कर वहाँ अपनी शक्ति का लघु परिचय दिया था । उससे अवगत हुए भालु--कपि दल और समुद्री जलचर भगवान् परात्पर ब्रह्म राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर जलचर प्रेम पुलकित हो अतृप्त दर्शन चाहते हैं— अत: सेतु के निकट जाकर उस पर चढ़ गए हमारे राम । भगवान् राम समुद्र की विशालता देख रहे थे । और जल-चर उनको देखकर कृतार्थ हो रहे थे । परस्पर के बैर भाव को भूलकर सब जीव मस्त मग्न हो रहे थे—

बांधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा ।
देखि कृपानिधि के मन भावा ।।
चली सेन कछु बरनी न जाई ।
गर्जहि मर्कट भट समुदाई ।।
सेतु बंध ढिग चढ़ि रघुराई ।
चितव कृपाल सिंधु बहुताई ।।
देखन कहँ प्रभु करुना-कंदा ।
प्रकट भये सब जलचर वृंदा ।।
मकर नक्र नाना झष व्याला ।
सत जोजन तन परम विशाला ।।
अइसेउ एक तिन्हहिं जे खाहीं ।
एकन्ह के डर तेपि डेराहीं ।।
प्रभुहि विलोकहिं टरहि न टारे ।
मन हरषित सब भये सुखारे ।।
तिन्हकी ओट न देखि अवारी ।
मगन भये हरि रूप निहारी ।।
सेतु बंध भइ भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं ।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ।।

इतनी बात सुनकर सबों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया कि कौशल्याजी सबसे श्रेष्ठ और महिमामयी हैं । राम के प्रताप से ही कौशल्याजी की महिमा गेय हुई ।

सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ।।
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव, बसहु सदा निहकाम ।।

❀ परमार्थ-समाचार ❀

जो लोग धारणा-ध्यान समाधी की शिक्षा एक सप्ताह में सीखना चाहते हों यहां आवें । रहने का स्थान मुफ्त मिलेगा । वे भक्त लोग अपने-अपने इष्टदेव का दर्शन पा सकेंगे और बातचीत भी कर सकेंगे । सैकड़ों व्यक्ति लाभ उठा चुके हैं ।

पता—
स्वामी पूर्णानन्दजी
सत्याश्रम
(सिटी स्टेशन के पास) बरेली

श्री भगवान् भजनाश्रम, एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देने वाले सज्जनों की नामावली

(मिती भादवा सुदी ६ सं. २००६ से आसोज सुदी ८ सं. २००९ तक महीना एक का)

१५) श्री० छद्म्मालालजी बांकेलालजी अफजलगढ
२०) " रघुनाथजी सूरजकरनजी कारन्जा
२०) " हरीकिशनजी शिवप्रतापजी "
१५) " मथुराप्रसादजी अग्रवाल कन्चरापारा
१६७॥) " मोहनीदेवीजी चाकोलिया
२१) " बनारसीदासजी झुनझुनूवाला "
५०) " धनराजजी द्वारकाप्रसादजी चम्पा
५) " बगडीया स्टोर जयपुर
५१) " रामीबाईजी त्रिम्बक
१०) " गोविन्दलालजी हिम्मतलालजी डमोई
१०१) " वैनीप्रसादजी जैपुरिया ट्रस्ट देहली
२०) " द्वारकाधीस कीर्तन मंडल "
२) " रामकुवारजी वेदप्रकाशजी "
२५) " सनेहीरामजी गोविन्दरामजी देशाईगंज
४) " हीरालालजी मदनलालजी नागदा
८) " सोनी हरगोपालजी दामोदरजी नकसारी
२५) " रसिकलालजी मोतीलालजी पानसर
२५) " रमनलालजी मोतीलालजी "
११) " रुकमनीबाईजी "
५०) " लक्ष्मीदासजी पहाड़ी
२१) " हरगोविंदजी केशवदेवजी बम्बई
३१) " बाबूरामजी बृजलालजी बरनाला
२५) " फकीरचन्दजी किशनदासजी "
२५) " काशीरामजी मंगतरायजी "
११) " कस्तूरचन्दजी हंसराजजी "
१५) " सादीरामजी बालमुकन्दजी "
११) " कन्हैयालालजी सोहनलालजी "
११) " बाबूरामजी मदनलालजी "
११) " इन्द्रसेनजी गिरधारीलालजी "

११) श्री० सरदार बलाकासिंहजी गुरुदत्तसिंहजी बरनाला
११) " श्रीरामजी पृथ्वीराजजी "
११) " जीवनरामजी रामजीदासजी "
११) " गोपालसहायजी मोतीलालजी "
५) " हजारीमलजी रामनिवासजी "
५) " अमीचन्दजी वैजनाथजी "
५) " प्रहलादरायजी अमरनाथजी "
५) " मिलखीरामजी ओमप्रकाशजी "
५) " रोनकलालजी चिरंजीलालजी "
५) " श्यामलालजी रघुनन्दनप्रसादजी "
५) " जट्टूमलजी बृजलालजी "
५) " राजारामजी ओमप्रकाशजी "
८।) " फुटकर प्राप्त "
११) " बद्रीदासजी सूरजभानजी भिवानी
५) " मुखरामजी वैनीप्रसादजी "
११) " गुजरात राईस मिल्स भाटापारा
१०) " प्राणलालजी चिम्मनलालजी मांडासा
११) " कुन्जलालजी जसरापुरिया रायपुर
११) " हिम्मतवेल बोरिंग कम्पनी " रोहतक
१८१) " गुप्तदान रोन
५१) " पूसारामजी लुधियाना
५१) " सरस्वतीदेवीजी
२५) " वन्शीधर चेरिटेबिलट्रस्ट सम्बलपुर
५) " चिरंजीलाल फतेचन्दजी सुनाम
५) " माधोरामजी जनारदनदासजी "
३७) " फुटकर प्राप्त

योग १३४३।) मात्र

श्री० भगवान भजनाश्रम में माईयों द्वारा भजन कराने वाले सज्जनों की नामावली

(मिती भादवा सुदी ६ सं० २००६ से आसोज सुदी ८ सं० २००६ तक महीना १ का)

५०॥=) श्री० सगनीबाईजी आरंग
५०॥=) " सूरजबाईजी "
२५-) " कासीबाईजी "
२५-) " सुशीलाकुमारीजी "
२५।-) " चन्द्रप्रभाबाईजी "
२५।-) " मथुराबाईजी "
१६॥=) " गंगाबाईजी "
८।≡) " सोनाबाई "
८।≡) " मीनाबाईजी "
८।≡) " सौराबाईजी "
८।≡) " पानाबाईजी "
८।≡) " चन्दाबाईजी "
८।≡) " मोहनीबाईजी "
८।≡) " कमलाबाईजी "
८।≡) " तीरम्बाबाईजी "
८।≡) " पारवतीबाईजी "
८।≡) " श्यामसुन्दरजी अग्रवाल अजमेर
८।≡) " कन्हैयालालजी सेडमलजी ओझर
८।≡) " गुरुदयालजी हनुमानदासजी अकलतरा
१०) " जी० के० अग्रवाल इटावा
५०६।) " गनपतरायजी सागरमलजी कलकत्ता
२०२॥) " ब्रह्मदत्तजी "
२०२॥) " जीवनीदेवीजी "
१०२) " दुरगादत्तजी गोयन्का "
१०१।) " गौरीदेवीजी "
१०१।) " स्वर्गीय नागरमलजी "
५१) " सत्यनारायणजी झूनझूनवाला "
५०॥=) " मथुरादासजी हीरालालजी "
२५-) " बिहारीलालजी भरतिया "
२५।-) " बिहारीलालजी की बहू "
२५।-) " विश्वकरमा इन्डस्ट्रीज "
८॥) श्री० बाबूलालजी बनवारीलालजी कलकत्ता
५०) " हीरालालजी जगदीशप्रसादजी कानपुर
३३॥।) " अपर इन्डिया सुगर एक्सचेंज "
२५।-) " रामनिवासजी दूरगढ़ किसनगढ़
८।≡) " राधाकिशनजी "

१८४६॥।≡)

२५।-) श्री छबीलदासजी जीवनदासजी कोभीकोड
२८) " बालकिशनजी मोहनलालजी कारन्जा
८।≡) " कमलाप्रसादजी लक्ष्मीनारायणजी करमीरोड
८≡) " रामाबाईजी लोहिया करेली
५०॥=) " कन्हैयालालजी अग्रवाल गुना
८≡) " गनेडीवाला ब्रादर्स गोरखपुर
४०५) " मोहनीदेवीजी चाकोलिया
१६॥=) " कन्दरजी मून्दडा जोधपुर
८।≡) " बापाबाईजी "
८।≡) " कृपाकिशनजी "
८।≡) " रामप्रतापजी "
८।≡) " बांचीबाईजी "
८।≡) " गुनानीजी "
४॥) " फुटकर प्राप्त "
२५।-) " छत्तलालजी मोतीलालजी टीटलागढ़
८।≡) " कुलूरामजी अग्रवाल "
१०१।) " बृजमोहनजी देहली
१०१।) " गीरधनदासजी "
१०१।) " बनवारीलालजी श्रीरामजी "
१०१।) " जगतनारायणजी सीतारामजी "
१०१।) " रामप्यारीबाईजी "
१०१।) " रामेश्वरदासजी सर्राफ "
१०१।) " श्योद्त्तयालजी रामलालजी "
२५।-) " एम० आर० ब्रादर्स "
२५।-) " किशनदासजी "

१६॥।=)	श्री०	राधाकिशनजी डालमिया	देहली
८।≡)	"	छिद्दारामजी	"
८।≡)	"	मांगीलालजी	"
८।≡)	"	देवीसहायजी	"
८≡)	"	खेतम्यदासजी	"
१०)	"	परमानन्दजी बद्रीप्रसादजी	दरभंगा
१०१।)	"	मुन्शीलालजी चौथमलजी	धमतरी
५०॥=)	"	रामस्वरूपजी मक्खनलालजी	"
५०॥=)	"	चिरंजीलालजी	"
८।≡)	"	घासीरामजी दीपचन्दजी	"
८।≡)	"	राघवजी	"
८।≡)	"	कोलेश्वर राऊत मील	धूबडी
१०१।)	"	श्रीरामदासजी हनुमानदासजी	नापासर
१०१।)	"	गुलाबचन्दजी	नवापारा राजिम
१०१।)	"	नृसिंहदासजी साह०	नेवरा
८।≡)	"	गिरधारीलालजी	नागपुर
१५॥।=)	"	मह्हीभगतजी	पुरुलिया
८।≡)	"	जयचन्दलाल नेमीचन्द	पानीगांव
८।≡)	"	कर्मचन्दजी हंसराजजी	फाजिलका
१०१।)	"	प्रह्लादरायजी मुरारका	बम्बई
१०१।)	"	जगदम्बा ट्रेडिंग कम्पनी	"
१०१।)	"	शंकरमील	बडईया
५०॥=)	"	चिम्मनलाल मूलचन्द	बिल्हा
१६॥।=)	"	गौरीशंकरजी रामनिवासजी	"
२५।-)	"	थानीरामजी आत्मारामजी	बरनाला
२५।-)	"	अग्रवाल व्योपार मण्डल	"
२५।-)	"	हरी भजनमलजी लक्ष्मणदासजी	"
८।≡)	"	दीनानाथजी छापरिया	बरबीघा
८।≡)	"	आशारामजी बृजमोहनजी	बरेली
८।≡)	"	कोडामलजी राठी	बक्सीघाट
८॥)	"	हरनारायणजी दागी	बिजनौर
१०१।)	"	गंगाबिशनजी राठी	भाटापारा
५०॥=)	"	बन्सीधरजी	"
५०॥=)	"	अमृतलाल मंगलचन्दजी	"
५०॥=)	"	सूरजमलजी पोद्दार	"
५०॥=)	"	जेठमलजी चाण्डक	"
५०॥=)	"	शिवनारायणजी मातादीनजी	"

५०।=)	श्री०	रामरतनजी रामदयालजी	भाटापारा
५०॥=)	"	कनीरामजी मुरलीधरजी	"
२५।-)	"	नात्थूरामजी रामेश्वरजी	"
२५।-)	"	बलरामजी भौर	"
२५।-)	"	हरिकिशनजी बालकिशनजी	"
२५।-)	"	कपूरचन्दजी	"
२५।-)	"	कन्हैयालालजी	"
२५।-)	"	तुलसीरामजी लक्ष्मीनारायणजी	"
२५।-)	"	बिहारीलालजी	"
२५।-)	श्री०	छोगालालजी	भाटापारा
२५।-)	"	भादरमलजी सत्यनारायणजी	"
२५।-)	"	पन्जाब राईस मील्स	"
११)	"	जगन्नाथजी	"
८।≡)	"	भूदरमलजी सत्यनारायणजी	"
८।≡)	"	बासुदेवजी वीरसेनजी	"
१०)	"	बचबालाजी	भदवा
२५।-)	"	तीरथरामजी भजनदासजी	मद्रास
२५।-)	"	पूसारामजी कस्तूरचन्दजी	मुर्तिजापुर
२५)	"	रामप्रतापजी जगदीशप्रसाद	मुरादाबाद
८।≡)	"	खमानचन्दजी मुरारका	मैदनीपुर
५०॥=)	"	जमीतराय एन्ड कम्पनी	रोहतक
१०१।)	"	पानाबाईजी नाथाजी	रायपुर
१०१।)	"	गोमतीदेवीजी डागा	"
१०१।)	"	शिवदासजी डागा	"
२ ।-)	"	जीवनलालजी सिंघानिया	"
२५।-)	"	गोकुलदासजी दम्मानी	"
२१।-)	"	मह्हीबाईजी	"
२६।-)	"	हरलालजी फतेचन्दजी	लाखपुरी
१०१।)	"	सालिगरामजी विश्वनाथजी	श्रीगंगानगर
१६॥।=)	"	हनुमानदासजी हरलालका	शेगांव
८।≡)	"	लक्ष्मीनारायणजी नवलकिशोरजी	सेभापुर फैक्ट्री
१००)	"	राजेरामजी स्योरामजी	हीस्सार
५०॥=)	"	ब्रह्मीदेवीजी	हापुड़
२५)	"	चिरन्जीलालजी वकील	हाथरस
१६॥।=)	"	सोहनलाल सुगनचन्दी	हिंदमल कोट
८।≡)	"	मुसद्दीलालजी मोतीलालजी	हरदोई
२)	"	फुटकर प्राप्त	

५९६४॥-) योग

श्री भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में मासिक चन्दा एवं सालाना चन्दा देने वाले सज्जनों की नामावली (महीना १ की)

१५०)	श्री०	रामलालजी गोयल	अजमेर
६॥=)	"	आदर्श प्रिंटिंग प्रेस के कई कर्मचारियों द्वारा प्राप्त	अजमेर
३६)	"	मूलराजजी कपूर	अमृतसर
२०)	"	रामचन्दजी देशाई	अहमदाबाद
८)	"	रामकिशनजी	अलवर
२)	"	गर्ग आइल मिल्स	"
७५)	"	धर्म कांटा कमेटी	देहली
१३२)	"	जैनारायणजी लक्ष्मीनारायणजी	"
१२)	"	बिहारीलालजी गोपालरायजी	"
६)	"	हनुमलजी	"
३)	"	वृन्दावनबाईजी	"
१२००)	श्री०	मंगूमलजी आत्मासिंहजी	बम्बई
१२॥)	"	हीरालालजी मानिकलालजी पटेल	"
४)	"	कुवरलालजी वेरीवाला	वृन्दावन
३)	"	लक्ष्मीदेवीजी	मुजफ्फरनगर
७०)	"	हितकारी सभा	लखनऊ
		योग १७४३।=)	

श्री० भगवान भजनाश्रम एवं श्री० वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता वगैरह देने वाले सज्जनों की नामावली

(मिती भादवा सुदी ६ सं० २००६ से आसोज सुदी ८ सं० २००६ तक महीना १ का)

१३४३।)	सहायता प्राप्त
५६६४॥–)	माई भजन का प्राप्त
१७४३।=)	मासिक चन्दा एवं सालाना चन्दा प्राप्त
योग ६०५१≡)	

८२८७)।।।	भजन करने वाली माईयों को पैसा दीना
१४०)	वृद्ध माईयों को दीना
५७४)	कर्मचारियों को वेतन का दीना
२२५।=)	पोस्टेज खर्चा
७८५।=)।।।	खुदरा खर्चा का लागा
१२५)	कर्मचारियों की रसोई खर्चा का लागा
१०१३६।।।–)।।	

श्री भगवान भजनाश्रम एवं श्री वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता वगैरह देनेवाले सज्जनों की नामावली।

(मिती सावन सुदी ६ से मिती भादवा सुदी ८ सं० २००६ तक का) मास १

५६८७=)|||	सहायता प्राप्त
६८५७-)	माई भजन का प्राप्त
२३८)	मासिक चन्दा सालाना चन्दा प्राप्त
१२७८२≡)|||	

८४७१||-)|||	भजन करने वाली माइयों को पैसा दीना
५७४)	कर्मचारियों को वेतन दिया
१४०)	वृद्ध भाईयों को दीना
१२५)	कार्यकर्त्ताओं का रसोई खर्चा
८४२|||≡)||	खुदरा खर्चा का लागा
१०१५३||-)|	

श्री भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देने वाले सज्जनों की नामावली

मिती सावन सुदी ६ सं २००६ से मिती भादवा सुदी ८ सं० २००६ तक का

५)	श्री०	ब्रह्मानन्दजी खुबरामजी	आगरा
२५)	"	आत्मारामजी शर्मा	अमृतसर
११)	"	छोगामलजी	अबोहरमंडी
११)	"	गिरधारीलालजी मोहनलालजी	अहमदाबाद
५)	"	प्रहलादरायजी	"
५)	"	कृष्णकुमारजी शुशीलकुमारजी	अलीगढ़
५)	"	स्वरूपनन्दजी श्रीवासतवजी	उतरोला
५)	"	लखुमलजी खुशालमलजी	काठियावाड़
११)	"	गनपतरामजी कानोडिया	कलकत्ता
११)	"	बिहारीलालजी जालान	"
११)	"	गोराबाईजी	"
१००)	"	बसन्तलालजी खेतान	"
११)	"	वासदेवजी सागानेरिया	"
१०१)	"	आनन्दरामजी गजाधरजी	"
१७८||)	"	जगन्नाथदासजी सराफ	"
५८)	"	मातुरामजी डालमिया	"
३५)	"	जानकीदेवीजी	"
२०)	"	रघुनाथजी सुरजकरणजी	काँरजा
१०)	"	हरिकिशनजी शिवप्रतापजी	"
१५)	श्री०	मथुराप्रसादजी अग्रवाल	कंचरापारा
४०)	"	बाई शान्ती	गोहाटी
१०)	"	सन्तलाल की माँ	गीदृबा
३८||)	"	मुरारीलालजी गुप्ता	"
१६)	"	तुलसीरामजी	"
१०)	"	गोविन्दरामजी छीपा	बड़ौदा
१०)	"	चौधरी भूपसिंहजी	चीत
११)	"	इन्द्रजीतजी	चुरू
५)	"	जावद मण्डल की तरफ से	जावद
११)	"	रामकरनजी वैद्य	झांसी
१६३||=)|||	"	चन्दूलालजी पुरषोत्तमदासजी	डभोई
५)	"	जोखीरामजी खेतान	न्यामतपुर
११)	"	पुरनमलजी हंसारिया	नोहर
२०)	"	सरस्वती बाईजी	"
५)	"	प्रहलादरायजी रामगोपालजी	पुरलिया
२१)	"	नागरमलजी भक्त	पटना
१०)	"	भुरामलजी अनन्तलालजी	पचम्बा
११)	"	विशेश्वरलालजी श्यामसुन्दरजी	देहली
७)	"	भगवती बाईजी	"
२५)	"	द्वारिकाधीश मण्डल	"
५)	"	भगवती बाईजी	"

राशि		नाम	स्थान
१७॥)	श्री	रघुमल एन्ड सन्स	"
१०)	"	रतनलालजी	"
१२५)	"	जगन्नाथजी धर्मार्था ट्रस्ट	"
११)	"	कलावती बाईजी	फाजिलका
५१)	"	शिवभगवानजी गजानन्दजी	फतेहपुर
१००)	"	रामसुखदासजी, बद्रीनारायणजी	फरूखाबाद
२५)	"	मुखी प्रेमचन्दजी सिन्धी	बम्बई
५)	"	छगनलालजी खीमजी	"
२०)	"	दुरगाप्रसादजी सेखसरिया	"
६००)	"	नथमलजी लोयानी	"
२५)	"	रामरिखदासजी महावीरप्रसादजी	"
२५)	"	बैजनाथजी राधाकिशनजी	"
४१)	"	रामकुमारजी किशोरीलाल	बारनिस जंकशन
४१)	"	पन्नालालजी रामप्रतापजी	"
४१)	"	राजकुमारजी विजयकुमारजी	"
२१)	"	श्रीलालजी चिरंजीलालजी	"
२१)	"	गणपतरायजी दुरगाप्रसादजी	"
११)	"	तुलसीरामजी अग्रवाल	"
११)	"	उम्मेदीलालजी	"
५)	"	चिरंजीलालजी शंकरलालजी	"
५)	"	जीवनरामजी सुन्दारामजी	"
५)	"	मनोहरलालजी	"
२५)	"	रघुनाथसिंहजी मानसिंहका	विजयनगर
५)	"	मुरारीलालजी भरतिया	"
५)	"	ललिता बाईजी	"
१००)	"	देवकरनजी झूनझूनावाला	बाँरग
१००)	"	हरिनामदास जैरामदासजी	बंगलोर
२२)	"	मंगारामजी अग्रवाल	वृन्दावन
५)	"	बनवारीलालजी	बेगमाबाद
११)	"	सीतारामजी	भिवानी
३७॥)	"	हुकमचन्दजी दलाल	"
६॥।=)	"	रामदयालजी	भीलवाड़ा
७)	"	गोविन्दलालजी	भरतपुर
५)	"	के० पी० झोपे	मुर्तिजापुर

राशि		नाम	स्थान
५)	श्री	ब्रजलालजी शर्मा	मनकापुर
१४)	"	तुलसीरामजी	मोडामण्डी
१२॥)	"	रामप्रतापजी जगदीशप्रसादजी	मुरादाबाद
१०)	"	बाबूरामजी अग्रवाल	रोहतक
८)	"	रामस्वरूपजी मेहता	लहरपुर
७)	"	किशोरीलालजी खत्री	"
५)	"	विशम्भरनाथजी खत्री	"
५)	"	रामकिशोरजी	"
५)	"	गोपीनाथजी कावरा	"
५)	"	डिप्टी [illegible]दत्तजी	ल[illegible]
५)	"	नथमलजी डागा	लछमनगढ़
५)	"	तनसुखरायजी ताशी	"
१०)	"	चिरंजीलालजी फतेहचन्दजी	सुनाममंडी
५)	"	सोहनलालजी सुगनचन्दजी	हिन्दुमलकोट
७)	"	कृपारामजी	श्री गंगानगर
५१)	"	भीमराजजी मंगलचन्दजी	"
११)	"	राधेश्यामजी जुगलकिशोरजी	"
५१)	"	मेहता कमरसियल कम्पनी	"
११)	"	रिखबदासजी	"
११)	"	रामनाथजी	"
२१)	"	गुलाबरायजी कासीप्रसादजी	"
१०)	"	करमचन्दजी हंसराजजी	"
५०)	"	कृपारामजी लदरीरामजी	"
५)	"	गोपालजी सुनार	सिगरिया मन्डी
११)	"	गजानन्दजी कासीरामजी	"
५५)	"	मानतमलजी	"
१२॥)	"	चतुरभुजजी	"
१०१)	"	चन्दी बाईजी	सिकन्दराबाद
२००)	"	बद्रीदासजी बाजोरिया	सहारनपुर
५)	"	नारायनदासजी वकील	हनुमानगढ़
५)	"	जमुनादासजी	"
१२)	"	रामकिशोरजी	लहरपुर
२१)	"	हुकमचन्दजी	माहिलबाहर
४३६॥=)	"	फुटकर प्राप्त	

योग ५६८७=)॥।

श्री भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में मासिक चन्दा तथा सालाना चन्दा देने वाले सज्जनों की नामावली मास १

मिती सावन सुदी ६ सम्वत् २००६ से मिती भादवा सुदी ८ सम्वत् २००६ तक

रकम	नाम	स्थान
२)	श्री० कन्हैयालालजी	अलवर
२०)	" रामचन्द्रजी देशाई	अहमदाबाद
१८॥)	" आदर्श प्रिंटिंग प्रेस के कर्मचारियों द्वारा प्राप्त	अजमेर
५०)	" जदुनन्दनप्रसादजी सुधाकर	कानपुर
६)	" मुरारीलालजी	देहली
३)	" पुष्पादेवीजी	पिलखुआ
४८)	" जीतमलजी मोहनलालजी	बिल्हा
२५)	" रामानन्दजी पन्नालालजी	विजयनगर
१२॥)	श्री० हीरालालजी मानिकलालजी पटेल	बम्बई
१२)	" कुवरलालजी बेरी वाले	वृन्दावन
५)	" सूरजप्रसादजी	वालिया
१२)	" देवकी बाईजी	मेरठ
२४)	" घनश्यामदासजी वकील	हनुमानगढ़

योग २३८)

श्री भगवान भजनाश्रम एवं श्री वृन्दावन भजनाश्रम में माईयों द्वारा भजन कराने वाले सज्जनों की नामावली (मिती सावन सुदी ६ से मिती भादवा सुदी ८ सं० २००६ तक का मास १ का)

रकम	नाम	स्थान
१६॥।=)	श्री० ब्रह्मानन्दजी	आगरा
१०१।)	" मुरारीलालजी गुप्ता	अभोरमन्डी
५०)	" केशरबाईजी	अहमदाबाद
१०१।)	" रा० सा० भूलचन्दजी	अलीगढ़
१०१।)	" हरि बाबू कलकत्ता वाले	"
१६॥।=)	" नन्दलालजी छोटेलालजी	अमरावती
१०)	" जी० के० अग्रवाल	ईटावा
८।≡)	" चुन्नीलालजी अग्रवाल	उन्नाव
२०२॥)	" पुरनमलजी केडिया	कलकत्ता
२०२॥)	" मोतीलालजी नथमलजी	"
१०१।)	" द्वारकाधीसजी दलाल	"
१०१।)	" मगनीरामजी मौर	"
५०॥=)	" गुलराजजी केदारनाथजी	"
१०१।)	" श्रीकिशनजी आत्मारामजी	"
२५।-)	" रामनिवासजी कुमारिया	"
१०१।)	" गोपालचन्दजी सोमानी	"
१०)	" श्यामलालजी रावत	"
१०१।)	" विश्वनाथजी वाछुका	"
१०१।)	" मुरारीलालजी वाछुका	"
१०१।)	श्री० रुकमणीदेवीजी वाछुका	कलकत्ता
१०१।)	" गंगादेवीजी वाछुका	"
१०१।)	" मनोहरलालजी वाछुका	"
८≡)	" बैजनाथजी जालान	"
८।≡)	" रामरतनजी केडिया	"
५६।)	" बैजनाथजी नारसरिया	"
२८=)	" बनवारीलालजी गुप्ता	"
२८=)	" हरखराजजी लोडा	"
२८=)	" किशनलालजी	"
११२॥)	" मातुरामजी डालमिया	"
२८=)	" कमलादेवीजी केजडीवाल	"
५०६।)	" आनन्दरामजी श्रीनिवासजी लडिया	"
२५)	" बंशीधरजी कानोड़िया	कानपुर
१०१।)	" महादेवप्रसादजी बजाज	"
१६॥।=)	" रामनारायणजी सोडानी	"
२५।-)	" स्वामीमुनीजी	कस्बा
८।≡)	" राधाकिशनजी कनकनी	किशनगढ़
१६॥।=)	" माँगीलालजी दूगड़	"

८।≡) श्री० ओंमप्रकाशजी कटनी
१०१।) " रामेश्वरदासजी सागरमलजी कोलोनेलगंज
८।≡) " रामचन्द्रजी डागरा खान्डवा
१००) " हनुमानदासजी विलासरायजी खामगाँव
१७) " ओंकारदासजी सुन्दरलालजी "
५०) " सुपरसिंहजी अवधूतजी "
१६।।=) ,, चन्दुलालजी गनेशगढ़
१६।।≡) ,, विलासरायजी ठाकुरदासजी गोरखपुर
८।≡) " कोलेश्वर राऊतर्वीन गोहाटी
८४।=) " राधाकिशनजी "
२०२।।) " सावलदासजी सियोडिया "
८।।।–) " हरिवंसलालजी ग्वालियर
१६।।।=) " उम्मेदसिंहजी गरासनी
८।≡) " मोतीलालजी वगडिया चान्डील
१०) " गंगाधरजी केडिया चाकूलिया
१०१।) " केदारमलजी अग्रवाल जयपुर
८।≡) " भंवरलालजी "
८।≡) " मोरीलालजी परवाल "
८।।≡) " केशरीचन्दजी राठी जोरहाट
२५।–) " रामकिशनजी अग्रवाल झरिया
८।≡) " मगनीरामजी नोरंगरामजी तलवाड़ा झील
८।≡) " जुगलकिशोरजी कनीरामजी "
८।≡) " केशर बाईजी "
१०) " परमानन्दजी बद्रीप्रसादजी "
१६।।।= ,, राधाकिशनजी डालमिया देहली
१०१।) " जगदीशरायजी फूलचन्दजी "
५१) " शिवदासजी मूंधड़ा ट्रस्ट "
१०१।) " मंगलचन्दजी साबू "
१०१।) " कपूरी देवीजी "
३०३।।।≡),, गुलाबरायजी "
८।≡) " देवी सरस्वती बाईजी नोहर
६।=) " मूलचन्दजी खदरिया "
८।≡) " डफटडासंपत नायदेवी

८।≡) श्री० गनपतमुकांजी नायदेवी
१०१।) " मनसुखदासजी हनुमानदासजी "
८≡) " लक्ष्मीनारायणजी पुखराया
३३।।।) " केशोदेवीजी पिपराईच
८।≡) " बनारसीदासजी फिरोजपुर
८।≡) " सुखदयालजी गौरीशंकरजी फतेहपुर
८।≡) " गोपीलालजी चौधरी बीदासर
१०१।) " नागरमलजी भक्त बांकीपुर
८≡) " विमला रानी बिजनौर
८≡) " विश्वनाथजी "
३३।।।) " झावरमलजी अग्रवाल नियामतपुर
८।≡) " ओंकारमलजी "
१६।।।=) ,, छोटेलालजी डाकोनिया "
८।≡) " हजारीमलजी "
८।≡) " रामदजजी तुलस्यान "
२५।–) " हनुमानदासजी श्रीनिवासजी बलरामपुर
१६।।।=) ,, उमरावलालजी बाबूलालजी "
१६।।।=) ,, मञ्जू देवी "
८।≡) " गोदावरी देवीजी "
८।≡) " लक्ष्मीनारायणजी गुरमुखरामजी "
१६।।।=) ,, रामलालजी विशम्भरदयालजी बरगढ़
२६।।–) " नारायणदासजी हरगोविन्दजी "
१०२।) " सीतारामजी मानिकचन्दजी "
१०१।) " रामरिखदासजी महावीरप्रसादजी "
१०१।) " बैंजनाथजी राधाकिशनजी "
८।≡) " भावनसिंहजी पोदसिंहजी "
१०१।) " महादेवजी रामेश्वरलालजी साबू "
२०२।।) " पानाबाईजी "
८) " लक्ष्मीचन्दजी चम्पालालजी बीकानेर
८।≡) " जयलालजी गंगादजजी घाराकार
८।≡) " गीता बाई विरहा
८।≡) " लक्ष्मीनारायणजी रामचन्दजी विक्रमगंज
२५।–) " बसन्ती बाईजी वृन्दावन
१६।।।=) ,, रामेश्वरदासजी बालोतरा
८।≡) " देशराजजी किलेदार बल्लेबगढ़

राशि	नाम	स्थान
५०॥=)	श्री० सन्तोक बाईजी	बेरावल
८॥≡)	" बद्रीलालजी पाटदिया	भेलसा
८≡)	" नत्थूजी की बहू	मुजफ्फरनगर
८॥≡)	" रामप्रतापजी जगदीशप्रसादजी	मुरादाबाद
५०॥=)	,, चौ० मिहखानसिंहजी	अर्थना
१६॥=)	,, घासीलालजी शिवजीरामजी	महू
८॥≡)	" शंकरदासजी दुरगाप्रसादजी	मेरठ
८॥≡)	श्री० पं० सोहनलालजी शर्मा	रायसिंहनगर
१६॥=)	,, बलदेवरायजी मनोहरलालजी	"
१०१।)	" गजानन्दजी सर्राफ	रांची
१०१।)	" नारमलजी धनपतरामजी	"
१०१।)	" गोविन्दरामजी नाथानी	रायपुर
१०१।)	" गंगादासजी नाथानी	"
१०१।)	" रामरतनजी	"
१०१।)	" पद्मादेवीजी	"
६।=)	" मुरलीधरजी बसन्तलालजी	राजगढ़
२५।-)	" मानिकचन्दजी तोतारामजी	लशकर
८॥≡)	" छगनलालजी काटनवाल	लोसल
८॥≡)	" महावीरप्रसादजी कानोडिया	लखीसराय
१०१।)	श्री० सुखीबाईजी	श्रीगंगानगर
८॥≡)	" विशेश्वरलालजी	"
८॥≡)	" टेकारामजी सोनीरामजी	"
८॥≡)	" नन्दकिशोरजी बनारसीदासजी	"
८॥≡)	" गजानन्दजी बाजोरिया	"
८॥≡)	" सूरजमलजी बन्शीधरजी	"
२५।-)	" भीखमचन्दजी मुरलीधरजी	"
८॥≡)	" बालकिशनजी ओमप्रकाशजी	"
८॥≡)	" प्यारेलालजी मदनलालजी	"
८॥≡)	" डूगरमलजी शर्मा	सुरतगढ़
१०१।)	" पं० हजारीलालजी शर्मा	सिलचर
१६॥=)	,, हनुमानदास द्वारकादासजी	शेगाँव
८॥≡)	" जुगलसिंहजी	सिलीगुडी
१०१।)	" केशरदेवजी लोडा	कालवनी
८॥≡)	,, शँकरलालजी रामअवतारजी	सादुलपुर
८॥≡)	" नानकरामजी वकील	हनुमानगढ़
८॥≡)	" राधादेवी	"
८॥≡)	" जमुनारानी	"
८॥≡)	" कुन्डी बाई	हनुमानगढ़
८॥≡)	" तुलसी बाई	डिंगनघाट

योग— ६८५७-)

दानदाताओं को सूचना

सर्व सज्जनों को सूचना दी जाती है कि श्री भगवान-भजनाश्रम को जो दान मनीआर्डर बीमा द्वारा प्राप्त होता है उसकी रसीद उसी दिन डाक द्वारा दाता महानुभाव की सेवा में भेज दी जाती है, अगर किन्हीं दाता महानुभाव को अपने दान की छपी हुई रसीद श्री भगवान भजनाश्रम की प्राप्त नहीं हुई हैं तो उन्हें तुरन्त सूचना देनी चाहिये एवं भविष्य में कभी किन्हीं दान दाता को अपने दान की रकम की रसीद प्राप्त नहीं हो तो तुरन्त हमें सूचना देनी चाहिये, इसमें बिल्कुल विलम्ब नहीं करना चाहिये।

कृपया पत्र आदि एवं मनीआर्डर बीमा निम्नपते पर भेजने की कृपा करें

मंत्री श्री भगवान-भजनाश्रम मु० पो० बृन्दावन (मथुरा)

॥ श्री हरिः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन

[श्री भगवन्नाम प्रचारक प्रमुख धार्मिक एवं पारमार्थिक संस्था]

[एक्ट २१ आफ १८६० द्वारा रजिस्टर्ड]

का

संक्षिप्त विवरण

श्री वृन्दावन धाम हिन्दुओं का प्रधान तीर्थ है, इस स्थल की पावन रज में लोट लोट कर भगवान श्रीकृष्ण ने इसे पूजनीय बना दिया है और इसी कारण समस्त भारत से लाखों हिन्दू भाई प्रेम से यहां की यात्रा करते हैं। साथ ही बहुत सी वृद्ध एवं अनाथ विधवायें भी अपना शेष जीवन वृन्दधाम में व्यतीत करने के पावन उद्देश्य से अपना घर बार तथा सगे सम्बन्धी छोड़कर यहां आ जाती हैं। भारत इस समय एक निर्धन देश है और यहां यह सम्भव नहीं है कि हज़ारों की संख्या में आई हुई इन विधवाओं और वृद्धाओं के सम्बन्धी उनके भरण पोषण के लिये उनको प्रति मास सहायता भेज सकें और इसी कारण यह विधवायें वृन्दावन में अपनी उदर पूर्ति के लिये प्रत्येक यात्री से गिड़-गिड़ाकर भिक्षा माँगती हुई दृष्टिगोचर होती थीं। अब से ३३ वर्ष पूर्व इस दुरावस्था को देख कर अनेक सद्गृहस्थ तथा धनी मानी धार्मिक सज्जनों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने सम्वत् १९७२ में 'श्री वृन्दावन भजनाश्रम' नाम से एक परमोपयोगी संस्था की स्थापना की। और उसे चलाने के लिए एक सुदृढ़ ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। ट्रस्टियों के निर्णय से यह विधान बनाया गया कि भजनाश्रम में नित्य जितनी माइयां आवें उनसे ४॥ घन्टे प्रातः तथा ४॥ घन्टे सायं श्री भगवद् कीर्तन कराया जाय और उन्हें उदर पोषण के लिए अन्न एवं पैसे दिये जावें। भजनाश्रम स्थापित होते ही नित्य प्रति सैंकड़ों की सख्या में गरीब तथा आश्रयहीन वृद्धायें तथा विधवायें आश्रम में आने लगीं और परम पावन, कल्याणकारी श्री भगवन्नाम कीर्त्तन करते हुए अपना मानव जीवन सफल करने लगी। इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होते देख कर एक द्वितीय संस्था 'श्री भगवान भजनाश्रम' के नाम से सम्वत् १९९० में स्थापित की गई तथा उसका भी ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। इन दोनों भजनाश्रमों का प्रवन्ध योग्य ट्रस्टियों द्वारा सुचारु रूप से हो रहा है।

इस समय इन आश्रमों में लगभग ८०० अनाथ गरीब स्त्रियां जिनमें अधिकांश निराश्रित विधवायें हैं नित्य प्रति अनन्त भगवद्नामों का कीर्तन करती हुई भगवद्-भजन में लीन रहती हैं। अष्ठ प्रहर कीर्तन भी अलग होता है। इन भजन करने वाली माइयों को सवेरे ४॥ घन्टे भजन करने पर =)॥ ढाई आना अन्न के वास्ते दिया जाता है। तथा शाम को ४॥ घन्टे भजन करने पर =) दो आना ऊपर खर्च के वास्ते दिया जाता है और समय-समय पर आवश्यकतानुसार वस्त्र भी दिये जाते हैं और २०० के लगभग अपाहज वृद्धायें जो आश्रम में आने के अयोग्य हैं अपने घरों में बैठी हुई भगवद् भजन किया करती हैं जिन्हें भी कुछ सहायता दी जाती है।

भारत व्यापी तेजी के कारण इस समय इन संस्थाओं का खर्च लगभग रु० ८५००) आठ हजार पांच सौ रु० प्रति मास हो गया है जब कि स्थायी आय, मासिक चन्दा तथा ब्याज केवल ३०००) रुपये मासिक है। आज हम इसी कमी की पूर्ति करने के लिये आप जैसे धनी मानी तथा धार्मिक महानुभाव की सेवा में अपील करते हुए निवेदन करते हैं कि आपकी अतुल दानराशि में से अधिक से अधिक भाग इन संस्थाओं को प्राप्त होना चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा आपके धन का सदुपयोग का विश्वास दिलाते हुए हम यह भी बता देना चाहते हैं कि इन संस्थाओं में दिये गये आपके धन से अनेक प्राणियों का उदर पोषण होगा एवं कोटि-कोटि भगवन्नाम जप के पुण्य प्रताप का आपको पूर्ण लाभ होगा।

हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमानजी हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान देंगे और श्रद्धानुसार संस्थाओं की सहायता करते हुए जनता-जनार्दन की अधिकाधिक सेवा के पावन अनुष्ठान में सहायक बनेंगे।

प्रार्थीः—जानकीदास पाटोदिया,
प्रधान

नोट—१. प्रार्थना है कि आप जब बृजधाम की यात्रा को पधारें तो इन आश्रमों में पधार कर यहाँ के कार्यों का अवलोकन करें, एवं आश्रम के लिये जो दान करना चाहें वह भजनाश्रम में ही देवें अन्य किसी मन्दिर में नहीं।

२. अपने एवं अन्य नगर के धर्म प्रेमी दानदाताओं के कुछ नाम व पते भी हमें भेजने की कृपा करें जिससे हम उनसे संस्थाओं की सहायता के लिये अपील कर सकें।

३. बीमा या मनीआर्डर द्वारा सहायता मन्त्री श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन [मथुरा] तथा मन्त्री श्री वृन्दावन भजनाश्रम, पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से भेजिये।

४. कृपया सहायता एक मुश्त भेजिये अथवा मासिक या वार्षिक सहायता भेजने की कृपा कीजियेगा।

५. आश्रम की ओर से ऐसा प्रबन्ध भी है कि जो दानी महानुभाव अपनी ओर से भजन कराना चाहते हों वह ८।≡) रु.मासिक प्रत्येक माई के हिसाब से भेजकर जितनी माइयों द्वारा चाहें भजन करा सकते हैं। प्रतिदिन ६ घण्टे में हर एक माई लगभग एक लाख भगवन्नाम उच्चारण कर सकती है।

६. वृन्दावन के किसी मन्दिर, मठ व अन्य स्थानों से भजनाश्रम का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिये भजनाश्रम के लिये किसी अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी मनीआर्डर या बीमा द्वारा श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा

॥ श्रीहरिः ॥

"नाम-माहात्म्य" के नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन करके श्री भगवन्नाम का प्रचार करना जिससे सांसारिक जीवों का कल्याण हो।

नियमः—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तों के उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा संबंधी लेख एवं भक्ति चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखों के बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। लेखों में प्रकाशित मत का उत्तरदायी संपादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। ग्राहक किसी माह में बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरी के अंक से निकले सभी अंक दिये जावेंगे।

४—जिनके पास जो संख्या न पहुँचे वे अपने डाकखाने से पूछें, वहाँ से मिलने वाले उत्तर को हमें भेजने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं व समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्र व्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन [मथुरा] के पते से करनी चाहिये।

रजिस्टर्ड नं. ए ५४८

प्रेमी पाठकों एवं ग्राहकों से निवेदन—

(१) "नाम-माहात्म्य" के बारहवें वर्ष का यह बारहवां अंक है। इस अंक के साथ इस वर्ष का मूल्य समाप्त हो जाता है। आगामी अंक तेरहवें वर्ष का प्रथम अंक होगा। आगामी वर्ष अधिक उपादेय लेख देने की चेष्टा रहेगी। कागज का मूल्य अधिक हो जाने पर भी वार्षिक मूल्य २≡) ही रक्खा गया है। अतः सभी सज्जनों को इसे अपनाना चाहिये और वार्षिक चन्दा के २≡) शीघ्र मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करनी चाहिये।

(२) जिन प्रेमी सज्जनों ने "नाम-माहात्म्य" के ग्राहक बनाये हैं और बना रहे हैं उन सबके हम बड़े कृतज्ञ हैं। इस बार हम सभी प्रेमी सज्जनों से प्रार्थना करते हैं कि एक-एक दो-दो नवीन ग्राहक बनाने की अवश्य चेष्टा कीजिएगा आपकी इस चेष्टा से भगवन्नाम प्रचार में बहुत अधिक वृद्धि होगी। और ग्राहक संख्या बढ़ जाने पर और भी अधिक पठनीय सुन्दर सामग्री देने में हम सफल हो सकेंगे। आशा है इस ओर सभी प्रेमी-जन कृपा करेंगे।

(३) मनीआर्डर फार्म अपने पोस्टाफिस से लेने की कृपा करें एवं मनीआर्डर फार्म पर अपना पूरा नाम, पूरा ठिकाना, मोहल्ला, गाँव, पोस्टाफिस, जिला साफ साफ देवनागरी अक्षरों में लिखने चाहिये।

(४) किसी कारण वश इस वर्ष ग्राहक न रहना हो तो एक कार्ड द्वारा सूचित करने का अनुग्रह करें। आपके तीन पैसे के खर्च से "नाम-माहात्म्य" कार्यालय आठ आने के नुकसान से बच जायेगा। जिन ग्राहकों का चन्दा मनीआर्डर से नहीं आयेगा या मनाही कार्ड नहीं आयेगा तो उन्हें आगामी अँक वी. पी. द्वारा भेजा जायगा। वी. पी. मंगाने में छः आने अधिक लगते हैं इसलिये चन्दा मनीआर्डर द्वारा भेजने में ही सुविधा रहेगी।

(५) पुराने ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर एवं नये ग्राहकों को "नया" शब्द मनीआर्डर कूपन में अवश्य लिख देना चाहिये। नम्बर याद न हो तो "पुराना" शब्द लिख दीजियेगा।

आशा है इस बार सभी सज्जन "नाम-माहात्म्य" को अपनाने की कृपा अवश्य करेंगे एवं अपना चन्दा शीघ्र २≡) मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करेंगे।

पता—व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय ठिकाना श्रीभजनाश्रम मु० पो० बृन्दावन (यू. पी.)

बाबू रामलालजी गोयल के प्रबन्ध से आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, केसरगंज, अजमेर में मुद्रित व
गौरगोपाल मानसिंहजीका संपादक व प्रकाशक द्वारा भगवान भजनाश्रम वृन्दावन [मथुरा] से प्रकाशित